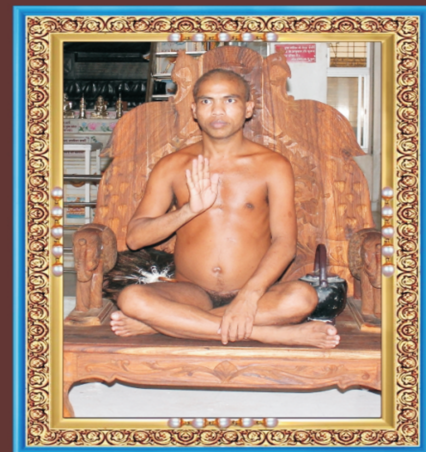

सारस्वत श्रमण नय चक्रवर्ती श्रमणाचार्य
108 श्री विभवसागर जी महाराज

पूर्व नाम –	पण्डित अशोक कुमार जी जैन शास्त्री
जन्म स्थान –	किसनपुरा (सागर) म.प्र.
जन्मतिथि –	कार्तिक कृष्ण अमावस्या 2033
	तदनुकूल 23 अक्टूबर 1976
पिता –	श्रावकरत्न श्री लखमीचन्द जैन
माता –	श्राविकारत्न श्रीमती गुलाबबाई जैन
शिक्षा –	संस्कृत शास्त्री प्रथम वर्ष (इण्टर)
धार्मिक शिक्षा –	धर्मशास्त्री द्वितीय वर्ष
शिक्षण संस्थान –	श्री गणेशवर्णी दि.जैन महाविद्यालय मोराजी, सागर म.प्र.
वैराग्य –	9 अक्टूबर 1994 को ब्र. व्रत लिया
क्षु. दीक्षा –	28 जनवरी 1995 मंगलगिरि सागर म.प्र.
ऐलक दीक्षा –	23 फरवरी 1996 देवेन्द्रनगर (पन्ना) म.प्र.
मुनि दीक्षा –	14 दिसम्बर 1998 अतिशय क्षेत्र बरासौ भिण्ड म.प्र.
दीक्षा गुरू –	गणाचार्य 108 श्री विरागसागर जी महाराज
आचार्य पद –	31 मार्च 2007 औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
विशेष –	जैन आगम रूपी मानसरोवर के राजहंस की तरह झलक देने वाले प्रज्ञाश्रमण की प्रवचनशैली जन–जन द्वारा हृदयग्राह्य है।
कृतियां –	अभी तक आचार्य श्री द्वारा 55 कृतियों की सृजना की गई है।
अलंकरण –	''सारस्वत–श्रमण'' एवं ''सारस्वत कवि''

श्रमण श्रुत सेवा संस्थान
जयपुर (राज.)

पुरुषार्थ शास्त्र

सारस्वत कवि श्रमणाचार्य विभवसागर मुनिराज

अमृतचंद्र आचार्य रचित
मूल पुरुषार्थ सिध्दुपाय ग्रंथ पर प्रवचनात्मक टीका

पुरूषार्थ शास्त्र

प्रवचनकार
सारस्वत कवि श्रमणाचार्य विभवसागर मुनिराज

सामायिक साधना है। धर्म-ध्यान का उपाय, शुक्ल-ध्यान का उपाय, निर्वाण का उपाय, सामायिक है। सामायिक में कुछ नहीं करना होता है और बिना किये पाँच व्रत पूर्ण हो जाते हैं। ''कुछ न करना ही तो सब कुछ करना है।'' जो क्रियायें, जो परिणतियाँ अनादि से करते आयें हैं उन परिणतियों को उन क्रियाओं को विराम देना ही तो सामायिक है।

सारस्वत कवि श्रमणाचार्य विभवसागर मुनिराज

|| सारस्वत श्रमण ||

पूर्वनाम	-	पं. अशोक कुमार जैन ''शास्त्री'
जन्म	-	23.10.1976 को, प्रकाशित अमावश्या दीपावली
स्थान	-	किशनपुरा (सागर)
पिताश्री	-	श्रावक रत्न श्री लखमीचन्द्र जैन
माताश्री	-	श्राविका-रत्न श्रीमती गुलाबबाई जैन
शिक्षा	-	इण्टर संस्कृत शास्त्री प्रथमवर्ष
धार्मिक शिक्षा	-	धर्मशास्त्री द्वितीय वर्ष
शिक्षण संस्थान	-	श्री गणेशप्रसाद वर्णी दि. जैन महाविद्यालय, मोराजी, सागर (म. प्र.)
वैराग्य	-	9 अक्टूबर 1994 को ब्रह्मचर्य व्रत लिया
क्षुल्लक दीक्षा	-	28 जनवरी 1996, देवेन्द्र नगर, पन्ना (म.प्र.)
ऐलक दीक्षा	-	23.02.1997, अतिशय क्षेत्र वरासौं, भिण्ड (म.प्र.)
मुनि दीक्षा	-	14.12.1998, अतिशय क्षेत्र वरासौं, भिण्ड (म.प्र.)
दीक्षागुरु	-	गणाचार्य श्री 108 विरागसागर जी महाराज
आचार्यपद	-	31 मार्च 2007, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
विशेष	-	जैन आगम रूपी मानसरोवर के राजहंस की तरह झलक देने वाले प्रज्ञा श्रमण की प्रवचन शैली जन-जन द्वारा हृदय-ग्राह्य है।
अलंकरण	-	'सारस्वत श्रमण' एवं 'सारस्वत कवि' जबलपुर में 2009
रुचि	-	पठन-पाठन, काव्य सृजन, चिंतन, मनन
कृतियां	-	अभी तक आचार्य श्री द्वारा 54 कृतियों की सर्जना की गई है जो इसी पुस्तक में सूचीबद्ध है।

पुरुषार्थ शास्त्र

सारस्वत कवि श्रमणाचार्य विभवसागर मुनिराज

पुरुषार्थ शास्त्र

प्रवचनकार

सारस्वत कवि श्रमणाचार्य विभवसागर मुनिराज

प्रस्तुत कृति ''सामायिक शास्त्र'' आचार्य अमितगति प्रणीत ''सामायिक पाठ'' अपरनाम ''अमितगति द्वात्रिंशतिका'' शास्त्र पर आधारित शास्त्रीय प्रवचनों का महत्वपूर्ण नित्योपयोगी सुखद आलेखन है। जो आध्यात्मिक भाषा शैली में रसापूरित, आत्म चिंतन के निर्मल प्रवाह को लिए हुए जैनागम के तत्वदर्शन को अखिल विश्व के समक्ष प्रस्तुत करने वाली तीर्थंकर महावीर देशना का मंगल मंत्रोंच्चारण समाहित किए हुए यह आत्म-कल्याण कारक कृति तत्त्व पिपासु, जिज्ञासु पाठकों के लिए अनुपमेय गुरु उपहार है।

सारस्वत श्रमण नय चक्रवर्ती श्रमणाचार्य
108 श्री विभवसागर जी महाराज

पूर्व नाम -	पण्डित अशोक कुमार जी जैन शास्त्री
जन्म स्थान -	किसनपुरा (सागर) म.प्र.
जन्मतिथि -	कार्तिक कृष्ण अमावस्या 2033
	तदनुकूल 23 अक्टूबर 1976
पिता -	श्रावकरत्न श्री लखमीचन्द जैन
माता -	श्राविकारत्न श्रीमती गुलाबबाई जैन
शिक्षा -	संस्कृत शास्त्री प्रथम वर्ष (इण्टर)
धार्मिक शिक्षा -	धर्मशास्त्री द्वितीय वर्ष
शिक्षण संस्थान -	श्री गणेशवर्णी दि.जैन महाविद्यालय मोराजी, सागर म.प्र.
वैराग्य -	9 अक्टूबर 1994 को ब्र. व्रत लिया
क्षु. दीक्षा -	28 जनवरी 1995 मंगलगिरि सागर म.प्र.
ऐलक दीक्षा -	23 फरवरी 1996 देवेन्द्रनगर (पन्ना) म.प्र.
मुनि दीक्षा -	14 दिसम्बर 1998 अतिशय क्षेत्र बरासौ भिण्ड म.प्र.
दीक्षा गुरू -	गणाचार्य 108 श्री विरागसागर जी महाराज
आचार्य पद -	31 मार्च 2007 औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
विशेष -	जैन आगम रूपी मानसरोवर के राजहंस की तरह झलक देने वाले प्रज्ञाश्रमण की प्रवचनशैली जन-जन द्वारा हृदयग्राह्य है।
कृतियां -	अभी तक आचार्य श्री द्वारा 55 कृतियों की सृजना की गई है।
अलंकरण -	''सारस्वत-श्रमण'' एवं ''सारस्वत कवि''

श्रमण श्रुत सेवा संस्थान
जयपुर (राज.)

अमृतचंद्र आचार्य रचित

मूल पुरुषार्थ सिध्धुपाय ग्रंथ पर प्रवचनात्मक टीका

पुरुषार्थ शास्त्र

प्रवचनकार

सारस्वतकवि श्रमणाचार्य विभवसागर मुनि

पुण्यार्जक

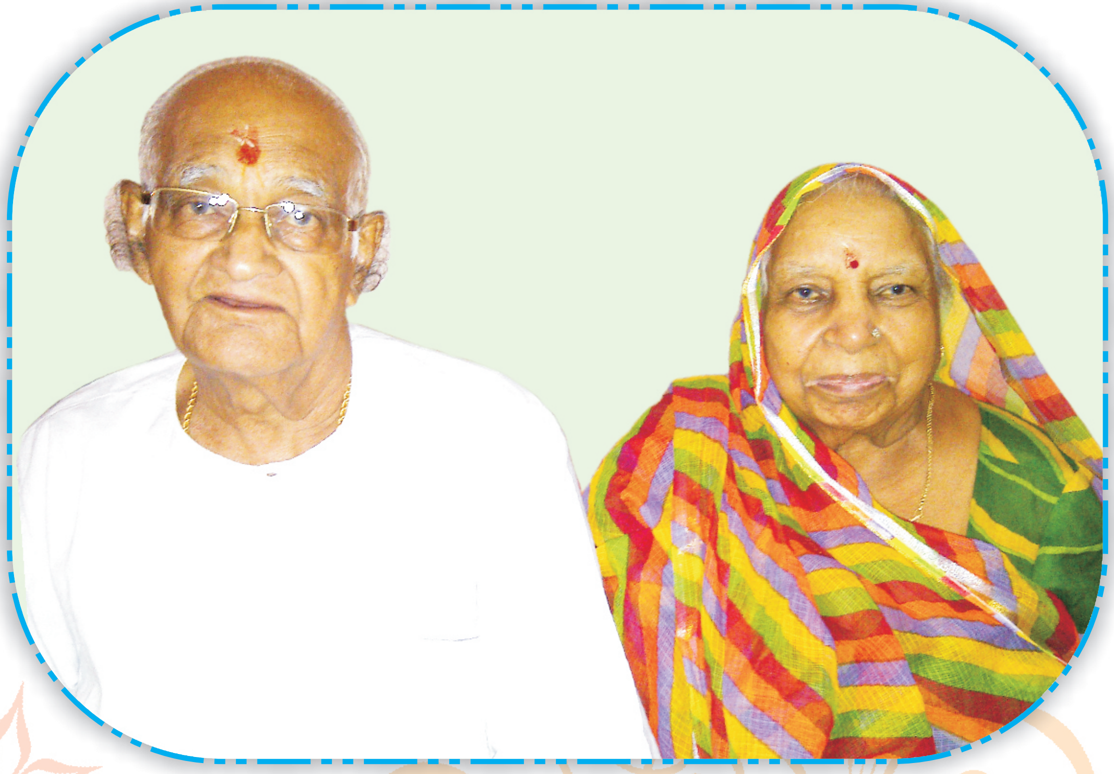

फतेहलाल जैन   रतन बाई जैन

इन्दरकुमार जैन-प्रभा जैन
अशोककुमार जैन-अनिता जैन
अंकुर जैन-सुरभि जैन
नमन जैन, संभव जैन

महेशकुमार जैन-अनिता जैन
राजेन्द्रकुमार जैन-शालिनी जैन
अरिहंत जैन-कीर्ति जैन
श्रीया जैन, यशवी जैन

अशोका इलेक्ट्रीकल्स
412 चांदपोल बाजार, जयपुर
फोन : 2311743, 2312796
मो. : 09829160927

अशोका इलेक्ट्रीक एण्ड लाइटस
129 सुलतान नगर गुजर की थडी के पास
गोपालपुरा बाईपास, जयपुर
फोन : 2297698, 3131524

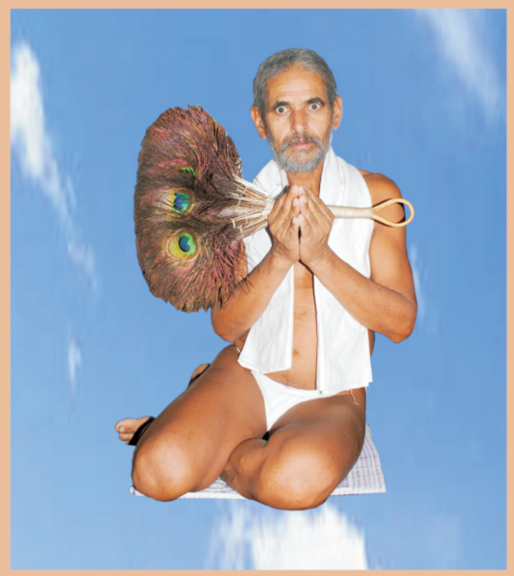

प.पू. सारस्वत कवि श्रमणाचार्य १०८ श्री विभवसागरजी महाराज

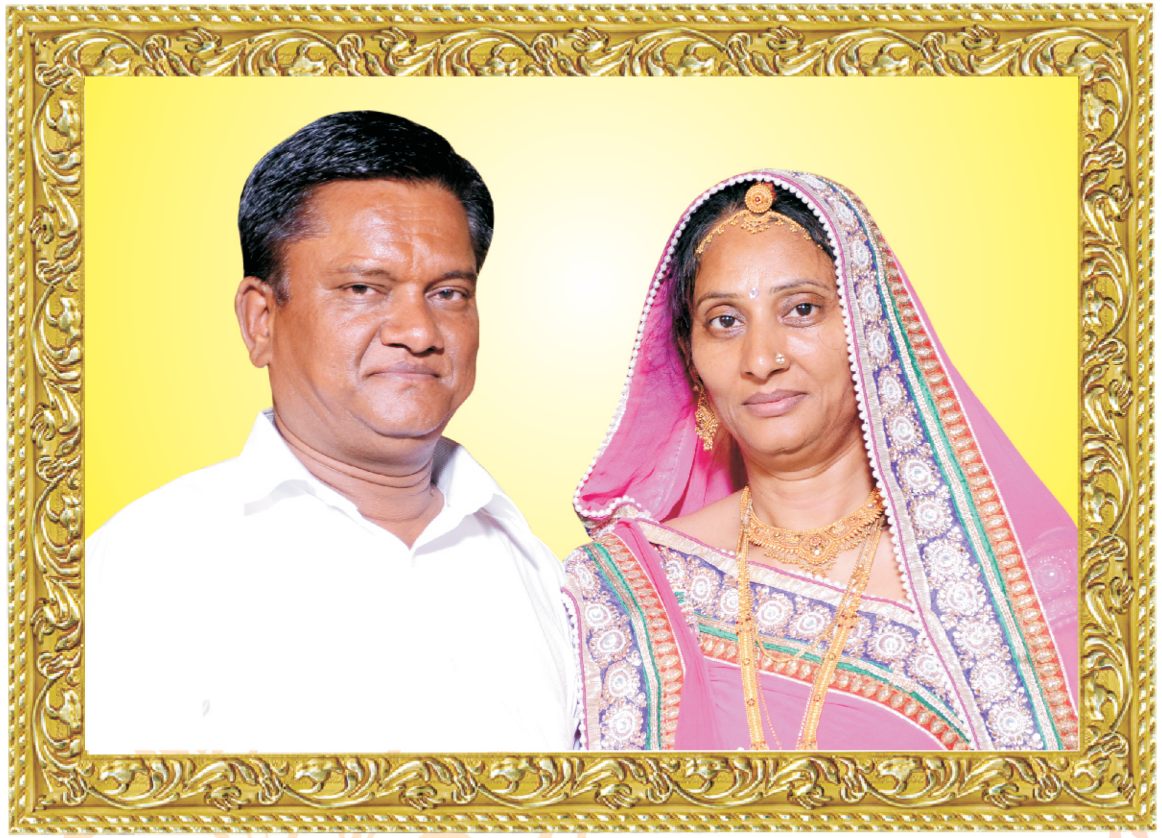

श्रेष्ठी श्री नेमीचन्द एवं सौ. मधुबालादेवी जैन

श्री अंकलीकर पोल्स (P.C.C. पोल्स), निवाई 9414315904

गुरुभक्त :

संजय-प्रियंका (पुत्र-पुत्रवधु)
डिम्पल-सन्नीजी (पुत्री-दामाद), अंकित (पुत्र), विभव (पौत्र)
अपेक्षा (पुत्री), विभूति (पौत्री)

अंकलीकर ग्रुप :

* श्री अंकलीकर पोल्स (9414315904)
* संजय अंकित क्लॉथ स्टोर (9461904307)
* श्री अंकलीकर इण्ड. (01438-223827)
* श्री अहिंसा प्रोडक्ट (9214667701)

निवाई-304021, जिला-टोंक (राजस्थान)

श्रेष्ठी श्री अशोककुमार एवं सौ. ज्ञानादेवी जैन (9414254087)

प्रतिष्ठान :

* श्री अशोका आयल इण्डस्ट्रीज, औद्योगिक क्षेत्र, निवाई (टोंक-राज.) 01438-223123
  (सोनागिरी ब्राण्ड सरसों एवं मुंगफली तेल के निर्माता)
* श्री श्याम प्रोडक्ट, औद्योगिक क्षेत्र, निवाई-304021, जिला-टोंक (राज.) 01438-223367
  (श्री श्याम ब्राण्ड एगमार्क सरसों एवं मुंगफली तेल के निर्माता)
  9414254087 (अशोक), 9414045467 (शिखर), 9214031149 (ललीत)
* अशोककुमार शिखरचन्द जैन , B-28 कृषि मण्डी, निवाई (टोंक-राज.) 01438-222917
* अशोककुमार अमितकुमार, A-9, कृषि मण्डी, निवाई (टोंक-राज.) 01438-222917
  9252561101 (अभय), 7737823466 (आशीष), 8769814567 (अमित)

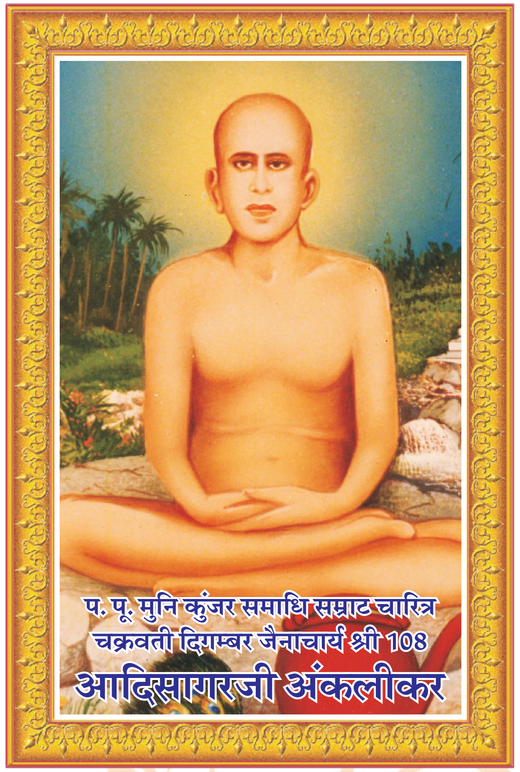

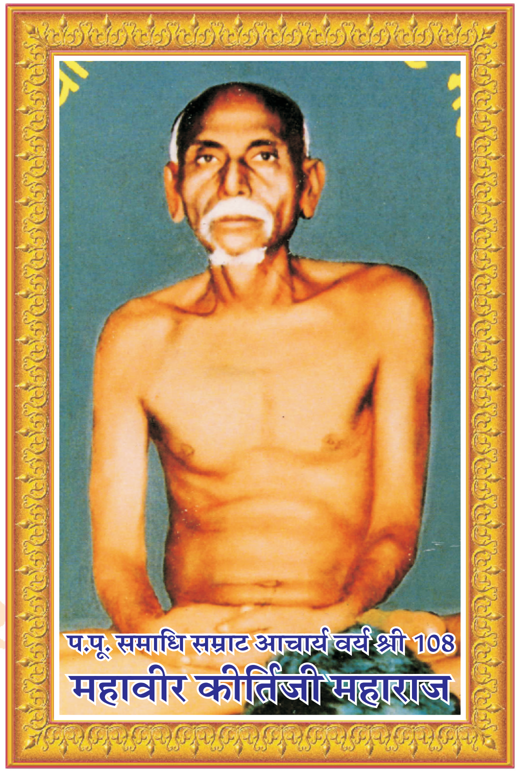

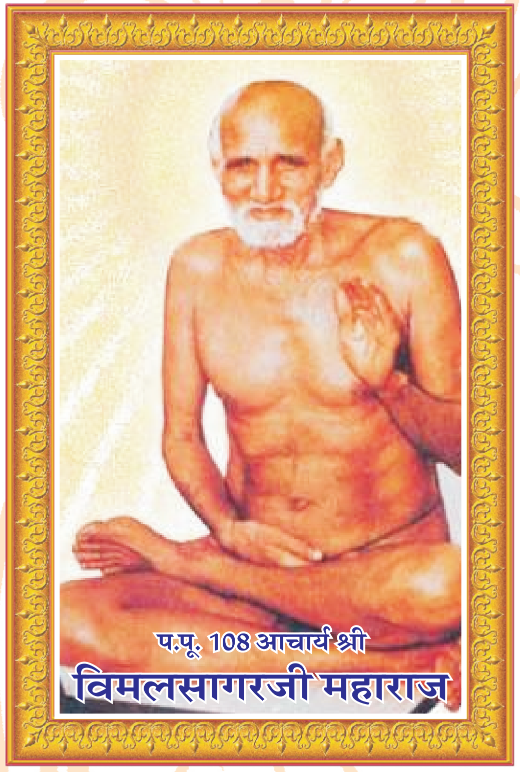

श्रेष्ठी श्री शिखरचन्द एवं सौ. आशादेवी जैन (9414045467)

प्रतिष्ठान :

* **श्री अशोका आयल इण्डस्ट्रीज,** औद्योगिक क्षेत्र, निवाई (टोंक-राज.) 01438-223123
  (सोनागिरी ब्राण्ड सरसों एवं मुंगफली तेल के निर्माता)
* **श्री श्याम प्रोडक्ट,** औद्योगिक क्षेत्र, निवाई-304021, जिला-टोंक (राज.) 01438-223367
  (श्री श्याम ब्राण्ड एगमार्क सरसों एवं मुंगफली तेल के निर्माता)
  9414254087 (अशोक), 9414045467 (शिखर), 9214031149 (ललीत)
* **अशोककुमार शिखरचन्द जैन, B-28** कृषि मण्डी, निवाई (टोंक-राज.) 01438-222917
* **अशोककुमार अमितकुमार, A-9,** कृषि मण्डी, निवाई (टोंक-राज.) 01438-222917
  9252561101 (अभय), 7737823466 (आशीष), 8769814567 (अमित)

गुरुभक्त :

स्व. श्री रतनलाल जैन

श्रीमती शांतिदेवी जैन

एवं समस्त सिरस वाला परिवार निवाई!

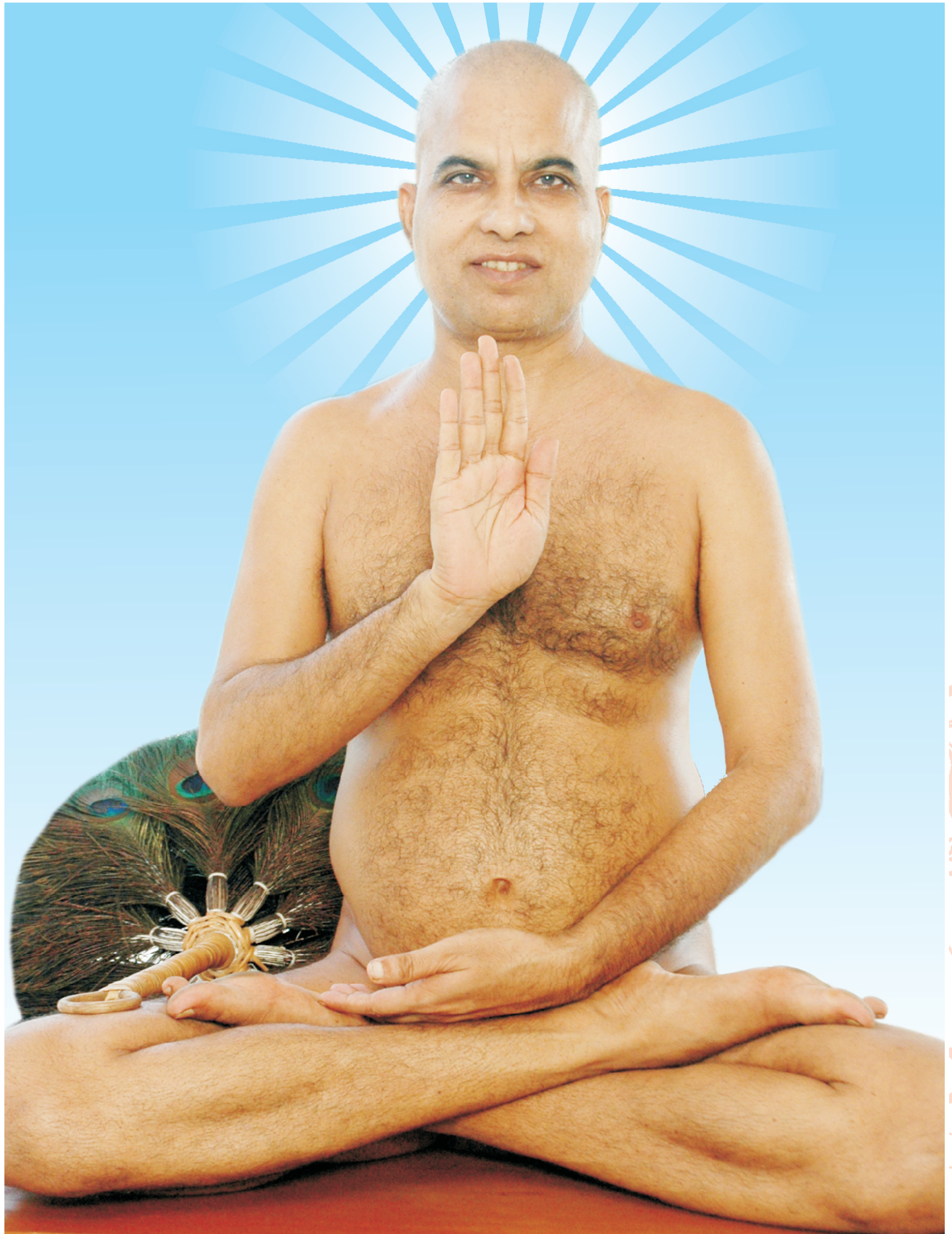

प. पू. श्रमण गणाचार्य श्री १०८ विराग सागरजी महाराज

प.पू. सारस्वत कवि श्रमणाचार्य १०८ श्री विभवसागरजी महाराज

खाली पेज

खाली पेज

आचार्य अमृत चंद्र सूरि विरचित

पुरूषार्थ सिद्युपाय

पर स्वोपज्ञ प्रवचन कृति

पुरुषार्थ शास्त्र

भाग - १

(१-३६ श्लोक)

शास्ता

सारस्वत कवि श्रमणाचार्य

विभवसागर मुनिराज

ग्रन्थ - **पुरुषार्थ शास्त्र**

प्रकाशक - **आचार्य श्री विभवसागर श्रुत संस्थान, जयपुर**

शुभाशीष - **प.पू. गणाचार्य श्री विरागसागरजी महाराज**

प्रवचनकार - **श्रमणाचार्य विभवसागरजी महाराज**

आलेखन - **पू. क्षुल्लिका श्री १०५ अर्हं श्री माताजी**

अर्थ सौजन्य - **पावन वर्षायोग-2013 अशोकनगर (म.प्र.)**

प्राप्ति स्थान - **श्रमण श्रुत सेवा संस्थान**
66 ए अर्जुन साउथ, गोपालपुरा बाईपास,
जयपुर (राजस्थान)
सौरभ जैन (संस्थापक एवं अध्यक्ष) **(9829178749)**
आशीष जैन (9001070444)
सुनील जैन (9414077736)

विशेष जानकारी के लिये- www.vibhavsagar.com
www.facebook.com/acharyashree108vibhavsagarjimaharaj
E-mail- acharyashreevibhavsagar.com

संस्करण - **प्रथम**

प्रतियां - **1000**

भाव मूल्य - **स्वाध्याय प्रतिज्ञा**

मुद्रक :
नवजीवन प्रिन्टर्स व स्टेशनर्स
'नवजीवन कॉम्पलेक्स' निवाई (टोंक-राज.) भारत
V : 01438- 222127, 223127
Email : navjeewannew@yahoo.com

आचार्य श्री विभवसागर श्रमण श्रुत सेवा संस्थान

संस्थापक एवं अध्यक्ष

सौरभ जैन, जयपुर

शिरोमणी संरक्षक

श्री दीपक जैन, शिकागो
श्री चक्रेश जैन (बरकतनगर) जयपुर
सुनील जैन, जयपुर
श्री उमेश कुमार जैन, श्रीमती बबीता जैन, सागर
श्री इन्द्रकुमार जैन जयपुर अशोका इलेक्ट्रीकल्स
श्री चम्पालाल जी जैन, नौहरकला, ललितपुर
श्री स्वतंत्र जैन, प्रिन्स जैन, ललितपुर
आशीष जैन, जयपुर

परम संरक्षक

श्री नेमीचन्द जैन, निवाई
श्री सत्यनारायण जैन, निवाई
श्री बाबूलाल जैन, कोटा
श्री टी.के. वेद, इन्दौर
श्री कपूरचंद्र जी लागौन, ललितपुर
श्री पवन झाँझरी, परभणी
श्री कांतिलाल महाजन, परभणी
श्री हेमन्त शाह, बीना
श्री राजेन्द्र जी पोतदार, टीकमगढ़
श्री नरेन्द्र कुमार, राजेश कुमार जैन, बिरधा ललितपुर

सदस्य

कल्पना जैन जबलपुर
सुशील जैन जयपुर
श्री रजनीश जैन, चीचली
श्री प्रदीप जावके, परभणी
श्री डॉ. डी.के. जैन, अशोकनगर
श्री डॉ. सगुनचंद्र जैन, अशाकेनगर
श्री विमल जैन, गढ़ाकोटा
श्री हेमकुमार जैन, हटा
श्री शिखर चंद्र जैन, भोपाल
श्री अरविन्द जैन, दूध वाले, भोपाल
श्री विमलकुमार जैन, अशोकनगर
श्री बाबूलाल अरूण कुमार,
साइकिल डीलर ललितपुर
श्री विनोद कुमार जैन, मेडीकल, अशोकनगर
श्री भानु जैन, बसंत बिहार, कोटा

प्रस्तुति

– श्रमणाचार्य विभवसागर मुनि

विश्व धर्म अहिंसा शास्त्र पुरुषार्थ सिद्धिउपाय शास्त्र दिगम्बर जैन आचार्य देव अमृतचंद्र सूरि विरचित उभयधर्म (श्रमण धर्म एवं श्रावक धर्म) प्रतिष्ठापक महामंगल ग्रंथ है। अहिंसा धर्म का सूक्ष्म अति सूक्ष्म विशद वर्णन करने वाला इतना सरल सटीक स्पष्ट भाषा में लिखित ग्रंथ अन्य किसी दर्शन एवं सम्प्रदाय में उपलब्ध नहीं होता। यह अभूतपूर्व अनमोल निधि समग्र विश्व में एक मात्र जैन दर्शन एवं जैन साहित्य भण्डार में संरक्षित है।

द्रव्य अहिंसा (प्राणी अहिंसा) को तो अहिंसा सभी प्रतिपादित करते हैं किन्तु भाव अहिंसा को अहिंसा एवं धर्म जननी कहने वाला एक मात्र जैन दर्शन है।

विभाव परिणाम को हिंसा और स्वभाव परिणाम को अहिंसा धर्म कहने वाले आचार्य शिरोमणि अमृतचंद्र देव सदा जयवंत हों।

विश्व की समस्त समस्याओं का समाधान एक मात्र अहिंसा धर्म में समाहित है। गांधीजी कहते हैं – मुझे नवीन उपदेश नहीं देना अहिंसा और सत्य प्राचीन काल से ही भारत देश को पवित्र कर रहें हैं मुझे उसी अहिंसा सत्य की स्थापना करना है।

प्रस्तुत शास्त्र "पुरुषार्थ शासन" ग्रन्थराज उक्त ग्रंथ पर हुए सार गर्भित प्रवचनों का सुखद संकलन है। प्रवचन के माध्यम से शास्त्र के गूढतम रहस्यों का उद्‌घाटन हुआ, जिससे गाथा का यथार्थ भाव शीघ्र समझ में आ जाता है।

पुरुष + अर्थ दो शब्दों के मेल से पुरुषार्थ शब्द बना है। पुरुष शब्द का अर्थ आत्मा तथा अर्थ = प्रयोजन। आत्मा के प्रयोजन को पुरुषार्थ कहते हैं। कहा भी –

" अस्ति पुरुषश्चिदात्मा "

ज्ञान, दर्शन, युत–चैतन्य आत्मा पुरुष है।

शास्त्र सार

विषय वस्तु यथाक्रम से सार संक्षेप लिये हुए सर्वप्रथम अधिकार में सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान का विवेचन है।

मंगलाचरण में केवलज्ञान ज्योति सदा जयवंत हो। यह प्रतिपादन कर द्वितीय कारिका का

त्रिभुवन गुरु, सर्व विरोध विनाशक, परमागम के बीज भूत, जिनवाणी के जीवन, शास्त्र के प्राणरूप अनेकांत को नमन किया है। तृतीय गाथा में – परमागम को तीन लोक दर्शी अनुपम नैत्र कहा। चतुर्थ कारिका में बताया कि व्यवहार और निश्चय नय के ज्ञाता पुरुषों के द्वारा जगत में धर्म तीर्थ प्रवर्तन होता है।

जो एकांत से एक नय को सर्वथा मानते हैं उनको देशना नहीं है। देशना श्रवण के पात्र उभय नयावलम्बी शिष्य हैं। आठवीं कारिका में दिया गया उपदेश अत्यंत उपादेय है जो इस प्रकार है – व्यवहार नय और निश्चय नय दोनों नयों को सम्यक् प्रकार जानकर जो जीव अपने स्वरूप में लीन होता है वह देशना के पूर्ण फल को प्राप्त करता है।

जीवकृत परिणमन को प्रमुख रूप से रेखांकित करते हुए आचार्य भगवन् ने ईश्वर कर्तावादी मान्यता का निर्मूलन किया।

आगम और अध्यात्म को समेटे हुए यह ग्रंथकारनिज स्वरूप में अविचल रूप से ठहरने को ही पुरुषार्थ सिद्धि कहते हैं।

श्रावकाचार प्रधान इस ग्रन्थ में **"मुनीनाम् अलौकिकी वृतिः"** मुनियों की चर्या अलौकिक होती है। जैसा कि वादिराज स्वामी छत्रचूड़ामणि ग्रंथ में लिखते हैं........ **"विचित्रं जैनी तपश्चर्या स्वैराचार विरोधिनी"** दिगम्बर मुनियों की तपश्चर्या अद्भूत होती है किन्तु स्वच्छंदता की विरोधी है।

आत्म स्वतंत्रता के अन्वेषक श्रमण स्वच्छंदाचरण से कोसों दूर रहते हैं। तीर्थंकर भगवान की आज्ञा एवं आगमानुकूल आचार मार्ग से अपने जीवन को संजीवन बनाते हैं।

भगवत् प्रवचन में सर्वप्रथम मुनिधर्म के उपदेश का ही विधान है। जो इस तथ्य को ध्यान में न रखकर मोक्षमार्ग में समर्थ उत्साही पुरुष को श्रावक धर्म का उपदेश देता है। वह उपदेश दाता ही प्रायश्चित का पात्र है। क्योंकि यह भी एक तरह की प्रताड़ना है। जिस कारण वह मोक्ष पुरुषार्थी भव्यात्मा को ग्रहस्थ धर्म में संतुष्ट रहना पड़ता है।

श्रावक को मोक्षमार्ग के सेवन की विधि बताते हुये कहा – "यथा शक्ति निषेण्यः" शक्ति अनुसार मोक्षमार्ग का सेवन (आचरण) करें।

मोक्षमार्गी भव्यात्मा को सर्वप्रथम पूर्ण प्रयत्नों के द्वारा अच्छी तरह सम्यग्दर्शन की आराधना करना चाहिए, क्योंकि सम्यक्त्व के होने पर ही ज्ञान और चरित्र सम्यक् होते हैं।

"जीवा जीवादीनाम् तत्त्वार्थानाम् श्रद्धानं सदैव कर्त्तव्यम्" सूक्ति प्रस्तुत करते हुए जीवादि सात तत्त्वों और नौ पदार्थों के श्रद्धान को सदा करना चाहिए। श्रद्धा पल दो पल के लिये नहीं

अनंतकाल के लिये होनी चाहिए। सम्यग्दर्शन के आठ अंगों का विवेचन अत्यंत सरल पद्धति में है– "शंका न कर्त्तव्या" शंका नहीं करना चाहिए। "न आकांक्षेत" आकांक्षा न करें। "विचिकित्सा न करणीया" ग्लानि नहीं करना। अमूढ़ दृष्टि रहना। धर्म को बढ़ाना, कहकर वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अत्यंत उपयोगी एक मार्मिक बात कही – "पर दोष निगूहन" दूसरे धर्मात्मा के दोष ढकना भी धर्म का अंग है।

युक्ति और श्रुतज्ञान के बल पर स्थितिकरण करना बताया। अहिंसा धर्म प्रेमियों में तथा सहधर्मी में उत्कृष्ठ वात्सल्य रखना चाहिए। तथा रत्नत्रय के तेज से आत्मा को हमेशा प्रभावित करना एवं दान, तप, जिनपूजा के माध्यम से जिन धर्म की प्रभावना करना। इस प्रकार तीस गाथा सूत्रों में सम्यग्दर्शन की विवेचना है – अनन्तर छह गाथा सूत्रों में सम्यग्ज्ञान आराधना को पृथक रूप से प्रस्तुत किया। सम्यग्दर्शन कारण है, सम्यग्ज्ञान कार्य है। सचमुच ज्ञान का स्थान लोक में बहुत ऊँचा है लेकिन वह फिर भी श्रद्धा के बाद ही है। सर्वप्रथम सम्यक् श्रद्धा अनिवार्य है। अनेकान्तात्मक तत्त्वों के अभ्यास को सम्यग्ज्ञान कहा – वह भी निरन्तर आठ अंग सहित ही होना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम खण्ड में 36 कारिकाओं पर प्रवचन संकलित है।

मालवाप्रदेश उत्तरप्रदेश और राजस्थान क समीपवर्ती ऐतिहासिक भूमि चंदेरी तथा धार्मिक भूमि थूवौन के निकट मध्यप्रदेश का प्रसिद्ध नगर अशोकनगर है। जहाँ वर्ष 2013 का वर्षायोग हुआ। वर्षायोग में इस ग्रंथ में जो प्रवचन हुए वह बड़े ही रोचक और सार गर्भित रहे मंदिर प्रांगण के समक्ष विशाल धर्म सभा आयोजित होती – जिसमें जैन–जैनेतर सभी प्रज्ञावान पुरुषों ने ज्ञानामृत का पान किया। वह अभूतपूर्व दुर्लभ प्रवचन अर्हम्श्री माताजी की लेखनी से लिखित होकर आज शास्त्र का रूप ले रहा है। आगम के अनुकूल यह देशना समस्त सृष्टि के जीवों के कल्याण के उद्देश्य से इस शास्त्र का प्रकाशन परम पूज्य गणाचार्य गुरुवर विरागसागर जी महाराज के आशीर्वाद से हो रहा है।

ग्रंथ लेखनकाल में समस्त संघस्थ साधकों का अपरिमित सहयोग मिला। एतदर्थ आभार, आशीष।

ग्रन्थ प्रकाशन हेतु जिन दानवीर महानुभावों ने अपना अर्थ पुरुषार्थ सफल किया उनके लिए आशीर्वाद। ग्रंथ मुद्रण में नवजीवन प्रिंटिंग प्रेस निवाई ने आधुनिक प्रकाशन पद्धति से प्रकाशित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, आपकी श्रुत सेवा चिरकाल तक जयवंत हो। यह शास्त्र सदा जयवंत हो।

पार्श्वनाथ निर्वाण महोत्सव **आचार्य विभवसागर**

3 अगस्त, 2014 वर्णी भवन, मोराजी सागर

संवेदना

– मुनि श्री आचरण सागरजी

अहिंसा आत्मा का एक सर्वोच्च अंग है इस अहिंसा के अभाव में आत्मा परिपूर्ण रूप से पंगु है आत्म स्वरूप में ठहरने से अहिंसा महाव्रत का अच्छा पालन होता है अहिंसा की परिपूर्णता तो भवों के अभाव करने की मास्टर चाबी है अहिंसा की महिमा तो अनुपमेय है अहिंसा मोक्षमार्ग की सीढ़ी है अहिंसा आत्मोन्नति का उत्कृष्ट कारण है अहिंसा 'दश धर्मो का राजा है जिस जीव के अंतरग में अहिंसा का उद्‌भव नहीं हुआ तो वह जीव अभी बहिरात्मा है' अहिंसा धर्म की महिमा को गणधर व इन्द्र भी कहने में असमर्थ हैं आत्मा में अहिंसा का अगर वास नहीं तो वह आत्मा कभी भी संयम के सुवास से महक नहीं सकती।

परम पूज्य आचार्य भगवन् श्री अमृतचंद्र स्वामी की यह कृति विश्व के लिए ऐसा अनमोल उपहार है जिसका मूल्य कोई भी खजाने का वितरक यानि खजांची त्रिकाल में भी उसकी कीमत को आँक नहीं सकता। इस ग्रंथ के मूल रचियता ने इस ग्रंथ की अंतिम कारिका में अपनी लघुता प्रकट करते हुए कहा कि –

वर्णैः कृतानि चित्रैः पदानि तु पदैः कृतानि वाक्यानि।

वाक्यैः कृतं पवित्रं शास्त्रमिदं न पनरस्माभिः ।।226।।

भावार्थ – अकारादि सम्पूर्ण अक्षर पौद्‌गलिक है, अनादि निधन हैं, इन्हीं का जब विभक्त्यन्त समुदाय होता है, तब पद कहलाता है, तथा अर्थ के संबंधपर्यंत क्रियापूर्ण पदों का समुदाय वाक्य कहलाता है, और उन्हीं वाक्यों का एक समुदाय रूप यह ग्रंथ हो गया है। इसीलिए इसमें मेरी कृति कुछ भी नहीं है सब स्वाभाविक रचना है।

इस महामांगलिक ग्रंथ पर वात्सल्य वारिधि आचार्य श्री विभवसागर जी गुरुदेव ने अपनी उत्तमोत्तम मनीषा से जो सारगर्भित देशना जनसमुदाय के लिए प्रदान की है। उसी देशना का संकलन कर यह ग्रंथ रूप में आ रहा है जिससे वर्तमान पीढ़ी को सम्यक् दिशा बोध का भान होगा यह ग्रंथ आत्मोत्थान कराने में नींव का पत्थर सिद्ध होगा। एक-एक कारिका पर आचार्य श्री ने गहनतम चिंतन मंथन व अनचिंतन कर करके जो श्रुत का प्रसाद संसारी जीवों के लिए दिया है वह अनुकरणीय है।

हमने समोवशरण में तो प्रभु की देशन का श्रवण नहीं किया लेकिन प्रभु के प्रतिनिधि के रूप में जो गुरुदेव ने देशना दी है उससे उस बड़ी भारी कमी की कुछ अंशो में खानापूर्ति जरूर हुई है, गुरुदेव की प्रवचन शैली हृदय ग्राह्य व रोम-रोम में नयी चेतना को जागृत करने में समर्थ है श्रोतागण तो ऐसे मंत्रमुग्ध हो जाते हैं कि जैसे उनको गुरु की वाणी में प्रभु की वाणी ही मिल रही हो।

और इसको कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी कि मैंने प्रत्यक्ष में श्रोताओं की भाव भंगिमा व प्रवचन के बाद गुरु की उस सम्यक वाणी की अत्यधिक प्रशंसा को श्रोताओं के माध्यम से श्रवण किया है। क्योंकि गुरुदेव कभी-कभी स्वंय कहते हैं कि जब मैं शास्त्र की आसंदी पर विराजमान होता हूँ तो श्रोताओं के तीव्र पुण्य से मेरी वाणी में ही जिनदेव के बताए हुए वाक्यांश प्रस्फुटित होने लगते हैं।

❑❑❑

विनयांजलि

मेरा प्रथम नमन् मेरी आस्था के परम पुँज परम श्रद्धेय मुनि श्री प्रज्ञा सागर जी महाराज के श्री चरणों जिन्होंने मुझमें संस्कारों का बीजारोपण किया उन संस्कारों के बीजों को परमपूज्य श्रमणाचार्य विभव सागर जी महाराज ने अपने वात्सल्य के जल से व ज्ञान की खाद से सींचा। इस पंचमकाल में चतुर्थ काल सी चर्या का पालन करने वाले श्रमणाचार्य के श्री चरणों में कोटि-कोटि नमन् जिन्होंने अपनी अनुकम्पा का ऐसा वरदहस्त मेरे शीश पर रखा कि मेरे भटके हुये जीवन को सन्मार्ग मिल गया। गुरुवर जब सिंहासन पर बैठकर प्रवचन देते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानो सचमुच तीर्थंकर भगवान के समवशरण में दिव्य ध्वनी खिर रही हो।

गुरुदेव तत्व के ज्ञाता है आपके श्रीमुख से जिनवाणी का पान करके भक्त जन परमानन्द की अनुभूति करते हैं आपकी वाणी जग कल्याणकारी है।

गुरुदेव आपके प्रवचन से हमारी आत्मा का प्रदेश-प्रदेश अलौकिक आनन्द की अनुभूति को प्राप्त करता है।

आपका लेखन भक्ति को समेटे हुए है, आपकी काव्य कालिन्दीअपूर्व है। आप सुकोमल पदावली के धनी है, आपका शब्द ललित्य व छन्द साहित्य अद्वितीय है। मैं और मेरा परिवार, मेरी माताजी सुनिता जैन, धर्मपत्नि पूजा जैन एवं बेटी युक्ति आपके परम शिष्य है जो नित प्रतिदिन आपकी भक्ति में लीन रहते है।

हे प्रभो दुनिया से क्या मांगू,
चलो आपसे ही मांग लेता हूँ।
अरे आपसे क्या मांगू,
आपको ही मांग लेता हूँ।।

पहले सम्यक की नींव भरी, फिर ज्ञान भित्ती ऊँची करी।
शुभ ज्ञान मयी दीवारों पर, चारित्र छत्र निर्मित की।
यह मोक्षमहल के शिल्पकार, विभव सागर जिनका नाम।

गुरुवर मैं सिर्फ तुम्हारा हूँ ! गुरुवर मैं सिर्फ तुम्हारा हूँ!! गुरुवर मैं सिर्फ तुम्हारा हूँ।

सौरभ जैन, जयपुर
संस्थापक एवं अध्यक्ष - श्रमण श्रुत सेवा संस्थान
मंत्री - श्री दि. जैन मुनि सेवा संघ, शक्ति नगर जयपुर

कृपया ध्यान दें -

1. शास्त्रजी! के प्रारम्भ में मंगलाचरण करें।
2. शास्त्रजी! के पृष्ठ पलटते समय परिमार्जन करें।
3. शास्त्रजी को विनय पूर्वक, जीव रहित, उचित स्थान पर विराजमान करें।

शास्त्र स्वाध्याय का प्रारम्भिक मंगलाचरण

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॐ जय जय जय नमोऽस्तु ! नमोऽस्तु !! नमोऽस्तु !!!

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।
ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः।।1।।

अविरल-शब्दघनौघ, - प्रक्षालित-सकलभूतल् मल कलङ्का।
मुनिभि-रुपासित-तीर्था, सरस्वती हरतु नो दुरितम्।।
अज्ञान-तिमिरान्धानां, ज्ञानाञ्जन-शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।2।।

श्री परमगुरवे नमः, परम्पराचार्यगुरवे नमः सकलकलुष विध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं भव्य-जीवमनः प्रतिबोध-कारकमिदं शास्त्रं श्री (ग्रन्थ का नाम) नामधेयं, अस्य मूलग्रन्थकर्तारः श्री सर्वज्ञदेवास्तदुत्तर ग्रन्थकर्त्तारः श्री गणधर-देवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचोऽनुसार मासाद्य श्री (आचार्य का नाम) आचार्येण विरचितं, श्रोतारः सावधानतया श्रृण्वन्तु।

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।।
सर्व मङ्गल्य- माङ्गल्यं, सर्वकल्याणकारकम्।
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयतु शासनम्।।

प्रस्तावना

आचार्य अमृतचन्द्र सूरि का मोक्षमार्ग

– विद्यावारिधि डॉ. महेन्द्रसागर प्रचंडिया

संसार की जितनी धार्मिक मान्यताएँ हैं उन सब का मूल आधार है – आत्मा और परमात्मा। इन मान्यताओं में कुछेक हैं परमात्मवादी और कुछ हैं आत्मवादी। परमात्मवादी धार्मिक मान्यता में ईश्वर, भगवान, ब्रह्म चाहे कुछ भी नाम हो, वह सर्वतंत्र स्वतंत्र शक्ति है। वही कर्म का कर्त्ता, हर्त्ता और भोक्ता है। वह अपनी इच्छा के अनुसार संसार–यंत्र का संचालन करता है। आत्मा उसके अधीन होकर आदेशानुसार शुभ–अशुभ कर्म करता है। आत्मा का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं।

ईश्वरीय सिंहासन पर आत्मा को प्रतिष्ठित करने वाली प्रमुख मान्यता है – श्रमण परम्परा। इसके अनुसार आत्मा ही सर्वशक्ति सम्पन्न कर्म का कर्त्ता, हर्त्ता और भोक्ता है। इसके अनुसार मूल है आत्मा और उसी का विकसित शुद्ध निर्मल स्वरूप अन्तत: परमात्मा होता है। कर्मयुक्त जीव आत्मा है, जबकि कर्ममुक्त जीव है! परमात्मा। कर्म से निष्कर्म अवस्था है – मोक्ष। मोक्ष प्राप्त परमात्मा जन्म–मरण के दारुण दु:खों से सर्वथा मुक्त हो जाता है। सिद्ध हो जाता है।

मोक्ष प्राप्त्यर्थ अनेक धर्माचार्यों ने नाना विधि चर्चा की है। दसवीं शदी के महामनीषी आचार्य अमृतचन्द्र सूरि ने भी मोक्ष विषयक उपायों पर चिन्तवन किया है। यहाँ उनके द्वारा प्रतिपादित मोक्षमार्ग का संक्षेप में विश्लेषण करना हमारा मूलाभिप्रेत है।

आगम के सम्पूर्ण अङ्गों तथा पूर्वों का पाठ–पारायणपूर्वक ज्ञान प्राप्त करने पर भी, सम्यग्दर्शन के अभाव में वह अन्तत: निरर्थक और निस्सार हो जाता है। व्रत और महाव्रतों की साधना–सातत्य साधक को ग्रैवेयक तक पहुँचाने में भूमिका का भले ही सफल निर्वाह कर ले, किन्तु सम्यग्दर्शन के

अभाव में वह सर्वथा असंयमी कहलाता है और अन्ततः प्राणी को तिर्यंच और नरक गति में ला पटकता है। जबकि सम्यग्दर्शनपूर्वक यत्किंचित् ज्ञान और चारित्र साधना करने पर साधक का ज्ञान और चारित्र कार्यकारी प्रमाणिक होता है।[1]

सम्यग्दर्शन के लिए किसी साधक को षट् द्रव्यों का अभिज्ञान होना चाहिए, यथा –

(1) जीव (2) पुद्गल (3) धर्म

(4) अधर्म (5) आकाश (6) काल

इसी प्रकार सप्त तत्त्वों को सावधानीपूर्वक जानना और श्रद्धान करना परमावश्यक है। सप्त तत्त्व निम्नरूप उल्लिखित हैं –

(1) जीव (2) अजीव (3) आस्रव

(4) बंध (5) संवर (6) निर्जरा

(7) मोक्ष

सम्यक्ज्ञानपूर्वक इन पर दृढ़ श्रद्धान रखने से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। सम्यग् दृष्टि– जीव में परभावों से भिन्न अपने चैतन्य स्वरूप को आपरूप स्वीकारना वस्तुतः सम्यक् श्रद्धान को जन्म देता है।[2]

विवेच्य आचार्य ने भी सम्यग्दृष्टि जीव में आठ अङ्गों का प्रकट करना आवश्यक स्वीकार किया है। आठ अङ्गों का उल्लेख निम्न प्रकार है –

(1) निःशंकित (2) निःकांक्षित (3) निर्विचिकित्सा

(4) अमूढ दृष्टि (5) उपगूहण (6) स्थितिकरण

(7) वात्सल्य (8) प्रभावना

इन आठ अङ्गों के स्वरूप पर यहाँ संक्षेप में चर्चा करना असंगत नहीं होगा।

निःशंकित – यह वस्तुतः आत्म स्वभाव है और सर्वथा अनुभूति का विषय है। इसके जाग्रत होने से भय–भावना का सर्वथा समापन हो जाता है। संसार के समस्त भय–भेद जैनाचार्यों द्वारा प्रणीत सप्त भय रूपों में समाहित हो जाते हैं।

सप्तभय निम्न रूप हैं –

(1) इहलोक के भय　　(2) परलोक के भय　　(3) वेदना-भय

(4) अरक्षा-भय　　(5) अगुप्ति-भय　　(6) मरण-भय

(7) आकस्मिक भय

फलस्वरूप जिनेन्द्र भगवान् द्वारा प्रणीत पदार्थों में कहीं कभी सन्देह नहीं किया जाता। आचार्य अमृतचन्द्र सूरि की मान्यता रही है कि जिनको स्वानुभव हो जाता है, उन्हें कभी भय नहीं लगता है। अस्तु, सम्यग्दृष्टि स्वानुभवी होने के कारण सर्वदा नि:शङ्क होते हैं।[3]

नि:कांक्षित – कांक्षा अथवा वांक्षा प्राणी को भव-भ्रमण में सक्रिय रखती है। लौकिक पुण्य-फल अर्थात् ऐश्वर्य, सम्पदा, पुत्र-कलत्रादि और पारलौकिक पुण्यफल अर्थात् चक्रवर्ती, नारायण, इन्द्र-पदों की आकांक्षा रखना वस्तुत: आकुलता को आमंत्रित करता है। सम्यक्दृष्टि इस प्रकार के किसी भी रूप को कभी स्वीकार नहीं करते। यही रूप नि:कांक्षित अङ्ग कहलाता है।[4]

निर्विचिकित्सा – विचिकित्सा की मूल भावना ग्लानिमूलक है। ग्लानिरहित भावना निर्विचिकित्सा है। निर्विचिकित्सक प्राय: विचारता है कि संसारी जीवों में जो भेद-रूप दिखलाई देता है वह सब कर्मकृत है अन्यथा सभी आत्माएं समान है। फलस्वरूप दु:खद-भावों-भूख-प्यास आदि अथवा दीन-दुखियों में तथा दुर्गंधित पतित पदार्थों में ग्लानि न करने का काम है वस्तुत: निर्विचिकित्सा।[5]

अमूढ़ दृष्टि – सम्यक्दृष्टि भय, आशा-प्रत्याशा, प्रेम अथवा लोभ मुखी होकर कभी किसी प्रकार कुदेव, कुगुरु तथा कुधर्म-कुशास्त्र की विनय-वंदना नहीं करते हैं। इस शुभ निश्चय और दृढ़ श्रद्धान का नाम है अमूढ़दृष्टि।

लोक में चमत्कार, मनौती-मान्यता अथवा अन्य किसी भी जगतिक दृष्टि से अपने मनोनुकूल प्रतीत होनेवाली शक्तियों के प्रति आकर्षित नहीं होना चाहिए क्योंकि प्रत्येक कर्म के कर्त्ता तो हम स्वयं ही होते हैं और कर्म-फल के भोक्ता भी। इसी प्रकार कुगुरु और कुशास्त्रों में कभी अभिरूचि तथा अनुरक्ति का न होना वस्तुत: श्रेयस्कर होता है। अज्ञानी और अश्रद्धानी लोग प्राय: विचलित हो जाते हैं। सम्यक्दृष्टि कभी किसी लोभ-प्रलोभ में नहीं आते। वे सदा-सर्वदा अपने निश्चय में आरूढ़ रहते हैं।[6]

उपबृंहण – उपबृंहण भाव का अपरनाम है – उपगूहन। इनमें अपने लौकिक गुणों की अनुशंसा और दूसरों के दोषों की चर्चा नहीं की जाती; क्योंकि इससे स्व–पर को बड़ा संताप और संक्लेश होता है, फलस्वरूप ये सब हिंसा को जन्म देते हैं। इसीलिए सम्यक्‌दृष्टि जीव आत्म–प्रशंसा और पर–निन्दा में कभी रूचि नहीं रखते।[7]

स्थितिकरण – पत और पतित होने से किसी भी धर्मभ्रष्ट प्राणी को पुनः दृढ़ करना वस्तुतः स्थितिकरण भावना कहलाती है। काषायिक कौतुकों से प्रभावित होकर यदि अपने अथवा पराये प्राणी के परिणाम पतित होते हैं तो युक्ति पूर्वक उन्हें सम्यक्‌धर्म में स्थिर करना वस्तुतःसम्यक्‌दृष्टि का परम कर्त्तव्य होता है। निःस्पृही किसी भी उन्मार्गी को सन्मार्ग–मुखी करना वस्तुतः सच्चा अनुग्रह है, और यही स्थितिकरण गुण है।[8]

वात्सल्य – वात्सल्य का अर्थ है – प्रेम–भाव। छोटों के प्रति बड़ों का स्नेहपूर्ण व्यवहार वस्तुतः वात्सल्य कहलाता है। दार्शनिक दुनिया में वात्सल्य को दो भागों में विभक्त किया गया है – (1) परात्म वात्सल्य, (2) स्वात्म वात्सल्य।

धर्म और धर्मात्माओं पर आगत उपसर्ग अथवा आपत्तियों का तन, मन, धन अर्थात् पूर्ण शक्ति और सामर्थ्यपूर्वक निराकरण तथा सुरक्षण करने का प्रयत्न–प्रयास करना वस्तुतः कहलाता है वात्सल्य अङ्ग। दरअसल यह परात्म वात्सल्य के अन्तर्गत आता है और परीषह तथा उपसर्ग से पीड़ित प्राणी द्वारा अपने उत्तम आचरण, ज्ञान और ध्यान में किसी प्रकार की शैथिल्य न आने देने का नाम है स्वात्म वात्सल्य।[9]

प्रभावना – धर्म और धार्मिक कार्यों में प्रोन्नति करने का नाम है – प्रभावना। प्रभावना को भी प्रयोग की दृष्टि से दो भेदों में विभक्त किया गया है – (1) स्वात्म प्रभावना, (2) परात्म प्रभावना।

अपने विवेक, संयम और तपश्चरण के आधार पर उत्कृष्ट चारित्र–साधना से स्व–पर कल्याण में सहकारी भूमिका का निर्वाह करना वस्तुतः स्वात्म प्रभावना कहलाती है जबकि चार प्रकार के दान देकर पूजन–अर्चन, व्रत–अनुष्ठानों में सक्रिय भाग लेकर तथा रथयात्रा, प्रभातफेरी आदि सत्कर्मों के द्वारा दूसरों को धर्मोन्मुख करने का प्रयत्न वस्तुतः बाह्य प्रभावना अङ्ग है। आत्म–प्रभावना सर्वोत्तम और परम उपादेय है जबकि बाह्य प्रभावना है ग्रहण करने योग्य।[10]

विवेच्य आचार्य की भी मान्यता रही है कि सम्यक्‌दृष्टि जीव पच्चीस दोषों तथा अतिचार और अनाचार के अभाव में स्वयं को साधता है। पच्चीस दोषों को निम्नरूप में जाना जा सकता है। यथा –

(1) निःशंकित–रहित	(2) निःकांक्षित–रहित
(3) निर्विचिकित्सा–रहित	(4) अमूढ़ दृष्टि–रहित
(5) उपब्रंहण–रहित	(6) स्थितिकरण–रहित
(7) वात्सल्य–रहित	(8) प्रभावना–रहित
(9) जातिमद	(10) कुलमद
(11) रूपमद	(12) ज्ञानमद
(13) धनमद	(14) बल का मद
(15) तप का मद	(16) प्रभुता का मद
(17) लोक मूढ़ता	(18) देव मूढ़ता
(19) गुरु मूढ़ता	(20) मिथ्यादर्शन
(21) मिथ्याज्ञान	(22) मिथ्याचारित्र
(23) मिथ्या दर्शन के उपासक	(24) मिथ्या ज्ञान के उपासक
(25) मिथ्या चारित्र के उपासक	

सम्यक्‌दर्शन के अभाव में सम्यक्‌ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र की साधना और आराधना सर्वथा निरर्थक होती है।

सम्यक्‌दर्शन के उपरान्त दूसरा किन्तु महत्त्वपूर्ण रत्न चरण है – सम्यक्‌ज्ञान। विवेच्य आचार्य अनुमोदन करते हैं कि पदार्थों का जो स्वरूप जिनागम में उल्लिखित है उसे प्रमाण–नय–पूर्वक अपने उपयोग में निश्चित कर यथावत जानना और मानना वस्तुतः सम्यक्‌ज्ञान है। यद्यपि सम्यक्‌ ज्ञान सम्यक्‌दर्शन के साथ ही होता है तथापि इसका पृथक्‌ से आराधना करना ही कल्याणकारी है क्योंकि दोनों के लक्षण प्रायः भिन्न है। सम्यक्‌दर्शन का लक्षण है श्रद्धान और सम्यक्‌ज्ञान का लक्षण है जानना।[11]

आचार्य अमृतचन्द्र सूरि आगे कहते हैं कि जिनेन्द्र देव सम्यक्‌ज्ञान को कार्य कहते हैं जबकि सम्यक्‌दर्शन को स्वीकारते हैं – कारण। अस्तु, सम्यक्‌दर्शन की आधारशिला पर स्थिर होकर सम्यक्‌ज्ञान की साधना और आराधना सम्भव और स्वाभाविक है।[12]

सम्यक्ज्ञान होने पर संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय के लिए कोई अवकाश शेष रहता नहीं। पदार्थ के स्वरूप को यथार्थ जानना वस्तुतः सम्यक्ज्ञान है और सम्यक्ज्ञान निश्चय नय से आत्मा का निज स्वरूप है, यह सम्यक्ज्ञान स्व–पर प्रकाशक होता है।[13]

ज्ञानार्जन करने के लिए एक आवश्यक आचार–संहिता भी है। संहिता के सभी अङ्गों के साथ ज्ञानार्जन करना वस्तुतः श्रेयस्कर कहा गया है।[14]

सम्यग्ज्ञान के आठ अङ्ग निम्न प्रकार हैं –

1. **शब्दाचार** – शब्द–पद आदि भाषा के प्रमुख अंग हैं। इन सबका बोध व्याकरण के वातायन से किया जाता है। व्याकरण विद्या के अनुसार अक्षर, पद, मात्रादि का शुद्धतापूर्वक पाठ–परायण करना वस्तुतः शब्दाचार कहलाता है।

2. **अर्थाचार** – अर्थ अभिप्राय के विषय में अत्यन्त सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है। शब्द स्थूल होते हैं जबकि अर्थ है सर्वथा सूक्ष्म। स्थूल के माध्यम से सूक्ष्म की अभिव्यञ्जना सम्भव नहीं तथापि केवल यथार्थ शुद्ध अर्थ मात्र के निश्चय करने को कहा गया – अर्थाचार।

3. **उभयाचार** – शब्द और अर्थ का शुद्ध पाठ–परायण तथा उसके अवधारण करने को उभयाचार कहा गया है।

4. **कालाचार** – उत्तम और शुभ मुहूर्त में पाठ–परायणकार ज्ञान विषयक विचारकरना कहलाता है – कालाचार।

5. **विनयाचार** – शरीर शुद्धि अर्थात् शुद्ध जल से हाथ–पाँव धोकर, क्षेत्रशुद्धि अर्थात् निर्मल स्थान पर पद्मासन अथवा सुखासन में बैठकर, चित्तशुद्धि अर्थात् निश्चिन्तभाव से नमस्कारपूर्वक शास्त्र आदि के स्वाध्याय करने को विनयाचार कहते हैं।

6. **उपधानाचार** – ज्ञान की आराधना इस प्रकार करनी चाहिए कि वह तत्काल स्मृति में उपधानित होता जाये। यही प्रक्रिया कहलाती है – उपधानाचार।

7. **बहुमानाचार** – शास्त्र तथा शास्त्री का पूर्ण सम्मान के साथ ज्ञानार्जन करने को कहा गया बहुमानाचार।

8. **अनिह्नवाचार** – गुरु तथा शास्त्र जिसके माध्यम से जो ज्ञानार्जन हुआ अथवा किया गया है, उसका यथास्थान पर सम्मानपूर्वक उल्लेख करना वस्तुतः कहलाता है – अनिह्नवाचार। इस विधि से किया गया ज्ञानार्जन ज्ञानी में विनयभाव तथा आर्जव धर्म लक्षण का संचार कर उठता है।

दर्शन और ज्ञान के उपरान्त मोक्षमार्ग में सम्यक्‌चारित्र की चर्चा की जाती है।[15] चारित्र–साधना से पूर्व यदि साधक में दर्शन और ज्ञान न हो तो चारित्र–चारूता सुगंधविहीन सुन्दर सुमन की भाँति अनुपयोगी होता है।[16]

सम्यक्‌चारित्र साधना के लिए पापपूर्ण मन, वचन और काय का राहित्य तथा कषायकौतुकों की मन्दतापूर्वक पर–पदार्थों से विरक्तता होना परम आवश्यक है। मन्द कषाय होने पर विशुद्धता का संचार हो उठता है जो शुभोपयोग के लिए आवश्यक है।[17]

सम्यक्‌चारित्र के अभिदर्शन शुद्धोपयोग में ही सुलभ होते हैं। उपयोग की दृष्टि से चारित्र के दो भेद किए गए हैं – 1. सकल चारित्र, 2. देश चारित्र।

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह – इन पंच पापों के सर्वथा त्याग करने पर सकल चारित्र की सम्भावना उत्पन्न होती है जबकि देश चारित्र के लिए पंच पापों का एकदेश त्याग आवश्यक होता है। सकल चारित्र परमपूज्य मुनिराजों की चारित्रिक साधना का विषय है और देश चारित्र का अनुपालन–अभ्यास करते हैं – श्रावक।[18]

उपर्यांकित संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट है कि मोक्ष–मार्ग का रहस्य रत्नत्रय की साधना में अन्तर्भुक्त है। यहाँ एक बात ध्यातव्य है कि वचन की अपेक्षा से सम्यक्‌दर्शन, सम्यक्‌ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र का क्रमशः उल्लेख अनुशीलन किया गया है पर वास्तविकता यह है कि इन त्रय रत्नों का प्रकाश एकसाथ निष्कम्प प्रज्ज्वलित होता है। सूत्र–शास्त्र के प्रणेता आचार्य उमास्वामी का प्रसिद्ध सूत्र – 'सम्यक्‌दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' इस कथन का पोषण करता है।[19] इस सूत्र का अर्थ यदि व्याकरण के निष्कर्ष पर मूल्याङ्कन करें तो सहज रूप में स्पष्ट हो जाता है कि सम्यक्‌दर्शन, ज्ञान और चारित्र वस्तुतः बहुवचन है और 'मोक्षमार्गः' अंश है एकवचन, अर्थात् जब बहुवचन एकवचन में परिणत हो जाता है तब मोक्षमार्ग का प्रवर्तन होता है।[20]

❑❑❑

अनुक्रमणिका

क्र.सं.		पृष्ठ संख्या
1.	मूल ग्रन्थकार का मंगलाचरण	1
2.	बहिरात्मा अंतरात्मा तथा परमात्मा का स्वरूप	5
3.	चेतन, अचेतन विवेचन	6
4.	आगम नमस्कार	13
5.	ग्रन्थ रचने की प्रतिक्षा और आचार्य का अभिप्राय	13
6.	धर्म का प्रसार करने वाले कौन हो सकते हैं?	20
7.	संसारी जीवों की समझ	20
8.	निश्चय नय को नहीं जानने वाले पुरुष हेतु उदाहरण	29
9.	उपदेश देने का पात्र	29
10.	पुरुष का स्वरूप कथन	30
11.	जीवन के स्वयं कर्ता भोक्तापने का निरूपण	40
12.	पुरुषार्थ सिद्धि का स्वरूप	52
13.	जीव और निमित्त नैमित्तिक भाव	66
14.	कर्म और जीव में निमित्त नैमित्तिक भाव	76
15.	अज्ञानी जीवों की समझ	76
16.	पुरुषार्थ सिद्धि का उपाय	90
17.	मुनियों की अलौकिक वृत्ति कथन	103
18.	एकदेश व्रत का उपदेश किसे देना ठीक नहीं	120
19.	क्रम रहित उपदेश से क्या हानि होती है।	121
20.	सम्यग्दर्शन ही प्रथम क्यों प्राप्त करना चाहिये	123
21.	उपदेश ग्रहण करने वाले पात्र का कर्त्तव्य	123
22.	जीवादि तत्वों का यथार्थ श्रद्धान करने का उपदेश	131

क्र.सं.	पृष्ठ संख्या
23. निःशंकित अंग का स्वरूप	143
24. निःकांक्षित अंग का लक्षण	154
25. निर्विचिकित्सा अंग का लक्षण	166
26. अमूढदृष्टि अंग का लक्षण	175
27. उपगूहन अंग का लक्षण	186
28. स्थितिकरण अंग का लक्षण	195
29. वात्सल्य अंग का लक्षण	209
30. प्रभावना अंग का लक्षण	219
31. सम्यग्ज्ञान का विवेचन	228
32. दर्शन और ज्ञान में भेद	241
33. दोनों में कार्य कारण भाव	241
34. समकाल में होने पर भी सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में कार्य कारण भाव	251
35. सम्यग्ज्ञान के आठ अंग	252
36. आचार्य श्री का जीवन परिचय	263
37. परम पूज्य १०८ आचार्य श्री विभवसागरजी महाराज के वर्षायोग स्थान	264
38. आचार्य श्री द्वारा सृजित साहित्य	264

मूल ग्रंथकार का मंगलाचरण

तज्जयति परं ज्योतिः समं समस्तैरनन्तपर्यायैः।
दर्पणतल इव सकला प्रतिफलित पदार्थमालिका यत्र।।1।।

अन्यवार्थ- (यत्र) जिसमें (समस्तैः) संपूर्ण (अनन्तपर्यायैः) अनंतपर्यायोंसे (समं) सहित (सकला) समस्त (पदार्थमालिका) पदार्थो की माला अर्थात् समूह (दर्पण तले) दर्पण के तल भाग के (इव) समान (प्रतिफलित) झलकती है, (तत्) वह (परं) उत्कृष्ट (ज्योतिः) ज्योति अर्थात् केवल ज्ञानरूपी प्रकाश (जयति) जयवंत हो।

प्रिय आत्मन् !

माँ जिनवाणी, जगकल्याणी, अरिहंत भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य आचरित, उपाध्याय उपासित, सर्वसाधु साधित, जीव तत्त्व प्रवोधिनी, अजीव तत्व विवेचनी, सर्वास्रव निरोधनी, कर्म बंध विमोचिनी, संवर पद प्रदायिनी, निर्जरा, निर्झरणी, मोक्ष-महल धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण कारिणी, हे जिनवाणी माँ तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल पद में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन् !

गंगा के नीर में, यमुना के तीर में, अंजना के पीर में, द्रोपदी के चीर में, गौतम और महावीर में, तुलसी और कबीर में, एक ही स्वर समाया है जय जिनवाणी, जय महावीर। प्रकृति के श्रृंगार में, राष्ट्र के संस्कार में, माता के प्यार में, पिता के दुलार में, सृष्टि के परोपकार में, एक ही स्वर गूँजता है जय जिनवाणी, जय महावीर। सरगम की गान में, वीणा की तान में, राष्ट्र के गान में, प्रभू के

गुणगान में, ज्ञानियों के ज्ञान में, दानियों के दान में, ध्यानियों के ध्यान में, एक ही स्वर मुखरित होता है जय जिनवाणी, जय महावीर।

कल-कल करती हुयी सरितायें, रिझ-झिम बरसते हुये बादल, कलरव करते हुये पक्षी, कूह-कूहक कुहुकती हुयी कोयलियाँ, चह-चह चकती हुयी चिड़ियाँ अपने स्वरों में यही तो गाती है कि जय जिनवाणी, जय महावीर।

प्रिय आत्मन् !

आज है भारतीय संस्कृति का महान पर्व वीर शासन जयंती है। कल तक हम सभी पारस नाथ के शासन काल में विराजमान थे भगवान महावीर स्वामी का जन्म पार्श्वनाथ के शासनकाल में हुआ। भगवान महावीर की तपस्या भगवान पार्श्वनाथ के शासन काल में हुई। महावीर का छियाठक दिन तक केवली काल बिना उपदेश के पार्श्वनाथ के शासन काल में बीता जब तक तीर्थंकर की दिव्य-ध्वनि नहीं खिरती है तब तक शासन काल प्रारंभ नहीं होता है।

शासन का तात्पर्य है दिव्य-ध्वनि, शासन का तात्पर्य है जिनवाणी, शासन का शाब्दिक अर्थ है शासन का उपदेश शासन जो शासित करता है शासन तीर्थंकर भगवान द्वारा प्रवर्तित उपदेश माला शासन से तात्पर्य सर्वज्ञ भगवान की वाणी का उद्भव।

प्रिय आत्मन् !

आज के दिन राजगृही के विपुलाचल पर्वत पर अंतिम तीर्थंकर भगवान श्री महावीर स्वामी के मुखारबिंद से आज जबकि चौथे काल के चौतीस वर्ष शेष रह गये थे और आज पंचम काल का वीर निर्वाण संवत् का पच्चीस उन्तालीस और बत्तीस वर्ष पहले देशना हुयी थी। इस क्रम में पच्चीसौ उनहत्तर वां वीर शासन जयंती पर्व हम यहाँ मना रहे हैं।

हे चैतन्य आत्माओं !

पार्श्वनाथ स्वामी तो मोक्ष चले गये, पर भक्तों के मन में प्यास दे गये कि महावीर स्वामी कब दिव्य ध्वनि देंगे ? पार्श्वनाथ स्वामी के मोक्ष जाने के बाद दौ सौ पचास वर्षो का अंतराल या दौ सौ पचास वर्ष तक कोई तीर्थंकर दर्शना देने वाला नहीं था। पार्श्वनाथ स्वामी की आयु सौ वर्ष की थी। उन्होंने अपनी देशना दी। उनके मोक्ष जाने के बाद महावीर भगवान का जन्म हुआ और 250 वर्षो तक.......कोई देशना नहीं हुई। देशना मिली तो पर आचार्यो की मिली किन्तु तीर्थकरों की

नहीं मिली, जिनके ज्ञान में लोकालोक झलकता है। ऐसे परमज्योति परमात्मा, सर्वज्ञानियों की देशना नहीं मिल रही थी।

प्रिय आत्मन् !

दौ सौ पचास वर्षों के बाद तीर्थंकर महावीर स्वामी और उसके बाद भी उनकी साधना और जन्मों के काल जुड गये। इस प्रकार तीर्थंकर महावीर स्वामी के दिव्यध्वनि के प्यासे आज समझ चुके थे। सभी के आत्म प्रदेशो में विशुद्धियाँ अठखेलियाँ कर रही थी।

आज तो मास का प्रथम पक्ष है, प्रथम दिवस है, प्रथम प्रहर है और शुभ योग है सूर्योदय ही बेला है। इसके साथ अभिजित नक्षत्र का प्रथम चरण है। अवश्य तीर्थंकर की दिव्यध्वनि खिरने वाली है। सूर्य का उदय जब होगा तब होगा लेकिन आकाश में लालिमा पहले से छा जाती है। उसी तरह से दिव्य ध्वनि खिरे, उसके पूर्व ही सबके हदय में विशुद्धियाँ बढ़ना प्रारम्भ हो गयी थी। आनंद की तरंगें प्रारम्भ हो गयी थी। तीर्थंकर महावीर स्वामी समवशरण में विराजमान थे और राजगृही में स्थित विपुलाचल पर्वत हँस रहा था।

आज इंद्रभूति गौतम गणधर का पद स्वीकार कर चुके थे, मगध नरेश, राजा श्रेणिक प्रमुख श्रोता के रूप में तीर्थंकर की धर्म सभा में विराजमान थे। प्रभु महावीर स्वामी की दिव्यध्वनि ओंकार (ॐ) के साथ प्रारम्भ हुई।

अ = अरिहंत

अ = अशरीरी अर्थात् सिद्ध

आ = आचार्य

उ = उपाध्याय

म् = मुनि

यह पांच परमेष्ठी ओम् में गर्भित हो जाते है।

भगवान महावीर स्वामी ने द्वादशांग में सबसे पहले आचाराङ्ग का वर्णन किया है। आचारांग का सबसे पहला शब्द के विवेचन का प्रथम शब्द, ओंकार के विवेचन का प्रथम शब्द, दिव्यध्वनि आदि का शब्द अहिंसा है। भगवान महावीर स्वामी का उद्घोष अहिंसा का उद्घोष था।

भगवान महावीर स्वामी ने अखिल विश्व के प्राणियों के लिये भेद विज्ञान का पाठ अभिव्यक्त किया। उनका मानना था कि संसार के प्राणी शरीर और आत्मा को एक मानते रहेंगे तब तक कल्याण नहीं कर सकेंगे। जब तक नर द्रव्य को अपना मानेंगे तब तक आत्मकल्याण नहीं कर पायेंगे।

जब जीव स्वतंत्र सत्ता की पहचान करेगा, वस्तु की स्वतंत्रता का अभिज्ञान करेगा तभी कल्याण कर पायेगा। जीव के लिये आत्मा का परिचय हुये बिना आत्म-कल्याण की भावना नहीं जागेगी। आत्म-सिद्धि की भावना के बिना श्रेयोमार्ग की भावना नहीं जागेगी। महावीर स्वामी ने कहा श्रेयोमार्ग के आत्मद्रव्य की प्रसिद्धि होने के बाद ही मोक्ष मार्ग को जानने की भावना पैदा होती है। इसलिये जीव-अजीव दो-दो द्रव्य में विवेचन किया है।

''**जीवमजीवं द्रण्वं**''

द्रव्य दो प्रकार के होते हैं जीव और अजीव।

जीव द्रव्य-ज्ञान, दर्शन-गुण वाला है।

अजीव द्रव्य-स्पर्श, रस, गंध वर्ण गुण वाला है।

भगवान महावीर स्वामी ने बताया आत्मा की तीन दशायें होती है।

* * * *

बहिरात्मा, अंतरात्मा, परमात्मा का स्वरूप

यह जीव और उसके पुरूषार्थ पर निर्भर करता है कि वह कौन सी दशा में जाना चाहता है। बहिरात्मा दशा अज्ञान दशा का नाम है, अज्ञान–चेतना का नाम है। बहिरात्म दशा मिथ्यात्व से ग्रसित मिथ्या दृष्टि जीव की चेतना ही बहिरात्म है। जीव अनादिकाल से बहिरात्मा बना रहा। यह शरीर और आत्मा को एक मान रहा। मकान आदि को अपना मानना बहिरात्मा है। पुत्र, स्त्री, मित्र आदि को अपना मान लेना ही बहिरात्मा के लक्षण हैं। दो द्रव्यों को एक मान लेना ही बहिरात्मा है। जब यह आत्मा पर को पर, निज को जिस समय बनता है तब उसे मोक्ष प्राप्त हो जाता है। भगवान महावीर स्वामी ने अपनी दिव्यदेशना में यह भी बताया है कि अंतरात्मा तीन प्रकार की होती है।

जघन्य अंतरात्मा

मध्यम अंतरात्मा

उत्कृष्ट अंतरात्मा

प्रिय आत्मन्,

जैन दर्शन की विशेषता यही है कि जैसे बालक में युवा बनने की, युवा में वृद्ध होने की क्षमता है उसी तरह से जैन दर्शन में आत्मा में बहिरात्मा और अंतरात्मा को परमात्मा बनने की क्षमता बतायी है।

प्रिय आत्मन्,

जैन दर्शन कहता है तुम स्वंय भगवान हो, तुम स्वयं सिद्ध भी हो। भगवान महावीर ने कहा है–

''जिस करनी से हम बनें, महावीर भगवान।
वैसी करनी तुम करो, हम तुम एक समान।।

महावीर के मंगल पथ में कोई छोटा नहीं है कोई बड़ा नहीं है भगवान महावीर की दृष्टि में न कोई स्त्री है न कोई पुरुष है। महावीर की दृष्टि न कोई बालक है न कोई वृद्ध है। महावीर की दृष्टि में न कोई सुंदर है न कोई असुंदर है। महावीर की दृष्टि में पर्याय पर नहीं टिकी, महावीर की दृष्टि द्रव्य पर है। पर्याय तो अनंत बदलते हैं पर द्रव्य अजर, अमर, अविनाशी और शाश्वत है। नश्वर के पीछे शाश्वत को नष्ट मत करना।

* * * *

चेतन, अचेतन विवेचन

महावीर ने बताया पर्याय तुम्हें दिख रहा है वह नश्वर है परन्तु जिसे तुम देख नहीं पा रहे हो वह अमर है। महावीर ने कहा है–

''जो दिखे सो अचेतन और
जो देखे सो चेतन''।

दिखने वाला अचेतन है, देखने वाला चेतन है। दिखने वाला देखता नहीं, देखने वाला दिखता नहीं। महावीर स्वामी ने कहा है आँख देखने का साधन है, आँख देखती नहीं। भगवान महावीर कहते हैं तुम आँख से नहीं देखते हो। ध्यान दीजिये तुम आत्मा से देखते हो। भगवान महावीर ने कहा आँख तो साधन है जैसे तुम मकान में झरोखे के पास खड़े हो जाते हो तो तुम झरोखे से नहीं देखते हो। यदि कोई बालक कहे कि झरोखे से देख रहा है, क्या वह झरोखे से देख रहा है? जैसे झरोखे से नहीं देखा जाता वैसे आँखो से नहीं देखा जाता, आत्मा से देखा जाता है। आँख तो उनके पास भी है जो मरण के बाद दान देने का वादा कर चुके हैं। आँख उनके पास भी है जो शवयात्रा कर रहे हैं लेकिन देख नहीं पाते। देखता कौन है?

घटमहामात्मना वेद्मि।।

मैं घड़े को आत्मा से जानता हूँ, देखता हूँ। आत्मा नहीं है तो आँखो से नहीं देख पाओगे।

स्वाद भी हम जीभ से नहीं लेते हैं। जीभ तो साधन है। चेतना निकलने से पहले जीभ तो थम जायेगी। महावीर ने समझाया जैसे शरीर से वस्त्र अलग है वैसे ही शरीर भिन्न है उसी प्रकार यह शरीर आत्मा का वस्त्र है। वस्त्र के मोटे पहनने से शरीर मोटा नहीं हो जाता वस्त्र के पतले पहनने शरीर पतला नहीं हो जाता। वस्त्र मैले पहनने से शरीर मैला नहीं हो जाता है। वैसे ही शरीर के काले, गोरे,

छोटे, बड़े कद होने से आत्मा काला गोरा नही होता है। आत्मा अपने परिणामों से सिद्ध होता है । वह है भेद विज्ञान जिसने जीव सिद्धि को प्राप्त हुए हैं ।

महावीर स्वामी की देशना का मुख्य मंगल सूत्र भेद विज्ञान है अर्थात् पर को अपना मानने की दृष्टि का अभाव। महावीर स्वामी ने बताया जल और कलश अलग-अलग है। कलश में जल है किन्तु कलश जल में नहीं है। वैसे ही कलश का जल, जल का कलश नहीं होता।

महाराज! जल का कलश है और गंधोदक का कलश है जबकि कलश न जल का है न ही गंधोदक का है। भले व्यवहार की दृष्टि में कह देना पर महावीर स्वामी ने कहा है उसी तरह शरीर में आत्मा है पर शरीर से आत्मा भिन्न हैं। ध्यान देना! जब कलश गर्म होता है तो वह भीतर के जल को गर्म कर देता है। कलश का शीतल होना अंदर के जल के ठंडे होने की सूचना देता है।

जिस तरह आपकी आँखो पर आई हुई लालिमा आपके क्रोध की सूचना देती है उसी तरह आपकी आँखो से झरने वाला वात्सल्य आपके आत्मा के भावों की सूचना देता है। भगवान ने बताया है-

वक्त्रं वक्त्रिं हि मानसम्।

हृदय के भाव चेहरे पर आ जाते हैं। भगवान महावीर की मंगल देशना विश्व प्राणियों के उद्धार के लिये खिरी थी उन्होंने कहा -

धम्मो मंगल मुक्किट्ठ, अहिंसा संयमो तवो।

देवा वि तस्स पणमंति, जस्स धम्मे सया मणो।।

विश्व में यदि कोई उत्कृष्ट मंगल है तो वह धर्म है।

धर्म से बड़ा कोई मंगल नहीं।

धर्म क्या है?

महावीर स्वामी ने कहा धर्म अहिंसामय है, संयममय है, तपमय है।

देव भी उसके लिये प्रणाम किया करते हैं। देवता भी उसको नमस्कार करते है जिसके अंदर अंहिसा का वास हो जाता है महावीर स्वामी ने कहा है- संसार में कोई आदमी बड़ा नहीं होता, धर्म बड़ा होता है। संसार में यदि कोई बलवान है तो वह धर्म है। धर्म बलवान है या कर्म? लोग कहते हैं कर्म बलवान है।

हे ज्ञानी ! यदि कर्म ही बलवान होता तो अनन्तानंत जीव सिद्धालय नहीं पहुँचते हैं उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि धर्म के माध्यम से कर्म नष्ट हो जाते हैं। अत: धर्म ही बलवान है।

प्रिय आत्मन् !

जो कर्म किया है उसे भोगना पड़ेगा यह महावीर स्वामी की वाणी नहीं है उन्होंने ये कहा है जो कर्म किया है उसे भोगना पड़ेगा अथवा नहीं भी भोगना पड़ेगा। तुम चिंता मत करो। बेटे मेरे पांव में कांटा लगा है वे कांटा अवश्य ही फोड़ा बनके पीड़ा दे यह जरूरी नहीं है। काटा निकालने का करो तो निकल सकता है।

प्रिय आत्मन् !

भगवान ने कहा कर्म को भोगे बिना भी कर्म को निकाला जा सकता है। यदि हम कर्म को भोगते रहे तो कभी मोक्ष नहीं जा पायेगें। इसीलिये महावीर स्वामी ने कहा है कि जो कर्म तुमने बांध रखे हैं उन्हें तपस्या के माध्यम से नष्ट कर दो। यदि जो कर्म किये हैं उन्हें भोगना ही पड़े फिर तपस्या बेकार हो जायेगी। हमारा साधु बनना, तुम्हारा प्रवचन सुनना बेकार हो जायेगा। आपका पूजा-पाठ करना, मंत्रों का जाप करना किसलिए है? इसीलिए कि आपने जो कर्म किये हैं वह कर्म भोगना न पड़े। भगवान महावीर स्वामी की देशना अखिल विश्व में संदेश देकर पहुँची कि जो कर्म किये हैं वह भोगने नहीं पड़ेंगे। जब यह संदेश प्राणियों ने सुना कि ऐसा भी कोई उपाय है तो महावीर स्वामी ने कहा - हाँ ऐसा भी उपाय है। यदि रात हो चुकी है तो क्या तुम्हें रात भर अंधेरे में बैठना पड़ेगा? एक दीपक जलाते हो तो प्रकाश कर लेते हो तो उसी प्रकार कर्मों को बदलने की तरकीब भगवान ने बताई।

महावीर स्वामी ने कहा प्रतिक्रमण करो और कहा जब तुम पाप की अपेक्षा से अधिक पुण्य की बढ़ोतरी को कर लोगे तब पाप पराजित हो जायेगा। इसलिऐ महावीर स्वामी ने अहिंसा की उद्घोषणा की। जिस तरह जीवन भर खरीदी हुई कपास को जलाने के लिये एक चिंगारी काफी होती है उसी तरह किये हुये कर्मों को नष्ट करने के लिये थोड़े से भी धर्म की आराधना काफी होती है।

प्रिय आत्मन् !

महावीर स्वामी ने बताया जैसे भूख को मिटाने के लिये भोजन एक उपाय है, प्यास को बुझाने के लिये पानी एक उपाय है वैसे ही दु:ख को मिटाने के लिये धर्म एक उपाय है। अंधकार को मिटाने के लिये प्रकाश एक उपाय है वैसे ही पाप के अंधकार को मिटाने के लिये धर्म एक उपाय है। महावीर स्वामी ने साहस दिया है, महावीर स्वामी ने शौर्य, धैर्य दिया है। महावीर स्वामी ने वीरता दी है।

महावीर स्वामी की देशना में हमें वह मिला है जो हम कभी नहीं पहचान पाए थे। महावीर स्वामी ने एक ही बात कही तुम एक ही अनेक हो। महावीर स्वामी की देशना में हमें बताया –

तुमसे पूछेगें तुम कितने हो ? तुम हजार को गिना दोगें, लेकिन महावीर स्वामी के समोशरण में तीन लाख श्राविकायें थी और एक लाख श्रावक थे, हजारों मुनि थे। महावीर स्वामी से पूछा आप कितने हैं। वह बोले मैं एक हूँ। महावीर स्वामी ने कहा है – इकाई तक पहुँचों। एक को पहचानो। वह एक है – आत्मा।

जो एक्कं जाणइ, सो सण्चं जाणइ।

एक आत्मा को जान लेता है, वह विश्व को जान लेता है।

प्रिय आत्मन् !

महावीर स्वामी ने कहा तुम अतिन्द्रिय को देखो। इन्द्रियाँ पर को देखती है, मात्र पर को छूती है। जीभ पर का स्वाद लेती है, नाक पर को सूंघती है। आँख पर को देखती हैं, कान पर को सुनते हैं। इंन्द्रियाँ आत्मा को जानने में कोई काम नहीं करती। आत्मा को पहचाने में अतीन्द्रिय को जानने की आवश्यकता है।

प्रिय आत्मन् !

महावीर स्वामी ने 'पुरुष' मतलब 'आत्मा' और 'अर्थ' माने प्रयोजन बताया है। आत्मा के प्रयोजन की सिद्धि के उपाय बताए हैं। कि आत्म सिद्धि का उपाय क्या है? जीव सिद्धि का उपाय क्या है?

ध्यान देना! यह धरती अनादि अनन्त है। श्रुत अनादि निधन है। पानी में शीतलता किसने भरी ? गन्ना में मिठास किसने डाली ? अग्नि में उष्णता किसने भरी ? प्रकृति अनादिकाल से है। इस प्रकृति का निर्माता कोई नहीं है। ध्यान देना भगवान महावीर स्वामी ने कहा है –

ईश्वर सृष्टि पर है पर सृष्टि का निर्माता नहीं है।

प्रिय आत्मन् !

उन्होंने कहा ईश्वर ज्ञान का कर्ता है, अपने स्वभाव का कर्ता है परन्तु ईश्वर पर का कर्ता नहीं है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को नहीं करता। महावीर की देशना में वह सूत्र मुखरित हो रहे थे जिनको आज तक किसी ने न सुना था। सब यह सोच रहे थे कि सृष्टि का निर्माता कोई ईश्वर है।

बताओ निर्माण के समय ईश्वर कहाँ था ? सृष्टि पर था या सृष्टि से बाहर ? जब सृष्टि का निर्माण ईश्वर ने किया तो ईश्वर कहाँ था ? अगर सृष्टि के बाहर था, तो सृष्टि बनाने की सामग्री कहाँ से लाया ? एवं ईश्वर को किसने बनाया ?

प्रिय आत्मन् !

यही सिद्ध होता है जैसे हवा को किसी ने नहीं बनाया, अग्नि को किसी ने नहीं बनाया, जल को किसी ने नहीं बनाया, अपने स्वभाव से प्रकृति का परिणमन होता है कोई किसी का निर्माता नहीं है।

प्रिय आत्मन् !

महावीर स्वामी ने हमारी आत्मा में बैठी हुई उस मान्यता का खण्डन किया। जगत यह मानता था कि सब ऊपर वाले की कृपा है। **महावीर स्वामी ने कह दिया ऊपर वाले की कोई कृपा नहीं है, भीतर वाले के परिणामों का फल है।** महावीर स्वामी ने कहा है तू सुख और दु:ख में ऊपर वाले को मत मान भीतर वाले के कर्मों को मान। महावीर स्वामी ने कहा - तेरे पास जो पांच एकड़ जमीन है, जो लोगों को दिखाई दे रही है बाहर भी पांच एकड़ जमीन है तेरी, पर तब तक है, जब तक तेरे घर में 5 एकड़ जमीन के कागज हैं उसी तरह अगर भीतर में पुण्य है तो बाहर में सब कुछ दिखाई देगा। जिस दिन भीतर का पुण्य घट जायेगा तो बाहर में कुछ भी दिखाई नहीं देगा।

महावीर स्वामी के अनुसार भव्यजीवों को ऐसे मंत्र मिले, जिन मंत्रों के प्रति व्यक्ति सोच रहे थे। हम तो सोचते हैं ईश्वर ही दु:ख का दाता है। कभी सोचा है - माँ अपने बेटे को दु:ख नहीं देती है तो ईश्वर तुझे दु:ख कैसे देगा।

भगवान महावीर स्वामी ने यह उपदेश दिया कि संसार के प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने स्वभाव से रचे हैं। और स्वभाव में रहने से शोभा पाते हैं।

प्रिय आत्मन् !

महावीर स्वामी ने यह नहीं कहा कि मैं किसी का निर्माता हूँ। प्रत्येक जीव अपना-अपना कर्त्ता है। अपने कर्मों के परिणाम को भोगते हैं, कोई किसी का कर्त्ता हर्त्ता नहीं है।

प्रिय आत्मन् !

महावीर स्वामी की मंगल देशना विश्व के लिये बहुत मंगलकारी हुई क्योंकि जो हिम्मत हार चुके थे कि मुझे जो ईश्वर देगा नहीं तो वह लेगा। महावीर स्वामी ने कहा- ईश्वर तुझे देने के लिये नहीं

आयेगा। ध्यान देना, ईश्वर दाता नहीं है क्योंकि ईश्वर कोई नेता नहीं है जो अपनी पार्टी वाले को दे दे और दूसरी पार्टी वाले को न दे। ईश्वर तो ऐसा भी नहीं है कि एक की कोठियाँ भर दे और एक का घर खाली कर दे।

ईश्वर किसी का दाता नहीं है न वह किसी को देता है न ही किसी से छीनता है। ईश्वर इन सब प्रभावों से परे निराकार है। परमज्योति है, जो स्वयं निराकार है। वो पर को क्या देगा और क्या लेगा ?

ज्ञानियो, यदि तेरे अंदर धैर्य नहीं आएगा तो अभिमान भी जाग जाएगा। ईश्वर इन सब भावों से परे है। ईश्वर का ऐश्वर्य केवल ज्ञान में निहित है। वह देखता तो सब है पर करता कुछ भी नहीं है। जानता सब है, पर कहता कुछ भी नहीं। ईश्वर की ऐश्वर्यता इसी में निहित है कि देखो, जानो।

ईश्वर ज्ञाता स्वरूपी है। ज्ञाता के ज्ञान में सब पदार्थ झलकते हैं लेकिन वह कहते हैं कि सब कुछ हो रहा है लेकिन मैं तो निज स्वभाव में लीन हूँ। व्यवहार में लोक–अलोक उनके ज्ञान में झलक रहे हैं लेकिन निश्चय नय से स्वयं का स्वरूप झलक रहा है।

जैसे बीज एक बार जलने के बाद पुनः वृक्ष नहीं बन पाता है उसी तरह से आत्मा परमात्मा बनने के बाद संसार में नहीं आता। यदि पुनः संसार में आना पड़ा तो साधना बेकार है। दूध एक बार घृत बन जाए तो पुनः दूध नहीं बन पाता उसी तरह एक बार आत्मा परमात्मा बन जाता है तो पुनः संसार में नहीं आता। हे आत्मन् आज वीर शासन जयंती वीर देशना का दिवस है।

महावीर स्वामी ने कितना उपदेश दिया होगा जो तीस वर्षों तक निरंतर उपदेश चलता रहा। एक बार हमारा भारत देश महावीर की वाणी से गुंजायमान हो रहा था। घर–घर चर्या रहे धर्म की महावीर स्वामी की वाणी ने गुंजायमान कर दी। महावीर स्वामी की वाणी का इतना प्रभाव हुआ था कि होने वाली वैदिक हिंसा रुक चुकी थी। महावीर भगवान ने कहा– जो कार्य सूत्र व उपदेश से हो सकते हैं। वह कार्य हथियार से नहीं हो सकते ? महावीर स्वामी ने इतना ही कहा जो कार्य प्यार से हो सकता है वह हथियार से नहीं। महावीर स्वामी ने अपनी वाणी में इतना प्यार इतना वात्सल्य दिया कि लोगों ने स्वीकार किया कि सत्य क्या है। महावीर स्वामी ने यह कहा जो सत्य हो वह मेरा है आप सभी सत्य को स्वीकारें।

महावीर स्वामी ने धर्म के ऊपर अपनी मोहर नहीं लगाई, उन्होंने कहा जो सत्य है उसे स्वीकारो और सत्य व असत्य आपके सामने रख दिये। कौन सोना है कौन बिन्टेक्स आप पहचानिये। इसलिये तपाइये, परखिये और जो सत्य है उसे स्वीकार कर लीजिये और जो असत्य है उसे छोड़ दीजिये। महावीर ने कहा ज्ञान क्या है ? अज्ञान की निर्वृति होना, गल्तियों को छोड़ना, अच्छाइयों को अपनाना और अयोग्य हो तो उसे उपेक्षित कर देना।

प्रिय आत्मन् !

महावीर स्वामी ने कहा कि आत्मा का कल्याण ज्ञान श्रद्धान और आचरण से होगा। महावीर स्वामी के पन्द्रह सौ वर्ष के बाद एक महान आचार्य धरती पर आये। उनका नाम अमृतचंद आचार्य स्वानुभूति में पगे आत्मानवी ज्ञायक, स्वभाव में लीन रहनें वाले शुद्ध चेतन तत्व के पिपासु अहिंसा अमृत विश्व को पिलाने वाले एक महान आचार्य थे। अहिंसा को पूरा विश्व मानता है।

अहिंसा से सुख होता है, अहिंसा से समृद्धि होती है, अहिंसा से शांति होती है लेकिन अहिंसा का विषय प्रतिपादित करने वाला पूरे विश्व में यदि सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ है तो यह हमारे हाथों में है। सबसे मंगलकारी ग्रंथ है।

आज से लगभग 1500 वर्ष पूर्व इस महान ग्रंथ की रचना हुई है। इस ग्रंथ में 225 गाथाओं के माध्यम से अमृत चंद्राचार्य ने अहिंसा का अमृत एक-एक श्लोक में भरा है। इन्होंने अहिंसा के बिना, अचौर्य का पालन व ब्रह्मचर्य का पालन नहीं हो सकता। अपरिग्रह का पालन अहिंसा के बिना नहीं हो सकता है। सब धर्मों का राजा अहिंसा है। सब धर्मों में श्रेष्ठ अहिंसा है। ऐसा महावीर स्वामी का उद्घोष है। आज हम मंगलाचरण करके इस ग्रंथ का आरंभ कर रहे हैं। सभी हाथ जोड़लें।

देखिए हमने किसी को नाम से नमस्कार नहीं किया। नाम ही नहीं लिया ईश्वर का। अमृतचंदाचार्य कहते हैं मुझे नाम से मतलब नहीं है मुझे तो जिसके अंदर परमज्योति प्रकट हो गई है, आत्मज्ञान प्रकट हो गया है, एक साथ अतीत अनागत वर्तमान काल की अनंत पर्याय का ज्ञान है। दर्पण के तल से समान स्पष्ट झलकती है ऐसे परमज्योति परमात्मा जयवंत हो।

प्रिय आत्मन् !

संसार में लोगों की भावना एक है। द्रव्य अनंत है। एक द्रव्य में अनंतानंत गुण हैं। एक गुण में अनंतानंत पर्याय हैं। तुम एक हो, तुममें अनंत गुण है हर गुण में अनंत पर्याय हैं।

प्रिय आत्मन् !

उन अनंत पर्यायों को जानने वाले परमात्मा है। आज के दिन हमने मंगलाचरण के माध्यम से मात्र उन्हें स्मरण किया है।

✻ ✻ ✻ ✻

आगम नमस्कार

परमागमस्य जीवं निषिद्ध जात्यंधसिंधुरविधानम्।
सकलनय, विलासितानां विरोधमथनं नमाम्यनेकान्तम्॥2॥

अन्वयार्थ - (परमागमस्य) उत्कृष्ट आगम अर्थात् जैन सिद्धांत का (जीव) प्राणस्वरूप, (निषिद्धजात्यंधसिंधुरविधानम्) जन्म से अंधे पुरुषों द्वारा होने वाले हाथी के स्वरूप विधान का निषेध करने वाले (सकलनय विलासितानां) समस्त नयों की विवक्षा से विभूषित पदार्थों के (विरोधमथनं) विरोध को दूर करने वाले (अनेकान्तं) अनेकांत धर्म "स्याद्वाद" को (नमामि) मैं (आचार्यवर्य श्री समृतचंद्र महाराज) नमस्कार करता हूँ।

ग्रंथ रचने की प्रतिज्ञा और आचार्य का अभिप्राय

लोकत्रयैकनेत्रं, निरूप्य परमागमं प्रयलेन।
अस्माभिरूपोधियते, विदुषां पुरुषार्थसिद्धयुपायोऽयम्॥3॥

अन्वयार्थ - (लोकवयैकनेत्रं) तीन लोक के समस्त पदार्थों को दिखाने के लिए एक अद्वितीय नेत्रस्वरूप (परमागमं) उत्कृष्ट आगम जो सिद्धांत का (प्रयत्नेन परिश्रमपूर्वक-भले प्रकार (निरुप्य) मनन करके (अस्माभिः) हमारे द्वारा (अयं) यह (पुरुषार्थसिद्धायुपायः) "पुरुषार्थ-सिद्धयुपाय" नामका ग्रंथ (विदुषां) विद्वान पुरुषों के लिए (उपोधियते) कहा गया है।

प्रिय आत्मन् !

माँ जिनवाणी! जनकल्याणी! अरिहंत भाषित, सिद्ध सिद्धित, आचार्य आचरित, उपाध्याय उपासित, सर्वसाधु साधित, जीव तत्त्व प्रबोधिनी अजीव तत्व विवेचिनी, आस्रव तत्व निरोधिनी, कर्म

बंध विमोचिनी संवरपध प्रदायिनी, निर्जरा निर्झरिणी, मोक्षमहल धारिणी, पाप–ताप, संताप हारिणी, विश्व कल्याण कारिणी हे जिनवाणी तेरी जय जो सदा विजय हो, तेरे विशाल पद में श्रुत सूर्य का उदय हो।

कवियों के छन्द में, काव्य के प्रबन्ध में, पुण्य के बंध में समयसार के सम्बन्ध में, एक ही स्वर गूँज रहा है– जय जिनवाणी–जय महावीर। सूर्य और चन्द्र में, नर और नागेन्द्र में, देव और देवेन्द्र में, आस्था के केन्द्र में, एक स्वर गूँज रहा– जय जिनवाणी – जय महावीर।

जीवन के विकास में, उन्नति के प्रयास में, पुण्य के प्रकाश में, पाप के विनाश में, भक्त के विश्वास में, संत के आवास में, धर्म के उजास में, अधर्म के ह्रास में, चेतना की चाह में, राही की राह में, पथिक के पथ में, धर्म के रथ में, एक ही स्वर गूँज रहा– जय जिनवाणी–जय महावीर। आचार्य के आचार में, विवेकियों के विचार में, शांति के संचार में, हरियाली के द्वार में, मानव के मन में, मुनियों के मनन में, ऋषियों के कथन में, संस्तुतियों के मंथन में, एक ही स्वर गूंजता है– जय जिनवाणी–जय महावीर। पुण्य की कथाओं में, राम की जय में, रावण की पराजय में, पांडव की विजय में कौरव की पराजय में एक ही स्वर गूंजता है। जय जिनवाणी जय महावीर। प्रिय आत्मन् अहिंसा आज पुरुषार्थ सिद्धि उपाय ग्रंथ का आरम्भ हो रहा है। आप कहेंगे महाराज! आप पुरुषार्थ सिद्धि का उपाय कह रहे हैं। आप महिलार्थ सिद्धि उपाय क्यों नहीं कह रहे, तो अरे फिर ये बालक कहेंगे।

महाराज आप ने पुरुषार्थ सिद्धि उपाय कह दिया। आपने महिलार्थ सिद्धि उपाय कह दिया। फिर बालकार्थ सिद्धि उपाय क्यों नहीं रचा। प्रियआत्मन्! आचार्य की आत्मा में अरिहंत अवतरित हैं भगवान महावीर की देशना आपकी पर्याय को नहीं निहार रही है। आपके द्रव्य को देख रही है।

ज्ञानियों आकार के पुरुष के लिए ग्रंथ नहीं है। आकार की महिला को महिला नहीं कहना चाहते आचार्य भगवान। आचार्य कह रहे हैं जिसे तुम पुरुष कहते हो। मैं उसे पुरुष नहीं कहता। जिसे तुम महिला कहते हैं मैं उसे महिला नहीं कहता ध्यान देना ज्ञानियों। यद्यपि महानता को लाती है इसलिए महिला कहलाती है। और पुरुष (उत्कृष्ट) गुणों में विराजमान है सो आप पुरुष कहलाते हैं। ये तो संस्कृत का शब्दकोष हुआ। लेकिन भावकोश क्या है। ध्यान दो महिला मण्डल ये बतओ कि आप, पुरुष हो कि महिला हो। बताऐगे आप! ये महिलायें हैं जब तक अपने मन की करोगी तब तक महिला कहलायेगी। और जिस दिन आगम की करोगे तो पुरुष कहलाओगे! अब बोलो! आगम की मानो तो पुरुष हो और मन की मानोगे तो आप को क्या स्वीकार है। आप को आगम स्वीकार है कि मन के विचार स्वीकार है। बोलो! आगम स्वीकार है तो आगम आपको महिला नहीं कहता है। अब बताओ! आगम महिला नहीं कह रहा है। आगम आकार को पुरुष नहीं कहता है।

ज्ञानियों! लिंग और वेद की चर्चा यहाँ नहीं है। ध्यान देना! पुरुष वेद, स्त्री वेद, नपुंसक वेद स्त्री लिंग, पुल्लिंग, नपुंसक लिंग की चर्चा यहाँ नहीं है। पुरुष के वेद के अर्थ से ये ग्रंथ नहीं है। ज्ञानियों! सबसे पहले ग्रंथ का नाम सुनने से पहले। शब्द को समझना मात्र पुरुष को। पुरुष शब्द का अर्थ है आत्मा। चैतन्य आत्मा ज्ञान दर्शनमयी आत्मा को पुरुष कहते हैं।

बोलो यहाँ पर कितनी महिला और कितने पुरुष हैं। यहाँ व्यवहार का ही कथन चल रहा है। निश्चय में तो कथन होता ही नहीं। निश्चय में तो लीनता होती है। ज्ञानी! कथन व्यवहार में ही होता है। ये सब व्यवहार ही चलेगा, और व्यवहार की सीढ़ी से निश्चय की मंजिल तक पहुँचा जाऐगा, सुनो ज्ञानी आचार्य अमुतचंद्र की आत्मा, कह रही है। जो ज्ञान दर्शनवान है। वे सब पुरुष हैं। क्या है, ये सब पुरुष हैं। आज मैं आपको पुरुष कह रहा हूँ। आज तक सबने महिला कहा है। लेकिन तुम्हारे बीच में वह भी बैठा है। जो आपको पुरुष कहने के लिए तैयार है। जो चैतन्य आत्मा है, वह पुरुष हैं, चाहे वह बालक हो, चाहे वह वृद्ध हो चाहे वो स्त्री हो, चाहे पुरुष हों तन के पुरुष की चर्चा नहीं हैं। चेतन की पुरुष की चर्चा है। तुमने तन के पुरुष को तो पुरुष माना है लेकिन चेतन के पुरुष को पुरुष कब मानोगे, ज्ञानियों काया के पुरुष को, पुरुष सब मानते हैं। लेकिन ये कुन्द-कुन्द की दृष्टि हैं। जो काया के भीतर रहने वाले चेतन आत्मा को पुरुष कहते हैं। प्रियआत्मन्! देह को पुरुष कहने वाले, सब ऋषि मुनि मिल जाऐंगे। लेकिन देही का पुरुष कहने वाले कौन है अमृत चन्द्र देव है ध्यान देना शरीर को पुरुष कहने वाले, तो सब ग्रंथ मिल जाऐंगे बाजार में लेकिन, अशरीर को पुरुष कहने वाला कोई है, तो आपके बीच में आज पुरुषार्थ सिद्धि ग्रंथ है। इस ग्रंथ को पढ़ते ही! ये भेद की रेखा समाप्त हो जाऐगी कि, हम महिला है कि पुरुष, ये भेद ही नहीं है। श्रावकाचार लिखा! श्राविका चार क्यों नहीं लिखा? ज्ञानियों आचार्य की दृष्टि में भेद ही नहीं है कि तुम, महिला हो कि पुरुष आचार्य दृष्टि, व्यास की दृष्टि नहीं शुकदेव की दृष्टि है! और शुक देव की दृष्टि में पुरुष और महिला का भेद कहाँ?

जिसमें ज्ञान दर्शन होता है। वह पुरुष होता है। आज से आप महिला नहीं हो। बोलो आगम आपके सामने है। परमागम आपके सामने है! आगम को प्रतिपादित करने वाले गुरुदेव आपके सामने है। अमृतचन्द्र आचार्य, आपको पुरुष कह रहे हैं फिर भी अपने दिल में मान्यता बस गई है। पर्याय की मूर्खता बस गई है।

इस पर्याय मूर्खता के कारण, ये मातायें अपने आप को महिला मान बैठी हैं। ध्यान देना ये पर्याय मूढ़ता है। मूढ़ता के कारण महिला माने बैठी हो, और हिम्मत हार के बैठी हों, ध्यान देना हिम्मत मत हारो, भीतर में आत्मा तो पुरुष ही है। भले ही शरीर स्त्री का हो लेकिन आत्मा तो पुरुष ही है।

ये समझ गए ना, महाराज अर्थ माने। आपके विद्यालय में, कॉलेज में अर्थशास्त्र पढ़ाया जाता है। और यहाँ अर्थ का उपयोग बताया जा रहा है। अर्थशास्त्र पढ़ाया जाता है। ये अर्थ सिद्धि का उपाय है क्या है। ये अर्थ सिद्धि का उपाय हैं। अर्थ (तात्पर्य) मनी नहीं है। मुनि और मनी (पैसा) की चर्चा करे ये तो होई नहीं सकता। मुनि मनि की चर्चा कर नहीं सकता। मुनि, मन से कम, मनन से ज्यादा काम करते हैं, ध्यान देना। तो अर्थ माने, "शब्दा नाम् अनेकार्थ:" एक-एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। अर्थ से तात्पर्य प्रयोजन पुरुष का प्रयोजन।

पुरुष का प्रयोजन 'पुरुषस्य प्रयोजन पुरुषार्थ:' पुरुष के लिए जो प्रयोजनीय है। आत्मा के लिए जो प्रयोजनीय है। "तस्य सिद्धि उपाय:" उसकी सिद्धि का उपाय है। उसके फल का उपाय उसके लक्ष्य की प्राप्ति का उपाय " पुरुष (आत्मा) अर्थ (प्रयोजन) आत्मा के लिए प्रयोजन भूत तत्व की, प्राप्ति का उपाय आत्मा के लिए प्रयोजन भूत लक्ष्य की प्राप्ति का उपाय आत्मा के लिए।

प्रयोजनभूत, साध्य की सिद्धि का उपाय आत्मा के लिए प्रयोजन भूत सार तत्त्व को ग्रहण करने का उपाय, आत्मा के लिए प्रयोजन भूत सार शांति का उपाय, आत्मा के लिए प्रयोजन भूत अनंत सुख की सिद्धि का उपाय, आत्मा के लिए प्रयोजन भूत चिदानंद चैतन्य परमात्व तत्व की उपलब्धि का उपाय इस शास्त्र में है।

इसलिए शास्त्र का नाम पुरुषार्थ सिद्धि उपाय है। बताइए! ये जैन ग्रंथ है कि अजैन ग्रंथ है? ये ग्रंथ न जैन ग्रंथ है, न अजैन ग्रंथ है। आगम ग्रंथ है। आगम किसे कहते हैं आप्त वचन के समूह को आगम कहते हैं। आगम ग्रंथ है। ज्ञानी मेरे पास नागपुर में प्रेस वाले पत्रकार आए पूछा महाराज श्री सभी धर्म वाले अपने-अपने धर्म को प्राचीन और श्रेष्ठ कहते हैं। आप बताइए संसार का सबसे श्रेष्ठ धर्म कौन सा है संसार में जैन, वैदिक, बौद्ध, हिन्दू, मुस्लिम, फारसी कौनसा धर्म श्रेष्ठ है।

मैंने उस प्रेस वार्ता में उत्तर दिया अहिंसा परमो धर्म:। अब तो कहने लगे कि मैं तो यह सोच रहा था कि आप कहोगे जैन धर्म श्रेष्ठ है। मुस्लिम यह कहता है कि इस्लाम धर्म श्रेष्ठ है। हिन्दू ये कहता कि हमारा धर्म श्रेष्ठ है। प्रत्येक मजहब का व्यक्ति अपने-अपने धर्म को श्रेष्ठ कहता है। लेकिन आप ही मुझे ऐसे संत मिले जो आप ने कह दिया अहिंसा धर्म श्रेष्ठ है। प्रिय आत्मन्! यह शास्त्र विश्व शास्त्र है। इसलिए शास्त्र को स्थापित करके मैंने अहिंसामयी विश्व धर्म को स्थापित किया है। यह शास्त्र विश्व धर्म शास्त्र है।

विश्व धर्म शास्त्र, पुरुषार्थ सिद्धि उपाय को, यदि मेरे अंतस के शब्दों में, निरुपित किया जाऐ तो विश्व धर्म शास्त्र अच्छे शब्द को गुनने में जितना समय लगता है, सुनने में उसका करोड़वाँ हिस्सा

भी नहीं लगता। इसलिए आप ध्यान से सुने प्रिय आत्मन्! पुरुषार्थ सिद्धि उपाय "आत्म सिद्धि का उपाय" पुरुष (आत्मा) –

"तज्जयति परं ज्योतिः, समं समस्तैरनन्त पर्यायैः।
दर्पण तल इव सकला, प्रतिफलित पदार्थ मालिका यत्र॥1॥"

प्रिय आत्मन् !

प्रथम चरण तत् वह-वह-वह तत्-तत्-तत्। वह ज्योति परम ज्योति रूप है। जयतिः जयवंत को कौन जयवंत हो, मैं उसकी जयकार करता हूँ। मैं उसकी जय-जयकारा करता हूँ। तुम मेरी जयकारा करते हो। मैं उसकी जयकारा करता हूँ। कौन है जो जय शील हो? कौन है जो जयवंत हो? कोई नाम नहीं। परम ज्योति, परम (उत्कृष्ट) परम (श्रेष्ठ) ज्योतिः जयवंत हो।

ज्योति की जय हो रही है। परम ज्योति हो ज्ञानी, ध्यान देना! यहाँ ज्योति किसी का नाम नहीं है। ज्योति से तात्पर्य किसी काया की ज्योति से नहीं है। ज्योति से तात्पर्य किसी वेद की ज्योति से नहीं है। ज्योति से तात्पर्य किसी लिंग से नहीं है। ज्ञानियों ध्यान रख लेना। परम ज्योति जयवंत हो, कैसी ज्योति जयवंत हो।

निर्धूम-वर्ति-रपवर्जित-तैल-पूरः,
कृत्स्नं जगत्त्रय-मिदं प्रकटी-करोषि।
गम्यरूो न जातु मरूतां चलिता चलानाम्,
दीपोऽपरस्त्व-मसिनाथ! जगत् प्रकाशः॥16॥

जिस ज्योति से धुँआ न निकलता हो वह ज्योति जयवंत हो! जिस ज्योति में तेल न लगता हो! वह ज्योति जयवंत हो।

जिस ज्योति में बत्ती न लगती हो! वह ज्योति जयवंत हो। ज्ञानियों! जिस ज्योति में दीपक न लगता हो, वह ज्योति जयवंत हो कहो ज्ञानियों कैसा दीपक हो।

बिना धुआँ बत्ती वाला, तेल नहीं जिसमें डाला।
फिर भी जो आलोक भरे, जगमग तीनों लोक करे।।
ऐसे स्व पर प्रकाशी हो, पाप तिमिर के नाशक हो।
ज्योतिर्मय हो जीवक हो, आप निराले दीपक हो।।
तेज अधियाँ चले भले, पर्वत-पर्वत हिले भले।
मेरू नहीं टस से मस हो, जिनवर नहीं कामवश हो॥

ऐसा जो दीपक है। बिना धुआँ, कैसी ज्योति कभी धुआँ नहीं निकलेंगे ध्यान देना ज्ञानियों। एक दिन धुआँ निकल जाऐगा। इसलिए धुआँ निकलने से पहले ज्योति को जला लेना। ताकि उस ज्योति को जलाना जिसका कभी धुआँ न निकले!

जब तक राग द्वेष का तेल डालते रहोगें, मोह की बत्ती लगाऐं रहोगें, तब तक धुआँ निकलता रहेगा। और जिस दिन मोह की बत्ती हटा दोगे और राग-द्वेष का तेल हटा दोगे उस दिन से धुआँ निकलना बंद हो जायेगा। यही दीपक ज्ञान दीपक जैसा केवल ज्ञान देगा।

परम ज्योति क्या है? तीन भुवन में सार वीतराग विज्ञानता। वह वीतराग विज्ञान ही परम ज्योति है। कौनसी ज्योति है? ज्ञान ज्योति, परम ज्योति है केवल ज्ञान ज्योति है ज्ञान पांच होते हैं। मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधि ज्ञान, मनः पर्यय ज्ञान, केवल ज्ञान! केवल ज्ञान उत्कृष्ट ज्ञान है। ऐसे उत्कृष्ट ज्ञान को परम् ज्योति कहा है? तत् जयति वह केवल ज्ञान जयवंत हो।

केवल ज्ञान का स्वरूप क्या है?

यदीये चैतन्ये मुकुर इन भावाश्चिदचितः।
समं शान्ति ध्रौव्य-व्ययजनिल-संतोऽन्तरहिताः।
जगत्साक्षी मार्ग प्रकट परा भानुरवि यो।
महावीरस्वामी नयन पथ गामी भवतु मे (नः)॥

(नः) हम सब में (मेरे लिए) चाहे चेतन पदार्थ हो चाहे अचेतन हो। जैसे कैमरे में चेतन पदार्थ भी झलक रहे और अचेतन पदार्थ भी झलक रहे हैं और चेतन अचेतन पदार्थ भी झलक रहे हैं। उसी तरह सर्वज्ञ के ज्ञान में परम् ज्योति में, क्या-क्या प्रकाशित हो रहा है बोलो! तीन काल, सुनो! उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य युगपद् एक साथ झलक रहे हैं। जगत को प्रत्यक्ष देखने वाले हैं। जिस तरह सूर्य, धरती के पदार्थों को देखा करता है। सूर्य के आलोक में, विश्व के पदार्थ दिखते हैं। वैसे सर्वज्ञ के ज्ञान में वैसे परम ज्योति में सम्पूर्ण पदार्थ झलकते हैं। वह परम ज्योति परमात्मा कैसा है।

भव बीजांकुर जननः राग द्वेषः, मुपगतायस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुः वा, हरो जिनो वा नमस्तस्मै॥

ज्ञानियों! संसार दशा को प्रकट करने वाले रागद्वेष संसार रूपी वृक्ष को उत्पन्न करने वाले अंकुर रागद्वेष जिनके क्षय हो गए हो। राग द्वेष क्या है? संसार का बीज है। वह राग द्वेष जिनके क्षय को प्राप्त हो गए हैं, ऐसे वह परम ब्रह्म ज्योति चाहे वह ब्रह्मा हो, ब्रह्म (आत्मा) परम ब्रह्म परमात्मा उत्कृष्ट आत्मा ब्रह्म है ज्ञानियों जानते हो ये एक सौ आठ क्यों लिखते हैं?

किसी भी जैन शास्त्र में एक सौ आठ लिखने का विधान नहीं है। फिर भी ये लिखते क्यों है एक हजार आठ लिखने का विधान तो है। किन्तु एक सौ आठ लिखने का विधान नहीं है। मुझे नहीं पता कि एक सौ आठ मेरे कौन से मूल का गुण है। न तो मूलाचार में है न भगवती आराधना में है। किन्तु इतना जानना अंक गणित में १०८ ब्रह्म का वाचक है। ब=२३ , र=२७, ह्=३३ , म=२५ = १०८ चाहिए। दोनों नयन की तरह दो नय वाले बनो। तो ही आप इस संसार से पार हो सकोगे दोनों पर गहन विवेचन सुना कि व्यवहार नय पर्याय को विषय करता है। निश्चय नय आत्मा को विषय करता है, इस संसार में तीर्थ का प्रवर्तन कौन करते हैं?

व्यवहार और निश्चय को जानने वाले दिगम्बर साधु आपके नगर में आ जाए तो समझना कि हमारे नगर में धर्म का तीर्थ चल रहा है। धर्म का तीर्थ कौन चलाते हैं, व्यवहार और निश्चय को जानने वाले आचार्य धर्म तीर्थ को चलाते है। तो ज्ञानियों किस में चल रहे हो, तीर्थ में चल रहे हो। रत्नत्रय से सहित मुनि, उत्तम तीर्थ है।

ऐसे तीर्थ को छोड़ के नहीं जाना क्योंकि हृदय परिवर्तन गुरु की वाणी से होगा, परिवर्तन की यात्रा से हृदय परिवर्तन होने वाला नहीं है।

नमामि अनेकान्तं

✻ ✻ ✻ ✻

धर्म का प्रसार करने वाले कौन हो सकते हैं?

मुख्योपचारविवरण निरस्तदुस्तरविनयदुर्बोधाः।
व्यवहारनिरचयज्ञाः प्रवर्तयंते जगति तीर्थम्।। 4।।

अन्वयार्थ – (व्यवहारनिश्चयज्ञाः) व्यवहारनय और निश्चयनय को जानने वाले (मुख्यो- पचारविवरण निरस्तदुस्तर विनयेदुर्बोधाः) मुख्य और गोड़ कथन की विवक्षासे शिष्यों के गहरे मिथ्याज्ञान को दूर करने वाले ''महापुरुष''(जगति) संसार में (तीर्थ) धर्म को (प्रवर्तयंते)फैलाते हैं।

संसारी जीवों की समझ

निश्चयमिह भूतार्थ व्यवहारं वर्णयंत्यभूतार्थम्।
भूतार्थबोधविमुखः प्रायः सर्वोपि संसारः।। 5।।

अन्वयार्थ–(इहे) इस जगत् में (निश्चयं) निश्चय को (भूतार्थ) सत्यार्थ (व्यवहारं) व्यवहार को (अभूतार्थ) असत्यार्थ (वर्णयंति) कहते हैं: (सर्वः अपि) समस्त ही (संसारः) संसार (प्रायः) बहुधा (भूतार्थबोधविमुखः) यज्ञार्थ ज्ञान से विमुख है।

व्यवहारनय की उपयोगिता

अबुधस्य बोधनार्थं मुनीश्वरा देश्यंत्यभूतार्थम्।
व्यवहारमेव केवलमवैति यस्तस्य देशना नास्ति।। 6।।

अन्वयार्थ–(मुनीश्चराः) आचार्य महाराज (अबुधस्य) अज्ञानी पुरुषों को (बोधनार्थ) ज्ञान कराने के

लिये (अभूतार्थ) व्यवहारनयका (देशयंति) उपदेश देते है, (य:) जो (केवलं) केवल (व्यवहार एव) व्यवहारनय को ही (अवैति) जानता है (तस्य) उसके (देशना) उपदेश (नास्ति) नहीं है।

प्रिय आत्मन् !

माँ जिनवाणी, जगकल्याणी,

अरिहंत भाषित, सिद्ध-सिद्धित्, आचार्य आचारित, उपाध्याय उपासित,सर्वसाधु साधितकर जीव तत्व विवेचनी, कर्मास्त्रव निरोधिनी, कर्म बंध विमोचिनी, संवर पद प्रदायनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष महल धारिणी, पाप-ताप-संताप हरणी, विश्वकल्याण कारिणी, हे जिनवाणी माँ, तेरी जयहो सदा विजय हो, तेरे विशाल पद में श्रुत सूर्य का उदय हो ।

हे अम्बे ! हे जगदम्बे, !

जिनवाणी ! आज तक जितने जीव सिद्धत्व को प्राप्त हुये हैं सिद्ध भगवान बने है वे सब तेरी कृपा से बने है। हे जिनवाणी तेरी आराधना से आत्मा का बोध होता है शोध होता है, योगो का निरोध होता है, हे जिनवाणी माँ, तेरी अराधना आत्म तत्व का ज्ञान कराती है, आनंद रस का पान कराती है, निजानुभव का भान कराती है। हे जिनवाणी माँ, तेरी महिमा अपरिमेय है तुझे भक्त जन भारती कह-कर पुकारते है। तू सदा प्रकाशमय है तेरे अन्दर प्रकाश समाया है तू प्रकाश में रहती है और प्रकाश को प्रदान करती है। इसलिये हे माँ तुझे भारती कहा जाता है। हे भारती माँ, तुझे प्रणाम हो।

हे सरस्वती !

तू सारवान् तत्व को धारण करती है तीन लोक में जो सार तत्व है, उसको बताने वाली होने सें तुझे सरस्वती कहा जाता है। हे सरस्वती माँ, तुम्हें प्रणाम हो। हे माँ तुझे शारदा भी कहते हैं। तू शांति के राज्य को देने वाली होने से तुझे शारदा कहा जाता है। इसलिये हे शारदे तुझे प्रणाम हो। विद्वत जन रूपी हंस के चित्त में तू गमन करती है हे माँ तुझे विद्वान रुपी हंस अपने चित्त मे बिठाकर के लोकालोक की यात्रा करते है इसलिये तू हंसवाहिनी कहलाती है। विद्वानों के मस्तिक पर तू विराजमान होती है, इसलिये तू हंस गामिनी कहलाती है।

हे माँ तू विद्वानों की जन्म दात्री है, सृष्टि पर जितने भी विद्वान उत्पन्न हुये हैं, वे सब तेरे आँचल में खेले हैं तेरी गोद में खेले हैं। हे अम्बे तूने गर्भ में किसी को नही रखा है, लेकिन पालन करके महान

बना दिया है। इसलिये हे अम्बे तू विद्वानों की जननी है। कोई माँ एक पुत्र को जन्म देती है, लेकिन हे माँ तूने इस संसार में असंख्य पुत्रो को जन्म दिया है तेरे ही कारण मैं आज सरस्वती पुत्र कहलाता हूँ।

हे वागीश्वरी वचनों की यशस्वरी को धारण करने वाली, नय प्रमाण से युक्त सत्य वचनों को निरूपित करने वाली वचनो की देवी है। हे वाग देवी, हे वागीश्वरी, हे जिनवाणी माँ, प्रणाम स्वीकार हो। कुमारी आपका सातवां नाम है। तू कुमरण से बचाती है, खोटे मरण से बचाती है, अपमृत्यु से बचाती है इस लिये तो कुमारी कहलाती है। तू भूमण्ड्ल पर लक्ष्मी सी शोभायमान होती है। ज्ञान लक्ष्मी को धारण करके धारती है, इसलिये भी तू कुमारी कहलाती है। हे कुमारी मेरा तुम्हें प्रणाम हो।

हे माँ तू संसार की आत्माओं में आचरण करती है ब्रह्म से लेकर के परम ब्रह्म तक में तू ही आचरण करती है। जितने भी आत्मज्ञपुरुष हैं उन सबकी आत्माओं में तू रहा करती है। इसलिये हे माँ तुम्हे ब्रह्मचारिणी कहाँ जाता है। हे माँ तू जगतमाता है, सारे संसार को जानने वाली है, इसलिये जगतमाता कहलाती है। संसार के सभी जीवों को सन्मार्ग दिखाती है, इसलिये तू जगतमाता है।

ब्रह्म सूर्य में रमण कराने वाली होने से तू ब्रह्मणी है। तू वरदान को देने वाली है। तू श्रेष्ठता को प्रदान करती है इसलिये तू वरदायनी कहलाती है। दिव्य-ध्वनि से सहित होने से, तेरी आराधना से जीव सत्य वाणी को प्राप्त हो जाते हैं इसलिये तुम्हारा नाम वाणी है। दिव्य-ध्वनि ओत-प्रोत वाणी माँ तुम्हे नमस्कार हो। भाषणकला को प्रदान करने वाली होने से भाषा सहित होने से तुम भाषा कहलाती हो। इसलिये हे भाषा देवी तुम्हें नमस्कार हो।

हे श्रुत की देवी तू तत्व को सुनाने वाली है, इसलिये तू श्रुत देवी है। हे श्रुत देवी तुम्हें प्रणाम हो। दिव्य-ध्वनि को धारण करती है इसलिये तू गौ कहलाती है हे जिनवाणी माँ इन सोलह नामों से मैं तेरे लिये नमस्कार करता हूँ। जिस तरह चंद्रमा की सोलह कलायें होती है इस तरह तेरे ये सोलह नाम मुझे शीतलता प्रदान करे जिनवाणी माँ।

प्रिय आत्मन् !

वे कौन हैं जो जगत में तीर्थ का प्रर्वतन करते हैं। एक तो तीर्थंकर है जो तीर्थ का प्रर्वतन करते हैं, धर्मतीर्थ के अधिनायक संसार से तिरने का उपाय बताने वाले तीर्थंकर हुआ करते हैं। तीर्थंकर के बाद तीर्थ का प्रर्वतन कौन करता है? ज्ञानियो ! यह प्रश्न हमारे सामने हैं। भगवान महावीर स्वामी ने तीर्थ का प्रर्वतन किया, आदिनाथ ने तीर्थ का प्रर्वतन किया। क्रम से चौबीस तीर्थंकरों ने दिव्य-ध्वनि देकर तीर्थ का प्रर्वतन किया।

आचार्य कहते हैं तीर्थंकर के बाद क्या तीर्थ का प्रर्वतन रुक जाता है तीर्थंकर महावीर स्वामी मोक्ष चले गये तो क्या तीर्थ का प्रर्वतन रुक गया फिर कौन करता है, तीर्थ का प्रर्वतन ? कौन चलाता है धर्म तीर्थ के रूप को ? कौन बढ़ाता है धर्म तीर्थ के रूप को ।

प्रिय आत्मन् !

इस धर्म तीर्थ को संचालित करने वाले कौन हैं? आचार्य! कैसा आचार्य होना चाहिये हर आचार्य धर्म तीर्थ का प्रर्वतन नही कर सकता है। ध्यान देना–दो पैर से कूदते हो और एक पैर से चलते हो लेकिन चलने के लिये दौनों पैर आवश्यक है। अकेला एकपैर रहेगा तोभी नही चल पाओगे, तो दोनों पैर आवश्यक है और दोनो पैर एक साथ उठाओगे तो भी नही चल पाओगे। दोनो पैर एक साथ उठाके तुम कूद सकते हो लेकिन चल नहीं सकते हो। चलने के लिये एक पैर ऊपर उठाया जाता है एक पैर जमीन पर होता है ज्ञानी। एक पैर मुख्य होता है एकपैर गोण होता है जो ज्ञानी है वह जगत में तीर्थ का प्रर्वतन करते हैं। कैसे ज्ञानी हैं? बहुत से पुराणों के ज्ञानी हैं क्या? बहुत से शास्त्रो के ज्ञानी हैं क्या?

आचार्य कहते हैं उनकी चर्चा नहीं है यहाँ मात्र दो बाते होना चाहिये। एक व्यवहार नय और दूसरा निश्चय नया जो व्यवहार को भी जानता हो और निश्चय को भी जानता हो, कैसा आचार्य? व्यवहार नय और निश्चय नय में कुशल हो।

जिनका व्यवहार नय एक हाथ है और निश्चयनय दूसरा हाथ है उसी तरह ज्ञान एक हाथ है तो दर्शन दूसरा हाथ है।

वे धन्य हैं, जिनके पास व्यवहार नय भी है और निश्चय नय भी है और इन दोनों के बल पर जो संसार सागर में विषयो रूपी मगर मच्छों के बीच डूबते हुये संसारी प्रणियों को

संसार समुद्र से निकाल लेते हैं।

ज्ञानियों ! मात्र व्यवहार –व्यवहार को जानने वाला कल्याण नहीं कर सकता । मात्र निश्चय–निश्चय को जानने वाला भी कल्याण नहीं कर सकता। दोनों चाहिये। यदि एक आँख है और एक आँख नही है तो कन्हैया नहीं कहलाओगे और कुछ कहलाओगे।

ज्ञानियों ! दोनो आखें चाहिये और दोंनो पैर चाहिये तीर्थ का प्रर्वतन करने जा रहे हो पहले

देखेलो स्वयं को चलने के लिये दो पाँव है कि नही है यदि तुम्हारे लिये स्वयं के चलने के लिए दो पाँव नही है, तुम्हारे स्वयं के लिये देखने के लिये दो आँखे नहीं है तो तुम क्या चलोगे और क्या देखोगे।

व्यवहार नय की एक आँख है और निश्चय नय की दूसरी आँख है । व्यवहार नय एक कदम है तो निश्चय नय दूसरा कदम है। जो व्यवहार और निश्चय दोनों को जानने वाले पहले व्यवहार को जानते हैं बाद में निश्चय को जानते हैं।

जैसे– मूँगफली में से पहले बाहर का छिलका निकालते हैं कठोर छिलका निकालते हैं फिर बादमे उस मूँगफली के दाने का बक्कल निकालते हैं। तो पहले व्यवहार नय कार्यकारी है, पश्चात निश्चय नय कार्यकारी है।

प्रिय आत्मन् !

कल्याण के पथ का अधिकारी कौन है? तीर्थंकर भगवान श्री श्रेयांसनाथ की स्तुति में यह लिखा है कि व्यवहार और निश्चय यह दो नय है। व्यवहार नय तो साधन हैं। निश्चय नय साध्य है। पहले साधन होता है और साधन से पहले जिसे साधा जाये वह साध्य होता है। जैसे थाली साधन है और भोजन साध्य है। मात्र थाली रख दोगे तो काम नहीं चलेगा और बिना थाली के भोजन रखोगे तो भी काम नहीं चलेगा।

जैसे वृक्ष में पहले फूल आता है बाद में फल आता है उसी तरह से पहले व्यवहार नय होता है, बाद में निश्चय नय होता है । पहले साधन होता है बाद में साध्य होता है व्यवहार नय छैना की तरह है और निश्चय नय मिठाई की तरह है। व्यवहार नय और निश्चय नय किसे कहते है।

जो पर के आश्रय से होता है, पर्याय के आश्रित होता है उसे व्यवहार नय कहते हैं और द्रव्य के आश्रित होता है उसे निश्चय नय कहते हैं। मैने आप से कहा यह क्या है? जब मैनें आपको पेन दिखाया तो आप बोले यह पुद्गल है और एक बेटा बोलता है पेन है लेकिन दोनो सही है व्यवहार नय की अपेक्षा पेन है और निश्चय नय की अपेक्षा यह पुद्गल द्रव्य। क्योंकि पेन पर्याय है और पुद्गल द्रव्य है तो द्रव्य की अपेक्षा स्व के आश्रित वह निश्चय है और जो पर्याय के आश्रित है वह व्यवहार है व्यवहार की अपेक्षा यह पेन हो गया और निश्चय की अपेक्षा पुद्रगल द्रव्य हो गया। पर्याय नय भी प्रयोजनीय है उत्यार्थी नय भी प्रयोजनीय है।

आचार्य देव लिखते हैं यदि तुम जिनमत की प्रभावना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय दोनों को मत छोड़ना। यदि तुम समाज में प्रतिष्ठा चाहते हो माँ का भी ध्यान रखना और पिता का भी ध्यान रखना यदि तुम जिनमत का प्रर्वतन चाहते हो तो निश्चय का भी ध्यान रखो और व्यवहार का भी ध्यान रखो। दोनों आवश्यक है।

ज्ञानीपुत्र भी आवश्यक और पिता भी आवश्यक है। बीज भी आवश्यक है और वृक्ष भी आवश्यक है। फूल भी आवश्यक है और फल भी आवश्यक है, यदि तुम व्यवहार को छोड़ दोगें तो तीर्थ का प्रर्वतन रुक जायेगा। जो जीव व्यवहारको नही मानते हैं, वे जिनशासन के नाशक है,शत्रु है वे महावीर के शत्रु है वे जिनशासन के विनाशक है जैनधर्म के नाशक है और जो धर्म का नाशक है वह स्वयं का नाशक है।

प्रिय आत्मन् !

तुमने यदि व्यवहार को छोड़ दिया तो श्रावक धर्म नष्ट हो गया। ओहो! हम यह सोच रहे कि दान और पुण्य से तो संसार होता है ज्ञानियों। तत्व की देशना देने वाले भी कहाँ से कहाँ मिल जाते हैं। जीव पर ध्यान देना – जिस डॉक्टर को रोग की जानकारी नहीं हो यदि तुम उसको रोग दिखाओगें तो वह उपचार करेगा उसी तरह जिसे स्वयं तत्व का ज्ञान नहीं है वह यदि तत्व का उपदेश देने बैठेगा तो अनर्थ हो जायेगा। और यह अनर्थ हो रहा है। लोग यह कह रहे है कि पुण्य तो संसार का कारण है। आचार्य देव सेन स्वामी भाव संग्रह में लिखते हैं।

सम्यक्दृष्टि जीव का पुण्य संसार का कारण नही होता है मोक्ष का ही हेतु होता है। यदि वह निदान न करे तो। यदि तुम सम्यक् दर्शन के साथ मुनिराज को आहार देते हो, जिनेन्द्र की पूजा करते हो तो उससे जो पुण्य संचित होगा वह पुण्य संसार का कारण नही है साक्षात् मोक्ष तो नही होगा किन्तु मोक्ष की सामग्री जुटा देगा। मोक्ष की सामग्री निरोग शरीर, पंचेन्द्रि, मनुष्य, उत्तम आयु निरोगता, धर्म संस्कार, उत्तम देश,उत्तम नगर यह सब पुण्य के फल है। ज्ञानी तू पुण्य के उदय में पुण्य की निंदा कर रहा है। सम्यक् दृष्टि जीव का पुण्य संसार का कारण नहीं है। सम्यक् दृष्टि का पुण्य तो मोक्ष का भी कारण है। क्योंकि सम्यक् दृष्टि अपने पुण्य से विषयों को नहीं भोगता है सम्यक् दृष्टि अपने पुण्य का उपयोग विषय कषायों में नही लगता है सम्यक् दृष्टि अपने पुण्य का उपयोग जिनेन्द्र भगवान की पूजा अर्चना में लगायेगा।

जैसे – आपने मुनिराज को आहार दान दिया तो मुनिराज आपके आहार को जिनवाणी के अध्ययन में सामायिक और प्रतिक्रमण में लगाते हैं उसी तरह सम्यक् दृष्टि अपने पुण्य से धर्म का आचरण करता है इसलिये यहाँ का सम्यक् दृष्टि स्वर्ग जायेगा। मै कौन हूँ ? ओहो ! मैं तो विभव सागर की सभा में विराजमान था विभवसागर जी ने कहा था कि सम्यक् दृष्टि स्वर्ग जाता है और मैं स्वर्ग आ गया हूँ उन्होने बताया था कि विदेह क्षेत्र होता है और विदेह क्षेत्र में तीर्थंकर होते हैं। आज मैं विदेह क्षेत्र जाऊँगा और तीर्थंकर की देशना सुनूंगा अहा! यह एक समोशरण, यह है तीर्थंकर भगवान, यह परम तपोनिधि दिगम्बर मुनि जो मैंने पूर्व काल में विभवसागर जी के मुख से सुने ये आज मैं साक्षात देख रहा हूँ।

ज्ञानी ! सम्यक दृष्टि का पुण्य ऐसे कार्य करेगा कि तीर्थंकर के समोशरण में ले जायेगा। आज की सभा में आना कल के समोशरण में जाने की तैयारी है। मुनिवर की शरण में आने वाला ही जिनवर की शरण में जाता हैं। गुरुवर की शरण में आने वाला ही प्रभुवर की शरण में पहुँचाता है जो व्यवहार और निश्चय दोनों को जानने वाले हैं ऐसे उपदृष्टा जब मिलते हैं तो तत्व का सम्यक् निर्णय होता है । तत्व का ज्ञान होता है।

जैसे फोटो ग्राफर का कैमरा शरीर के रूप रंग की तस्वीर लिया करता है वैसे व्यवहार नय पर्याय विषय किया करता है। जैसे डॉक्टर के एक्सरे की मशीन शरीर के अन्दर की जानकारी देती है उसी तरह से निश्चय नय द्रव्य की जानकारी देता है। कैमरा और एक्स–रे की मशीन की तरह व्यवहार और निश्चय नय है।

प्रिय आत्मन्! व्यवहार और निश्चय दोनों को जानने वाले जो पुरुष हैं वे तीर्थ का प्रर्वतन करते हैं मात्र शरीर के विज्ञानी नहीं आत्मा के विज्ञानी होना चाहिये। शरीर का विज्ञान व्यवहार का विज्ञान है और चेतना का विज्ञान निश्चय का विज्ञान है। संसद का प्रतिनिधि संसद तक ले जायेगा और महावीर का प्रतिनिधि महावीर तक ले जायगा यदि चेतना की निधि पाना है आत्मा की निधि को पाना हो, ज्ञान–दर्शन की निधि को पाना हो तो तीर्थंकर भगवान के प्रतिनिधि बन जाना। व्यवहार और निश्चय को जानने वाला पुरुष भगवान का प्रतिनिधि होता है

अज्ञान को मिटाना बहुत कठिन है, शिष्यों की खोटी बुद्धिको मिटाना आसान नहीं है, फिर भी जिन्होंने मिटा दिया है मुख्यता का उपचार करके यह व्यवहार है यह निश्चय है यह गौण है, यह द्रव्य है यह पर्याय है। विधिवत् कथन करके तत्व का उपदेश देकर के जिन्होंने शिष्यों के दुर्बोध को, खोटे ज्ञान को मिटा दिया है।

ज्ञानी जीवों कपड़े से मैल हटाना आसान है लेकिन शिष्यों के अज्ञान के मैल को हटाना आसान नहीं है। यदि इतना ही आसान होता तो हम महावीर से पहले मोक्ष चले गये होते। बहुत कठिन हैं लेकिन वह उन्हें आसान हैं जिनके पास व्यवहार और निश्चय दोनों का ज्ञान है।

प्रिय आत्मन् !

जो तार देता है, पार कर देता है धर्म तीर्थ के करने वाले उन स्याद्वादियों को मेरा नमस्कार हो। जो धर्मतीर्थ को करने वाले हैं। निश्चय नय सत्यार्थ है क्योंकि द्रव्य का कथन कर रहा है जो सत्य के ज्ञान से विमुख है वे प्राय: संसार में ही रूलते हैं, इसलिये ज्ञान दोनों का होना चाहिये। यदि दोनों का ही होगा तो शरीर के मोटेपन को आत्मा का मोटा पन मान लोगे। शरीर के रोग को आत्मा का रोग मान लोगे, शरीर के मरण को आत्मा का मरण मान लोगे इसीलिये ज्ञान तो दोनों का आवश्यक है। व्यवहार की विवक्षा है कि मरण होता है निश्चय कि विवक्षा है कि द्रव्य शाश्वत रहता है। व्यवहार की विवक्षा है कि मैं बालक हूँ , यह वृद्ध है, यह युवा है, निश्चय नय की विवक्षा कि आत्मा न बालक होता है, न वृद्ध होता है, न युवा होता है। व्यवहार की विवक्षा है यह स्त्री है, यह पुरुष है। निश्चय की विवक्षा है कि आत्मा न स्त्री है न आत्मा पुरुष है।

निश्चय नय के ज्ञान के विरुद्ध जो अभिप्राय है वह अभिप्राय ही संसार है दोनों नय का जब ज्ञान नहीं होगा तब तक जीव संसार में पड़ा रहेगा क्योंकि मिथ्यात्व में डूबना ही तो संसार में डूबना है और मिथ्यात्व में रहना ही संसार में रहना है। जिस समय मिथ्यात्व से निकल गये, अज्ञान से निकल गये, अंधेरे से निकलना ही तो प्रकाश में आना है।

प्रिय आत्मन् !

जिस स्थान पर हजार वर्ष से अंधेरा है उस स्थान पर प्रकाश करने में हजार वर्ष नहीं लगते उसी तरह मैं अनादि काल से अज्ञानी हूँ , अंनत काल से अज्ञानी हूँ लेकिन उस अज्ञान को मिटाने के लिये अनंत काल नहीं चाहिये। दीपक को जलाते ही जैसे अंधकार नष्ट हो जाता है उसी तरह व्यवहार और निश्चय का ज्ञान प्रकट होते ही सम्यक् ज्ञान प्रकट हो जाता है। अनंत काल के पाप एक पल में नष्ट हो जाते हैं। उसी तरह गुरु के ज्ञान की एक किरण आ जाये तो तत्क्षण सम्यक् दर्शन प्रकट हो जाता है।

जैसे –सूरज के उदय से बादल फट जाते हैं, उसी तरह जिनेन्द्र भगवान के ज्ञान पाने से गुरु से ज्ञान आते ही अज्ञान का अंधेरा छट जाता है। इसीलिये किसी की संगति हजार वर्ष कर लो और गुरु

की संगति एक मिनट कर लो। जैसे – अंधकार में दीपक हजार वर्ष रहेगा तो भी नहीं जलेगा और प्रकाश मान दीपक के सामने एक पल को आयेगा तो प्रकाशमान हो उठेगा।

ज्ञानियों ! संसारी जीवों की संगति करना कोई कल्याण कारी नहीं है लेकिन मोक्षमार्गी जीवों की संगति हमारे अंदर ज्ञान दीप को जला देती है। आचार्य कहते हैं जिन्हें व्यवहार का ज्ञान नही है उनको व्यवहार का ज्ञान दिया जाता है। जो अभी कुछ नहीं जानते उन्हें यह बताया जायेगा कि तुम मनुष्य हो। समयसार दो प्रकार का होता है एक शुद्ध समयसार, एक अशुद्ध समयसार। व्यवहार में जो गुणस्थान, मार्गण स्थान, जीव समास, इंद्रिय, गति, काय, योग, वेद, कषायज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या इन सब का जो वर्णन है, यह सब व्यवहार है।

आचार्य कहते हैं मुनीश्वरों ने व्यवहार नय और निश्चय नय दोनों का उपदेश दिया है किंतु जो मात्र व्यवहार को ही अपनाते हैं या मात्र निश्चय को अपनाते है उनको देशना नहीं है। मेरा उपदेश मात्र व्यवहार वालों के लिये नहीं है। मेरा उपदेश मात्र निश्चय वालो के लिये भी नहीं हैं। तीर्थंकर भगवान का जो उपदेश है आचार्य कहते हैं।

उसको देशना नहीं है जो मात्र व्यवहार को अपनाना चाहता हो, जो मात्र निश्चय को अपनाना चाहता हो। ज्ञानियों ! मात्र व्यवहार को अपनाओगे तो महाभारत हो जायेगा। यदि पुरुषार्थ सिद्धि उपाय ग्रंथ को खोल दिया होता तो महाभारत नहीं होता।

आचार्य कहते हैं दोनो नयो को अपनाओं। जैसे–तुम्हें दोनों नयन प्रिय है वैसे दोनो नय भी प्रिय होना चाहिये दोनों नयन की तरह दो नय वाले बनो तभी आप संसार से पार हो सकोगे। व्यवहार नय पर्याय को विषय करता है निश्चय नय द्रव्य को विषय करता है। संसार में तीर्थ का प्रर्वतन व्यवहार और निश्चय को जानने वाले जो दिगम्बर साधु दोनों नय के उपदेशक हैं वह तीर्थ का प्रर्वतन करते हैं।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

*** * * ***

निश्चय नय को नहीं जानने वाले पुरुष हेतु उदाहरण

माणवक एव सिंहो, यथा भवत्यनवगीतसिंहस्य।

व्यवहार एव हि तथा, निश्चयतां यात्यश्चियज्ञस्य।।7।।

अन्वयार्थ – (यथा) जिस प्रकार (अनवगीतसिंहस्य) सिंहको नहीं जानने वाले पुरुष को (माणवकः) बिल्ली–मार्जार (एव) ही (सिंहः) सिंह स्वरूप (भवति) भासती है, (तथा) उसी प्रकार (अनिश्चयज्ञस्य) निश्चयनय के स्वरूप को नहीं जानने वाले पुरुष को (व्यवहारः) व्यवहारनय (एव) ही (हि) अवश्य (निश्चयतां) निश्चयपनेको (याति) प्राप्त होता है।

उपदेश देने का पात्र

व्यवहारनिश्चयौ यः प्रबुध्य तत्वेन भवति मध्यस्थः।

प्राप्नोति देशनायाः, स एव फलमविकलं शिष्यः।।8।।

अन्वयार्थ – (यः) जो (तत्वेन) वास्तविक रूप से (व्यहारनिश्चयौ) व्यवहारनय और निश्चयनय दोनों नयों को (प्रबुध्य) जानकर (मध्यस्थः भवति) मध्यस्थ हो जाता अर्थात् किसी एक नयका सर्वथा एकांती न बनकर अपेक्षा दृष्टि से दोनों को स्वीकार करता है, (स एव) वह ही (शिष्यः) उपदेश सुनने वाला (देशनायाः) उपदेश के (अविकलं) सम्पूर्ण (फल) फल को (प्राप्नोति) प्राप्त करता है।

पुरुष का स्वरूप

अस्ति पुरुष रचिदा दात्मा, विवर्जितः स्पर्शगंधरसवर्णेः।

गुणपर्ययसमवेतः समाहितः समुदव्ययधौव्येः ॥9॥

अन्वयार्थ - (स्पर्शगंधरसवर्णेः) स्पर्श - रस-गंध वर्ण से (विवर्जितः) रहित-वियुक्त (गुण-पर्ययसमवेतः) गुणपर्यायों से विशिष्ट (समुदव्ययध्रोव्यैंः) उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसे (समाहितः) सहित संयुक्त (चिदात्मा) चैतन्यमय आत्मा (पुरुषः) पुरुष (अस्ति) है।

प्रिय आत्मन् !

माँ जिनवाणी! जगकल्याणी! अरिहंत भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य आचरित, उपाध्याय उपासित, सर्वसाधु साधित, जीव तत्त्व प्रबोधिनी, अजीव तत्त्व विवेचनी, सर्वास्रव निरोधिनी, कर्म बंध विमोचनी, संवर पथ प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण कारिणी, हे जिनवाणी माँ-तेरी जय हो, सदा विजय हो। तेरे विशाल पद में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन् !

व्याप्ति के ज्ञान के तर्क कहते हैं। ज्ञान है इस कारण आप जीव हैं, जिसमें ज्ञान होता है वह जीव होता है, जिसमें ज्ञान नहीं होता है, वह जीव नहीं होता है, दीवाल में ज्ञान नहीं है, इसीलिए वह जीव नहीं हैं, तर्क, जो, जो, जीव हैं, वह-वह ज्ञानवान हैं, जो-जो ज्ञानवान वह-वह जीवन है, जो, जो जीव नहीं, वह-वह ज्ञानवान नहीं जो-जो ज्ञानवान नहीं। वह-वह जीव नहीं।

कोई भी यहाँ अज्ञानी नहीं है, सभी के सभी ज्ञानी है, बोल दो कौन है अज्ञानी? एक भी जीव अज्ञानी नहीं हैं, यदि अज्ञानी हो जाएगा तो अजीव हो जाएगा, इसीलिए, सब के सब ज्ञानी हैं।

ज्ञान गुण का धनी है, सो ज्ञानी है, ध्यान देना। ज्ञान गुण सबमें विद्यमान है। चाहे वह सम्यक रूप हो, चाहे वह मिथ्यात्व रूप हो, लेकिन ज्ञानी तो सब है।

ध्यान देना! कार्तिक अनुप्रेक्षा कार लिखते हैं, मिथ्यादृष्टि भी ज्ञानी है, यदि ज्ञानी नहीं होता तो सम्यक्दर्शन को प्राप्त होता, ज्ञानी है तभी तो वह सम्यक्दर्शन के अभिमुख है, सम्यक्दृष्टि सम्यक् ज्ञानी है, मिथ्यादृष्टि ज्ञानी है।

सम्यक् दृष्टि सम्यक् ज्ञानी है, और अरिहंत भगवान केवल ज्ञानी है।

प्रिय आत्मन् !

अनुमान– जिस तरह मैं चलता फिरता हूँ उसी तरह तुम भी चलते फिरते हो, मैं भी जीव हूँ, तुम भी जीव हो, लेकिन जिसमें से प्राण निकल गये हैं, वह शव न चलता है न फिरता है, न जानता है न बोलता है, इस अनुमान से सिद्ध होता है, हम आप तो जीव हैं लेकिन उसमें से जीव निकल गया, जो अर्थी पर जा रहा है।

अनुमान से सिद्ध होता है। आगम प्रमाण भी है, यदि आगम को प्रमाण नहीं मानोगे ज्ञानी! राम–रावण थे कि नहीं थे ? तुमने आँखो से देखा क्या ? फिर कैसे, बोलो। ज्ञानी जीवों, सूक्ष्म, दूर, और अंतरित पदार्थ, जो बहुत दूर है, ऐसे राम, और रावण को मानते की नहीं मानते। मैं तो मानता हूँ रावण को तुम मानते हो राम को जरा बता दो राम कहाँ ? और रावण कहाँ है ? ज्ञानी जीवो, तो आगम भी प्रमाण, यदि आगम को प्रमाण नहीं मानेगें तो राम और रावण, पांडव और कौरव नहीं होंगे। कृष्ण प्रमाणित नहीं होंगे। अरे बुद्धू! वह बुद्ध भी प्रमाणित नहीं होंगे, ध्यान देना इसीलिए आगम प्रमाण है।

प्रिय आत्मन् !

परोक्ष प्रमाण भी प्रमाणित है, प्रत्यक्ष प्रमाण भी प्रमाण है –

"इंद्रियानिन्द्रिय निमित्तं देशना साम्व्यावहारिकं"

इन्द्रिय और अनिन्द्रिय के (निमित्त) से जो बोध होता है वह साम्यव्यावहारिक प्रत्यक्ष भी प्रमाण है, और अवधिज्ञान मनः पयर्य ज्ञान और केवल ज्ञान ये पारमार्थिक प्रत्यक्ष भी प्रमाण है, इसलिए आँखो से देखी गई वस्तु ही प्रमाण नहीं होती है, क्योंकि आँखे बंद होने पर भी जब तू शर्बत पीता है तो उसके स्वाद को प्रमाण मानता की नहीं मानता ? मानते हो। ज्ञानियों जिस तरह अंधकार में भी, बोध होता है, नेत्र हीन को भी अन्य वस्तुओं को बोध होता है, इसीलिए मात्र आँख ही प्रमाणित नहीं

होती है। इसीलिए आगम प्रमाण भी हैं, स्मृति भी प्रमाण है, प्रतिविज्ञान भी प्रमाण है, तर्क भी प्रमाण है, अनुमान भी प्रमाण है, ये सांव्याहारिक प्रत्यक्ष हुआ।

अवधिज्ञान प्रमाण है मनः पयर्य भी प्रमाण है, और सर्वज्ञ का केवलज्ञान भी प्रमाण है।

प्रिय आत्मन् !

आत्मा है इसमें आप क्या कहना चाहेगे ? मैं यह कहना चाहूँगा। आगम में लिखा है अनुभव कर देख लो।

स्वोन्मुखतया प्रतिमासनं स्वस्य व्यवसायः। अर्थस्येव तदुन्मुखतया।

जिस तरह ज्ञान पदार्थ को लक्ष्य करता है, तो तू पदार्थ को जानता है, उसी तरह जब स्व के अभिमुख होता है, तो स्व को भी जानता है, ज्ञानी! पदार्थ के अभिमुख हुआ है तो पदार्थ को जानेगा और निज के अभिमुख हो जाएगा तो निज को भी जानेगा। आत्मा कथन की चीज नहीं है, अनुभव की चीज है बोलो ज्ञानी, ये स्व संवेदन प्रमाण सिद्ध है।

अनुभव करके देखो, रसगुल्ला कैसा होता है, मीठा होता है, मीठा कैसा होता है, ये अनुभव की चीज है।

न वह आत्मा प्रमत्त है, न वह आत्मा अप्रमत्त है, वह शुद्ध आत्मा तो शिव धाम में है, वह जो है, सो है। वह आत्मा कथन का विषय नहीं है, अकथनीय है, उसके विषय में कहा नहीं जा सकता है, अनुभव किया जा सकता है, ज्ञानी! आचार्य लिखते हैं -

समुद्र में से प्रलय काल की वायु के बहाव से समुद्र का जल बाहर निकल गया है, रत्नाकर में मात्र रत्नों की राशी ही राशी दिखाई दे रही है, किन्तु उस रत्नों की राशि को गिनने में कौन समर्थ है ज्ञानी ? उसी तरह आचार्य कहते हैं, उन रत्नों की तरह आत्मा का अनुभव तो हो सकता है, लेकिन आत्मा का कथन नहीं हो सकता है।

प्रिय आत्मन् !

फिर भी आत्मा की परिभाषा क्या है, तो आचार्य कहते हैं।

अस्ति (है), भविष्यसि नहीं अस्ति है, अभूत् नहीं अस्ति (है) आसीत नहीं अस्ति, आसीत था, भविष्यसि (होगा) अस्ति है, कौन पुरुष, पुरुष है, कैसा है, चिद् (ज्ञान दर्शन) चैतन्य जिसमें चेतन्यता है, चिन्ता नहीं है, चैतन्य रहना चाहिए चिंतित नहीं रहना चाहिए।

चैतन्य होने का मतलब है, ज्ञान दर्शनवान है, जो प्राप्त होता है परिणमन करता है, वह आत्मा है, जो सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र में एक साथ परिणमन करता है वह आत्मा है जो अपने ही गुणों में परिणमन करता है, वह आत्मा है वह आत्मा कैसा है, सबसे पहले ये स्वीकार करो कि आत्मा है। आप कमरे में बैठे हैं, उस समय मैं जानना चाहता हूँ कि, घर की चार दीवारें आप से अलग है, और आप अलग है।

उसी, तरह आत्मा अलग है और शरीर अलग है, इतना ही भेदज्ञान काफी है जिस तरह भवन की चार दीवारें जुड़ी है, और जानना है तो तन पर जो कपड़े है, वे जिस तरह तुमसे जुड़े है, उसी तरह यह तन भी एक कपड़ा है वह आत्मा से जुड़ा है।

प्रिय आत्मन् !

जिस तरह से कपड़े उतारते हो, उसी तरह मन के कपड़े को भी उतार देना पड़ेगा। जिस तरह शरीर कपड़ा बदलता है, उसी तरह एक दिन, आत्मा शरीर को बदल कर चला जाएगा। जिस तरह शरीर के कपड़े मोटे पहन लेने से शरीर मोटा नहीं होता। कपड़े के सुंदर पहन लेने से शरीर सुंदर नहीं हो जाता है। कपड़े जीर्ण-शीर्ण पहन लेने से शरीर जीर्णशीर्ण नहीं हो जाता। कपड़े न्यूनतम पहन लेने से शरीर न्यूनतम नहीं हो जाता।

उसी तरह शरीर के बदलाव में आत्मा का बदलाव नहीं हो जाता, क्योंकि कपड़ा शरीर से भिन्न है, वैसे ही शरीर आत्मा से भिन्न है, ज्ञानी जीवों! ये भेद ज्ञान की सीख भी आवश्यक है। जैसे तोता अलग है। पिंजरा अलग है उसी तरह शरीर अलग है, और आत्मा अलग है। ज्ञानी जीवों!

आँख देखती है कि आँख वाला देखता है? आँख वाला देखता है। आँख वाले का नाम आत्मा है, आँख वाले का नाम जीव है और आँख पुद्‌गल है। आँख पुद्‌गल है और आँख वाला जीव है। कान सुनता है कि कान वाला सुनता है। कान सुनता है, कान वाला आत्मा है। कान पुद्‌गल है। जीभ स्वाद लेती है कि जीभ वाला स्वाद लेता है। ज्ञान वाला स्वाद लेता है, यही जानना कि कर्म की सुंयक्त दशा में शरीर संयोगी है। इसीलिए जब कर्मों से हटेगी आत्मा तो परिपूर्ण सुख का भोग करेगी आत्मा के विषय में हम सम्यक् तरह से निर्णय कर लें, अन्यथा कोई सरसों के दाने बराबर आत्मा मानता है। तो कोई दीपक की ज्योति के समान चमकता हुआ प्रकाश मानता है। ऐसे-ऐसे ध्यान कराने वाले है? जो दीपक की ज्योति के सामने बिठा देते हैं, बस यह प्रकाश ही आत्मा है, ज्ञानी प्रकाश पुद्‌गल की पर्याय है, अभी एक फूंक मारो तुरंत अंधकार में परिणित हो जाएगी।

तो क्या आत्मा में फूक मारोगे तो, आत्मा अंधकार मय हो जायेगी क्या ? नहीं ये पुद्‌गल का प्रकाश है, ऑक्सीजन जब तक मिल रहा है, तब तक यह है, ऑक्सीजन नहीं मिलेगी तो अंधकार हो जायेगा। लेकिन आत्मा, शाश्वत है, अजर है, अमर है, अविनाशी है, टंकोत्कीर्ण ज्ञायक स्वभावी यह हमारी आत्मा है। आत्मा अनादि से है, और अनंत काल तक रहेगा। ज्ञानी जीवों, आत्मा स्पर्श से रहित है तू कहता 'छुओ मत' Dont Touch, तन को छुआ जा सकता है चेतना को नहीं।

आत्मा को छू नहीं सकते हो क्यों ? आत्मा में स्पर्श नहीं है। स्पर्श आठ प्रकार का होता है, हलका, भारी, कड़ा, नरम, रूखा, चिकना, ठंडा, गरम। आठ प्रकार स्पर्श है। आत्मा का वेट कितना है, कोई तौल नहीं बता सकता, आत्मा का वजन नहीं है, वजन पुद्‌गल का होता है, वजन आत्मा का है ही नहीं।

आत्मा का भार नहीं है, आत्मा निर्भार है, इसीलिए आत्मा एक समय में सीधा सात राजू ऊपर पहुंच जाता है। कर्मों के भार के कारण संसार में है जिस दिन कर्मों का भार उतर जाएगा उस दिन आत्मा सिद्ध बन जाएगी। स्पर्श से रहित है, न आत्मा कोमल है न कठोर है, तू कहता है इसका स्वभाव कठोर है, ज्ञानी स्वभाव कठोर हो ही नहीं सकता, क्योंकि आत्मा में स्पर्श ही नहीं है, तो कठोरता कहाँ। कठोरता आएगी कहाँ से, ध्यान देना। ज्ञानियों !

आत्मा न तो कोमल है, न कठोर न हल्का है न भारी है न ठंडा है, न गरम है, न रूखा है,न चिकना। स्पर्श की पर्याय से परे है। न आत्मा खट्टा है, न मीठा है। आत्मा में स्वाद नहीं है सुनों ज्ञानी सुनों। आत्मा में कोई स्वाद नहीं है और आत्मा जैसा कोई स्वाद नहीं है। आत्मा में रस नहीं है, और आत्मा जैसा कोई रस नहीं है। आत्मा जैसा रस कही नहीं है।

जिसको ध्यान में आत्मा का रस आ जाऐ तो सब रस फीके लगने लगते हैं। एक बार आ जाऐ तो संसार के सारे रस फीके लगने लगते हैं। जो रस सदा रूच रहे थे वे सब रस बेरस लगने लगते हैं। आपको कैसा लग रहा है सुख हो रहा है। सुख अनुभूत हो रहा है कौनसा इंन्द्रिय का सुख चल रहा है, न स्पर्शन का सुख है, न रसना का सुख है, न में रसगुल्ला खिलाता हूँ न में लड्‌डू खिलाता हूँ।

न ही कोमल आशन की व्यवस्था है। न स्पर्शन का सुख है, न रसना का सुख है, न सूँघने के लिए फूल है, तो घ्राण का भी सुख नहीं, देखने के लिए कोई विशेष वस्तु नहीं है यहाँ, क्यों फिर भी सुख मिल रहा है तो फिर क्या कर्ण इन्द्रिय का सुख है, नहीं यह कर्ण के द्वारा, ये बात भीतर-भीतर डूब जाती है, फिर कहते हैं सुख मिलता है जब मन मनोयोग काम करता है तो पाँचों इंन्द्रियों का व्यापार रुक जाता है। इस समय हमारी पाँचों इंन्द्रिया शून्य हो रही है।

मात्र मनोयोग निज में लगा हुआ है, और सुख की प्राप्ति हो रही है यह अतिन्द्रिय सुख कहलाता है। प्रत्यक्ष स्व संवेदन सुख ये है अतिन्द्रिय सुख। जब तुम्हें साधु के प्रवचन में पांचों इंन्द्रियों के विषय में कोई विषय-परोसा नहीं जा रहा है, फिर भी अतीन्द्रिय सुख मिल रहा है। आनंद आ रहा है, महाराज आनंद आ रहा है, महाराज आनंद आ रहा है महाराज ज्ञान की गंगा बह रही है।

ज्ञानी जब इधर इतना है, तो उधर कितना होगा ? जहाँ तैंतीस सागर की आयु है। यहाँ सागर की बूंद बराबर भी ज्ञान नहीं है वहाँ कितना होगा, जहां अनंत ज्ञान का साम्राज्य है अनंतकाल के लिए है यहाँ एक घंटे का प्रवचन है, वहाँ तैंतीस सागर का है, अनंत काल तक है, बोलो ज्ञानी।

इसीलिए सिद्धों का सुख का अनंतवाँ हिस्साा भी अपन नहीं भोग सकते हैं। ज्ञानी जीवो।

ये कौन सा सुख चल रहा, मैं टीकमगढ़ में था। महाराज आपके प्रवचन से ऐसा सुख महसूस हुआ। मैंने कहा कैसा सुख महसूस हुआ। महाराज ऐसा दिन तो, मेरे जीवन में कभी नहीं आया। मैंने कहा जिस दिन तुम घोड़े पर बैठे थे और दूल्हा बनके निकले थे क्या ? उस दिन भी ऐसा आनंद नहीं आया। बोले महाराज उस दिन भी ऐसा आनन्द नहीं आया था जैसे आज आ रहा है। ज्ञानी सत्य है इंन्द्रियाधीन सुख पराधीन हुआ करता है, और ये जो तत्त्व देशना का सुख है निज ज्ञान का सुख है।

तत्त्वज्ञान सुन के भाव श्रुतज्ञान में परिणमन हो गया। ज्ञान पांच होते हैं - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्याय ज्ञान, और केवल ज्ञान। चार ज्ञान स्वार्थ होते हैं, मतिज्ञान अवधिज्ञान, मनः पर्याय ज्ञान, केवल ज्ञान। मात्र एक ही ज्ञान सबके काम का है, श्रुत ज्ञान स्वीधीन होता है। स्वार्थ और परार्थ भी होता है। मतिज्ञान से जानूगां लेकिन मेरा मति ज्ञान तुम्हारे काम नहीं आएगा।

मेरा अवधिज्ञान तुम्हारे काम का नहीं है। मेरा मनः पयर्य ज्ञान आपके काम का नहीं है। मेरा केवल ज्ञान आपके काम का नहीं है। जाना जा सकता है। लेकिन जब कथन होगा। जानना स्वार्थ है, और कहने वाला परार्थ, तो श्रुत ज्ञान जो स्वार्थ भी होता है, और परार्थ भी होता है।

इसीलिए, मतिज्ञान के क्षयोपशम वाले जीव भी, तत्त्व की देशना नहीं कर पाते हैं अच्छे-अच्छे मैंने देखे हैं, कि ज्ञान तो बहुत है मतिज्ञान का क्षयोपशम तो अच्छा है, लेकिन श्रुतज्ञान का क्षयोपशम नहीं है। तो श्रुतज्ञान का अर्थ है परोपकार परार्थ ज्ञान। मतिज्ञान से परोपकार नहीं होगा। स्व का कल्याण तो हो सकता है, अगर पर का कल्याण करना है तो श्रुत ज्ञान चाहिए।

स्पर्श, रस, गधं, वर्ण इस सभी रहित आत्मा है क्योंकि –

स्पर्श, रस गंध वर्णवन्तः पुद्गलः।

पुद्गल का लक्षण है स्पर्श होना पुद्गल का लक्षण है, छुना, तुमने मुझे नहीं छुआ पुद्गल को छुआ। तुमने मुझे देखा नायक जी! नहीं देखा, इतने दिन हो गए तुमने मुझे नहीं देखा। बोलो देखा। बोलोगे नहीं तो भूल कैसे सुधरेगी, कैसे ज्ञानी तुझे तुमने इस रूप में देखा, अहा, महाराज आपका तो कृष्णजी के समान बाल रूप है। अहा आपका तो राम के सामन प्रमुदित मुख मण्डल है।

आहा ज्ञानी! तुमने देखा आकार के रूप में, और आकार चेतना का नहीं है, आकार तो पुद्गल पिण्ड का है। मैं पुद्गल नहीं हूँ। ध्यान देना, मैं पुद्गल नहीं हूँ, मैं जीव द्रव्य हूँ और जीव द्रव्य दिखाई नहीं देता है अच्छे तरह निर्णय कर लेना।

यन्मया द्रश्यते रूपं, तन्न जानाति सर्वथा।

जान्न न द्रश्यते रूपं, ततः केन ब्रबीम्यहं॥

जो मेरे द्वारा देखा जाता है वह पुद्गल का है। मैं छोटा हूँ। मेरा कद छोटा है। मैं लम्बा हूँ, मैं मोटा हूँ ये सब क्या? पुद्गल है। आत्मा न पतला है, न मोटा है, न काला है, न गोरा है, न छोटा है, न बड़ा है बोलो यही स्थिति है आत्म तत्त्व की तुमने मुझे नहीं देखा तुम मुझे देख भी नहीं पाओगे। आँखों से कोशिश करोगे तुम मुझे देख नहीं पाओगे।

हो अर्द्ध निशा का सन्नाटा, वनमें वनचारी चरते हो।
तब शान्त निराकुल मानुष तुम, तत्त्वों का चिन्तन करते हो।।

ज्ञानी देखने वाला अंधकार में भी देख लेता है। और नहीं देखने वाला आंख होने पर भी नहीं देख पाता है, क्यों? क्योंकि देखा इन आंखों से नहीं जाता है, देखा ज्ञान की आंखों से जाता है अनुभव की आंखों से देखा जाता है। तो जिसे देख रहे हो, पुद्गल है जो दिख रहा है पुद्गल है जो देख रहा है वह चेतन है।

जो देख रहा है, वह चेतन है जो दिख रहा है अचेतन। जो देखे सो चेतन। जो दिखे सो अचेतन। जो–जो दिख रहा है। वह–वह जड़ है, नश्वर है, नाशवान है देख लेना सबको सत्य देख हंस रहा कि **जल रहा असत्य है, सिद्ध नाम सत्य है, अरिहंत नाम सत्य है सिद्ध नाम सत्य है।**

आगे-आगे अपनी ही अर्थी में गाता चलू।
सिद्ध नाम सत्य है अरिहंत नाम सत्य है।।2।।

प्रिय आत्मन् !

असत्य है जला गया। सत्य है चला गया। ज्ञानी जीव क्या हो गया, शांत हो गये क्यों शांत हो गये जो सत्य था सो चला गया है, और असत्य को कांधों पर लेकर वह जा रहा है। जो जीव था वह चला गया, जो अचेतन जड़ वह कांधों पर लेकर जा रहा है ये जैन दर्शन है, यहाँ तीर्थंकर महावीर का साक्षात्कार है। यही है आत्मा की सत्य स्थिति।

सत्य आत्मा तो चला गया, किसी पर्याय का पंछी था चला गया। घोंसले से पक्षी उड़ गया, यहाँ अब घोसला पड़ा है।

पीछे-पीछे-दूर तक दिख रही जो भीड़ है,
पंछी साख से उड़ा खाली पड़ा नीड़ है।
सृष्टि सारी देख ले है पर्याय ही अनित्य,
सिद्ध नाम सत्य है, अरिहंत नाम सत्य है।।

प्रिय आत्मन् !

ये है घोंसले से जैसे पंछी उड़ गया, उसी तरह शरीर के घोंसले में बेठा चेतना का पंछी चेतना का हंस उड़ गया है। हंस को तुम नहीं पकड़ पाए, अब घोंसला तुम्हारे हाथों में है, अब किसको जलाने ले जा रहे हो। ज्ञानी जीवों ध्यान देना, जो था, सत्य था सो चला गया, कौन जल रहा है किसकी चिंता है असत्य की चिता है सत्य तो चेतन था। बोलो ज्ञानियों समझ में आ रहा है। कुछ अभूत पूर्व सा लग रहा है।

लगेगा फिर कैसा है आत्मा **"गुण पर्यय सम्वेतः " "गुण पर्ययवद् द्रव्यम्"।**

आत्मा द्रव्य है, द्रव्य क्या है? जिसमें गुण पर्याय पाई जाए वह द्रव्य है। गुण कभी नष्ट होते नहीं है। गुणों का कभी नाश नहीं होता है, परिणमन होता है और परिणमन ही पर्याय कहलाती है, ध्यान देना। ज्ञानी जीव! गुण का नाश नहीं होता है, परिणमन होता है। गुण का परिणमन हुआ करता है, सुनो ज्ञानी! पुद्गल के गुण, पुद्गल के ही रहेंगे। चेतना के गुण चेतना रूप ही रहेंगे। ध्यान देना वह परिणमन हो सकता है।

प्लास्टिक का पेन है ये पुद्‌गल है। कुछ ज्यादा प्लास्टिक बाल्टी बना लो, कुछ भी बना लो रहेगा तो पुद्‌गल का पुद्‌गल ही, बोलो, क्या हुआ। आप कह रहे हैं, मात्र पर्याय बदलती है, गुणों का नाश नहीं होता। आत्मा गुणवान है, मैं द्रव्य हूँ, प्रत्येक द्रव्य में अनंत गुण है एक-एक गुण की अनंत-अनंत पर्यायें है भूतकाल में पर्याये अनंत बीत चुकी है, वर्तमान में है, एक पर्याय है, भविष्य में अनंत पर्याय आ जाऐगी ज्ञानियों।

गुणों का नाश नहीं होगा, तो फिर क्या होगा। समुदय, व्यय, ध्रौव्य सम्य्क प्रकार उदय पाया जाएगा, व्यय पाया जाएगा और ध्रौव्य पाया जाएगा।

"उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य युक्तं सत्"

सत् द्रव्य लक्षणम्

द्रव्य लक्षण सत् है, उत्पाद, व्यय ध्रौव्य ये तीन चीजें जहाँ पाई जाए वह सत्य है।

जहाँ तत्त्व का ज्ञान होता है वहाँ मध्यस्थता रहती है, सुनों। एक राजा है, उसका एक बेटा और बेटी है, राजा का बेटा चाहता है कि मुझे सोने का मुकुट चाहिए। बेटी चाहती है मुझे सोने का हार मिल जाए। और राजा के पास क्या है, सोना है, सोने का पिण्ड है, अब बताओ सोने का पिण्ड लेकर बेटी जाती है और हार बनवा के ले आती है, बेटी हार पहन लेती है और बेटा रूदन मचाता है। क्यों उसके लिए हार मिल गया और मेरे लिए कुछ नहीं मिला मुकुट चाहिए था।

मुझे मुकुट नहीं मिला और बहिन के लिए हार मिल गया, अब बताओ, राजा क्या करेगा राजा में कुछ नहीं है। सोना-सोना ही है, चाहे मुकुट में रहता चाहे हार में रहें, लेकिन सोना तो हमारे घर में ही है, क्या सोना तो हमारे घर में ही है, ज्ञानी। मुकुट नहीं बन पाया तो बेटे को शोक है, हार बन गया। बेटी प्रसन्न है, लेकिन राजा मध्यस्थ है।

क्योंकि सत्य तो ये है कि हमारा सोना हमारे पास है, बोलो ज्ञानी, यही सत्य है ध्यान देना। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य युक्तं सत्। ये क्या है अंगुलि है, अभी यह सीधी अंगुली है, अब टेडी हो गई। व्यय, किसका हुआ, सीधी पर्याय का व्यय हो गया, उत्पाद किसका हो गया, टेडी पर्याय का उत्पाद हो गया, अंगुली जब सीधी थी तो भी अंगुली थी और टेडी हो गई तो भी अंगुली है। लेकिन टेडी अंगुली पर्याय का होगया उत्पाद और सीधी पर्याय का हो गया व्यय उदाहरण और सुनो, मनुष्य का मरण हुआ, मनुष्य पर्याय का व्यय हुआ और देव पर्याय में जन्म हुआ तो उत्पाद हुआ। आत्मा दोनों में एक है, मनुष्य पर्याय से आत्मा निकली है और देव पर्याय में पहुंच गई है। आत्मा ध्रौव्य है तो

जिसका मरण हुआ है, वह रो नहीं रहा, जिसका जन्म हुआ, वह हँस नहीं रहा। मंगल गान करने वाले कोई और रूदन मचाने वाले कोई और है क्यों ? एक मन में है कि व्यय हो गया, एक के मन में है कि उत्पाद हो गया।

लेकिन ध्रौव्य हँसेगा न रोएगा। वह मध्यस्थ बैठा है, बंधुओं ध्यान से सुनना जिसका मरण होता है वह रोता नहीं। जिसका जन्म होता वह हँसता नहीं। खुशियाँ कौन मना रहे है। तो ज्ञानी जीवो जहाँ राग बैठा था वह रो रहा है। एक जगह का राग रो रहा है, एक जगह का राग गान कर रहा है। जहाँ शुद्धत्व का ज्ञान बैठा वह न रो रहा है न हँस रहा है, वह तो मध्यस्थ बैठा है।

तत्त्व दृष्टि से देखो चेतन आत्मा चाहे मनुष्य पर्याय में रहे या देव पर्याय में रहे, इसका मुझे क्या फर्क पड़ता है आत्मा अजर है, अमर, अविनाशी है, अंतर इतना है कि मनुष्य पर्याय के बहुत सारे फायदे है वे फायदे चार है कि मनुष्य गति में, व्रत होता है, तप होता है, ध्यान होता है, और निर्वाण होता है, चार फायदों को उठालिया तो मनुष्य गति में आने का फायदा तुमने पाया। वरना स्वर्गवास मिलता है, हमारी तो भारतीय संस्कृति है हम हर व्यक्ति को स्वर्गवासी कहते हैं।

क्यों कहे कि तुम कहां जाओंगे।

"अस्सी"

चैतन्य आत्मा ! ये विश्वास बनाए रखना ये विश्वास तुम्हें सम्यक् दर्शन देगा। यही सम्यक्ज्ञान है। आत्मा की सिद्धि होने पर आत्मा के कल्याण की सिद्धि हो जाती है अगर भोजन बन जाता है, तो भोजन करने की इच्छा भी हो जाती है।

आत्मा को जानने के बाद आत्म के कल्याण की बात जागेगी।

* * * *

जीव स्वयं कर्ता और भोक्ता

परिणमानो नित्यं, ज्ञान विवर्तैरनादिसंततत्या।
परिणामानां स्वेषां, स भवति कर्ता च भोक्ता च॥10॥

अन्वयार्थ - (सः) वह पुरुष-जीव (नित्यं) सदा (अनादिसंतत्या) अनादि संतति से (ज्ञानविवर्तैः) ज्ञान के विवर्तोंसे परिणमन करता हुआ (स्वेषां) अपने (परिणामानां) परिणामों का (कर्ता) करने वाला (च) और (भोक्ता) भोगने वाला (च) भी (भवति) होता है।

प्रिय आत्मन् !

माँ जिनवाणी ! जगकल्याणी ! अरिहंत भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य आचरित, उपाध्याय उपासित, सर्वसाधु साधित, जीव तत्त्व प्रबोधिनी, अजीव तत्त्व विवेचनी, सर्वास्रव निरोधिनी, कर्म बंध विमोचनी, संवर पथ प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण कारिणी, हे जिनवाणी माँ-तेरी जय हो, सदा विजय हो। तेरे विशाल पद में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन् !

धर्म से जोड़ने वाली, अधर्म से बचाने वाली, अहिंसा से जोड़ने वाली, हिंसा से बचाने वाली, सत्य की उपासना, असत्य का त्याग, अचौर्य की आराधना, चोरी का विसर्जन, ब्रह्म की आराधना, अब्रह्म का त्याग, अपरिग्रह की आराधना, परिग्रह का त्याग, इन सब का पाठ सिखाने वाली माँ जिनवाणी जयवंत हो।

क्रोध को क्षमा में बदलने वाली, मान को विनय में बदलने वाली, माया को आर्जव में बदलने वाली, लोभ को संतोष में बदलने वाली, हे जिनवाणी माँ तेरी जय हो। जिसकी आराधना से पाप पुण्य में बदल जाता है, जिसकी आराधना से ताप तपस्या में बदल जाता है, जिसकी आराधना से राग विराग में बदल जाता है, जिसकी आराधना से मोह मोक्ष में बदल जाता है, जिसकी आराधना से मिथ्यात्व सम्यक्त्व में बदल जाता है, जिसकी आराधना से अज्ञान ज्ञान में बदल जाता है, जिसकी आराधना से कषाय चारित्र में बदल जाती है, ऐसी हे माँ जिनवाणी तेरी जय हो।

जैसे जल के संयोग से वस्त्र की मलिनता श्वेती में बदल जाती है, वैसे ही जिनवाणी के संयोग से आर्तध्यान धर्मध्यान में बदल जाता है, रौद्रध्यान धर्म-ध्यान में बदल जाता है, धर्म-ध्यान शुक्ल ध्यान में बदल जाता है।

प्रमाद-प्रमोद में बदल जाता है, विकथा-कथा का रूप ले लेती है, कर्म बंध कर्म निर्जरा का रूप ले लेता है, कर्म का आस्रव संवर में बदल जाता है। आज हम कहाँ विराजे हैं उस माँ के पास बैठे हैं जो माँ आस्रव को संवर में बदल लेती है, बंध को मोक्ष में बदल देती है, धन्य हैं।

ज्ञानी जीवो! जिसकी कृपा से दुर्भाग्य-सौभाग्य में बदल जाता है, जिसकी कृपा से बहिरात्मा अंतरात्मा में बदल जाता है, जिसकी कृपा से अंतरात्मा परमात्मा में बदल जाता है, जिसकी कृपा से गृहस्थ श्रावक बन जाता है, श्रावक श्रमण में बदल जाता है, श्रमण महाश्रमण में बदल जाता है, जिसकी कृपा से मनुष्य निर्ग्रंथ हो जाता है, जिसकी कृपा से निर्ग्रंथ अरिहंत हो जाता है, जिसकी कृपा से श्रावक साधु हो जाता है और साधु सिद्ध हो जाता है धन्य है, ऐसी हे जिनवाणी माँ।

जिसकी कृपा से चरण आचरण की ओर बढ़ जाते हैं, जिसकी कृपा से हाथ अभिषेक की ओर बढ़ जाते हैं, जिसकी कृपा से कान जिनवाणी को सुनने लगते हैं, जिसकी कृपा से माथा जिनेन्द्र के चरणों में झुककर धन्य हो जाता है, जिसकी कृपा से आंखे सच्चा देखना शुरु कर देती है। धन्य है जिनवाणी माँ।

हे माँ! आज मेरे चरण आपको पा करके आचरण का पाठ सीख रहे हैं। आज मेरे यह हाथ आपको पा करके सेवा, अभिषेक और दान का पाठ सीख रहे हैं। आज मेरी आंखें मोक्ष मार्ग को देखना सीख रही है। हे माँ, आज मेरा यह माथा वीतराग कथाओं से भरा हुआ है, पवित्र विचारों का केन्द्र बन गया है।

हे जिनवाणी माँ आज तू मेरे हृदय में विराजकर के विश्वमंगल का उदार भाव चहुं ओर कर रही है। हे जिनवाणी माँ तू हृदय में विराजती है भाव उज्ज्वल कर देती है। मस्तिष्क में विराजती है ज्ञान देती है और कंठ में विराजती है तो सरस्वती के स्वर प्रकट कर देती है। हे जिनवाणी तू सदा जयवंत हो। हे तीर्थंकर के मुख से निकली सरस्वती तेरे कुन्द–कुन्द जैसे पुत्र जिसके अग्रज हों उस अनुज के कंठ में वास करने के लिये तू सादर आमंत्रित है। हे जिनवाणी माँ तेरी जय हो।

प्रिय आत्मन्!

"परिणममानो नित्यं, ज्ञानविवर्तैरनादिसन्तत्या।

परिणामानां स्वेषां स भवति कर्त्ता च भोक्ता च॥10॥

ज्ञानियो! अनादि काल की परिपाटी है, अनादि के संस्कार हैं, अनादि काल की प्रवृत्तियाँ हैं, अनादि काल की व्यवस्थायें हैं, अनादि काल का कर्म बंध है। यह अनादि की परम्परा मेरे साथ घुली हुयी है। क्या घुली हुयी है? ज्ञान विकृत हो रहा है। क्यों हो रहा है? कपड़े की सफेदी को किसने दबा दिया? मैल ने दबा दिया। ज्ञान की उज्ज्वलता को किसने दबा दिया? अज्ञान और मोह ने। मोह सहित अज्ञान दबाता है। अकेली धूली कपड़े को गंदा नहीं करती है। धूली के साथ यदि चिपकने वाली वस्तु और हो तो और जल्दी गंदा हो जायेगा, तो परिणमन करने वाला मेरा आत्मा है।

जो चैतन्य आत्मा, जिसके विषय में हम कथन कर चुके हैं वह चैतन्य आत्मा क्या करता है अनादि परम्परा से चले आये जो संस्कार है, कर्म बंध के परिणाम हैं, उन परिणामों से परिणमन होता है, परिणमन कर्ता है। ध्यान देना–कर्म का उदय किसे होता है? जीव को होता है तो कर्म किसकी सत्ता में था? जीव की। कर्म का उदय मेरा है तो सत्ता किसके पास थी? जिसने बंध किया था। बंध किसने किया था? जिसने आस्रव किया था। आस्रव किसने किया था? जिसने परिणाम किये थे और परिणाम किसने किये थे, परिणाम मैंने किये थे।

मैंने परिणाम किये आस्रव मुझे हुआ, बंध मुझे हुआ, सत्ता मेरे पास रही, उदय मेरे को आया ज्ञानी जीवो दूसरे का क्या है।

स भवति कर्ताः च भोक्त च।

वह कर्ता होता है निज परिणामों का भीतर में जो हो रहा, उसका करने वाला अंदर है। ध्यान

देना बाहर में दिखाई देता है, होता नहीं है। होता भीतर में है, इस तत्त्व को समझो सदा के लिये यदि घर-घर में शांति चाहिए, तो इस व्यवस्था को समझ लो कि जो होता है वह दिखता नहीं है, जो दिखता है, वह होता नहीं है।

जहाँ होता है, वहाँ दिखता नहीं है और जहाँ दिखता है, वहाँ होता नहीं है। जैसे आपके ट्रेक्टर की एजेंसी की दुकान है, कहाँ है? यहाँ से दो किलोमीटर दूर है। दिख रही है दो किलोमीटर दूर है लेकिन उसके कागज कहाँ है। यदि आपके कागज मकान में रखे हैं सुरक्षित है वस्तुत: एक पेटी में उसके पूरे कागज हैं वह दिखाई नहीं दे रहे, जिनके बल पर आपकी दुकान है। मेरी सास बहुत अच्छी है और सास कहती है मेरी बहू अच्छी है लेकिन दोनों के बीच में बैठा मैं कह रहा हूँ कि बहू तेरा कर्म अच्छा था और सास तेरा कर्म अच्छा था, इसलिये तुम दोनों अच्छी हो।

प्रिय आत्मन् !

पिता तेरा पुण्य इतना था उस पुण्य के अनुसार ही तेरे घर में पुत्र का जन्म हुआ है और पुत्र तेरा पुण्य जितना था उस पुण्य के अनुसार वे तुझे मेरे जैसे पिता मिले। बहू तूने जो बाल्यकाल से लेकर के बीस साल तक और पूर्व भव में जो पुण्य संचित किया था उस पुण्य के बल पर तुझे यह नया घर मिला है ऐसा घर और ऐसा वर जो मिला है तुझे तेरे अपने पुण्य के अनुसार मिला है तू उधर पुण्य कमा रही थी, मंदिर में बैठ के णमोकार पड़ती थी, तुझे कुछ भी पता नहीं था लेकिन बीस साल बाद होने वाले ससुर तेरे लिये पैसा कमा रहे थे।

बहू जब बालिका थी तब वह बालिका मंदिर में बैठ कर वीतराग भाव से जिनेन्द्र भगवान की पूजा कर रही है। रे बालिके! तुझे भले ही पता न हो लेकिन उससे जो सातिशय पुण्य संचित किया है तूने उस सातिशय पुण्य का फल है कि जब वह पुण्य उदित हुआ ऐसे स्थान पर ले आया कि जहाँ इतनी महानता मिली जैन समाज, और दिगम्बर साधु का समागम मिल रहा है।

उत्तम वर की प्राप्ति और उत्तम घर की प्राप्ति बिना पुण्य के होती नहीं है। दिख रहा है कि मेरा वर तथा मेरा घर अच्छा है। उसके पूर्व में मैं तो यही देखता हूँ तेरा पूर्व कर्म बहुत अच्छा है और वर्तमान का पुण्य अच्छा है सो सब कुछ अच्छा है। जो होता है वह दिखता नहीं है जो दिखता है वह होता नहीं है।

ज्ञानियों! जो जहाँ दिखता है, वह वहाँ नहीं होता। होता भीतर में है, दिखता बाहर में है। ज्ञानी जीवो! वर्षा कहीं होती है और बाढ़ कहीं आती है। सत्य कर रहा हूँ अनुभव करके देख लेना

यहाँ पानी बरसेगा बाढ़ यहाँ नहीं आयेगी आगे कुछ किलोमीटर दूर आयेगी और यहाँ यदि बाढ़ आयी है तो कहीं ऊपरी प्रदेशों पर पानी बरसा है।

जब ऊपरी प्रदेशों पर पानी बरसता है तो निचले वाले प्रदेशों पर बाढ़ आती है उसी तरह पूर्व में किये गये कर्म आज उदय में आते हैं और आज किये गये कर्म बाढ़ की तरह बाद में फल देते हैं।

जैसे-बहुत जगह बरसा पानी एकत्रित होकर एक जगह बाढ़ का रूप ले लेता है उसी तरह से बहुत समय से किये गये कर्म भी एक साथ उदय में आ जाते हैं। ध्यान देना- कभी-कभी छोटी नाली से पानी आता है और डेम में पहुँचते-पहुँचते बड़े रूप ले लेता है उसी तरह से कर्म-संचित-संचित करते-करते एकत्रित हो जाता है। किसी दूसरे का दिया गया नहीं है स्वयं का किया हुआ है।

यह सैद्धांतिक व्यवस्था आचार्य अमृतचन्द स्वीकार कर रहे हैं ग्रंथ के प्रारम्भ में अनादि काल से जीव यही करता आ रहा है। तीन दशायें होती है-जीव की बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा। सुनो ज्ञानियो! खान में पड़ा हुआ सोना एक है दूसरा सोना वह है जिसे स्वर्णकार भट्टी पर तपा रहा है सोलह ताप दिये जा चुके हैं उसी तरह बहिरात्मा खान में पड़ा हुआ सोना है। अंतरात्मा तपता सोना है और परमात्मा तपकर शुद्ध हुआ सोना है। हमारी स्थिति दो प्रकार की हो सकती है कोई खान में पड़े हुये सोने भी हो सकते हैं कोई तपते हुये सोने भी हो सकते हैं।

तुम सम्यक् दृष्टि हो, स्वीकार करों कि अब तो तपना ही तपना है। क्यों ? कर्म जलाना शुरु होना है। अनादि काल से जीव कर्मों से संबंधित है।

पयडि सील सहावो, जीवं गाढं अणाइ संबंधो।

कणयोवले मलं वा, ताणत्थित्तं सयं सिद्धं।।

आचार्य देव श्री नेमीचन्द स्वामी इस बात को कहते हैं प्रकृति शील स्वभाव है यह पर्यायवाची है जीव और कर्म का अनादि से संबंध है। जैसे-खान में पड़ा जो सोना है उसमें कालिमा तो लगी थी जब से खान में है तभी से कालिमा है उसी तरह जब से जीव संसार में है, तभी से यह कर्म बंध से सहित है।

जैसे खान में पड़ा हुआ सोना में कालिमा अनादि से लगी है लेकिन शुद्ध किये जाने पर शुद्ध हो जाता है और फिर अशुद्ध नहीं होता उसी तरह से यह आत्मा शुद्ध का पुरुषार्थ करने पर शुद्ध हो

जाता है सोने की तरह। ध्यान देना– द्रव्य छ: होते हैं जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल। इन छ: में से धर्म द्रव्य सदा शुद्ध है, अधर्म द्रव्य सदा शुद्ध है, आकाश द्रव्य शुद्ध है और काल द्रव्य सदा शुद्ध है। यह चार द्रव्य तो सदा शुद्ध ही हैं इनको अशुद्ध करने वाला कोई कारण नहीं है।

दो ही द्रव्य हैं जो शुद्ध भी होते हैं और अशुद्ध भी होते हैं उन दो द्रव्यों में से पुद्गल द्रव्य ऐसा है कि शुद्ध भी करलो तो फिर अशुद्ध हो जाता है और अशुद्ध के बाद फिर शुद्ध हो जाता है परमाणु रूप होना शुद्धता है और स्कंध रूप होना अशुद्धता है। स्कंध से भेद करने पर परमाणु हो जाता है और संधात करने पर पुन: स्कंध हो जाता है।

प्रिय आत्मन् !

जो एक बार शुद्ध होने के बाद पुन: अशुद्ध हो जाये उसकी शुद्धता का क्या प्रमाण है इसलिये पुद्गल की शुद्धि की बात नहीं करते हैं, हम तो उसकी शुद्धि की चर्चा करेंगे जो एक बार शुद्ध होने के बाद फिर कभी त्रिकाल में अशुद्ध न हो और अनंत काल में अशुद्ध न हो, ऐसे जीव तत्त्व की चर्चा यहाँ चल रही है। ध्यान देना– एक बार शुद्ध हो जायेगा पुन: अशुद्ध होने का कोई कारण नहीं है शुद्ध सिद्ध जीव को।

ज्ञानी! एक बार दूध घी बन गया है तो घी को दूध बनाना भी संभव नहीं है। एक बार आत्मा कर्मों को नाश करके परमात्मा बन गया है तो पुन: नीचे आने का कोई कारण ही नहीं है।

पुनर्जन्म न जिनका होता, न अवतार कभी।

उन सिद्धों को नमस्कार हो, शत् शत् बार अभी।।

पुनर्जन्म होने वाला नहीं है क्यों? जन्म का कारण कर्म था और कर्म को ही नष्ट कर दिया है तो बिना कारण के कार्य होता नहीं।

कारण कार्ये विधानं।

जब कारण ही नहीं है तो कार्य क्या होगा परमात्मा अनंत शक्तिशाली है लेकिन ध्यान रख लेना–परमात्मा में इतनी शक्ति नहीं है कि वह पुन: संसार आकर के माँ के गर्भ में जन्म ले सके जन्म लेने का कोई कारण नहीं है और बिना कारण के जन्म होता नहीं है। जन्म लेना, मरण करना यह कोई अच्छी बात नहीं है। जन्म **जैसा दु:ख और मरण जैसा भय संसार में होता नहीं है।** इसलिये

परमात्मा होने के बाद जन्म के दु:ख भोगेगा जो सिद्धालय में विराजमान हो वह माँ के गर्भ में रहने आयेगा उस गंदगी में रहेगा इतनी गंदगी पसंद करेगा क्या? नहीं।

प्रिय आत्मन् !

न परमात्मा का पुनः जन्म होता है न परमात्मा का अवतार होता है फिर क्या होता है? सुनो ज्ञानी! सुनो।

आचाराणाम् विद्यातेन कुदृष्टिनां च सम्पदाम्।
धर्मं ग्लानिम् परिप्राप्त मुच्छ्रयन्ते जिनोत्तमाः।।

जब-जब इस धराधाम पर पाप ज्यादा होने लगता है तब-तब इस धरती को निर्मल और पवित्र करने के लिये धर्म के प्रकाश के लिये, अधर्म के नाश के लिये, ऐसे कोई महापुरुष जन्म लेते हैं जो महापुरुष इस सृष्टि को धर्म, संस्कृति और सभ्यता के नये अध्याय सिखाते हुये भी स्वयं कर्म नाश करके परमात्मा बन जाते हैं।

जन्म परमात्मा का नहीं होता है जन्म इंसान का होता है इंसान ही एक दिन भगवान बनता है भगवान को उतरने की आवश्यकता क्या है? जो कार्य एक सामान्य सा मनुष्य कर सकता हो उसे परमात्मा को करने की आवश्यकता क्या है? उस कार्य को करने की भगवान को आवश्यकता क्या है?

प्रिय आत्मन् !

एक जगह अनुभव परीक्षा में परिक्षण लिया और परिक्षण के लिये अभ्यर्थी को अंदर बुलाया और अंदर बुलाने के साथ ही टेबल पर रखे हुये कागज पंखा चलते ही उड़ गये और जो अभ्यर्थी आया था वह उठाने लगा तो वहाँ बैठे हुये सर ने कहा जाइये हो गयी परीक्षा क्यों? यह जो कार्य है यह कार्य आपका नहीं था, यह कार्य नौकर का था, आप इतनी उच्च सर्विस के योग्य नहीं है।

प्रिय आत्मन्!

हर किसी व्यक्ति की पोस्ट के अनुसार ही कार्य होते हैं योग्यता के माप दण्ड परमात्मा की योग्यता का मापदण्ड तो कुछ और ही है, इंसान की योग्यता कुछ और है। आत्मा अपने ज्ञान में मोह को मिला लेता है तो कर्म बंध कर लेता है। ध्यान देना- ज्ञान में मिला क्या है? मोह मिला है कुछ

व्यक्ति ऐसे होते हैं जो पानी छानकर पीते हैं किन्तु कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जैसा पानी मिला वैसा पी लेते हैं। उसी तरह कुछ जीव तो मोह सहित ज्ञान का अनुभव करते हैं और कुछ जीव मोह रहित ज्ञान का अनुभव करते हैं।

ज्ञानी! पानी को छानना बताया है सो हम पानी को तो छानते हैं यह श्रावक की व्यवस्था है कि पानी को छानना चाहिये लेकिन आचार्य कुंद-कुंद की दृष्टि है कि तुमने पानी से कीचड़ अलग किया है लेकिन जिसे सदा पी रहे हो, वह जो ज्ञान है उस ज्ञान में मोह का कीचड़ मिला हुआ है। तुम उसको तो छान ही नहीं रहे हो।

हे माता बहिनो! पानी को छानने के साथ-साथ दृष्टि लाओ कि आज मैंने अपने ज्ञान को छाना है कि नहीं? ज्ञान को कौन से छलने में छाना है, कौनसा छलना हाथ लिया था जिस छन्ने से ज्ञान को छाना है और ज्ञान को नहीं छाना है तो फिर वह ज्ञान किसी दूसरे को देने के लायक कैसे बनेगा और स्वयं पीने के लायक कैसे बनेगा।

यदि एक गिलास भी पानी आप किसी को देते हैं तो देख लेते हैं कि इसमें कचड़ा तो नहीं है तुम्हें जो ज्ञान हम दे रहे हैं ध्यान देना-पानी कुआँ से आया कुआँ में कचड़ा भी था तब भी तुमने छन्ने से छान लिया और छानकर के ले आये उसका कचड़ा वहीं पर छोड़ दिया अब घर में आने के बाद भी लोटा में पानी भरते हो तो पहले लोटा को देख लेते हो फिर गिलास में पानी भरते हो तो गिलास को देख लेते हो क्यों? जिसको तुम पानी पिला रहे हो, उसे गिलास की प्रमाणता नहीं पानी और लोटा की प्रमाणता नहीं है। उसने आपको प्रमाणित माना है कि आप मुझे शुद्ध पानी पिलायेंगे।

यदि गिलास में कचड़ा है तो गिलास का दोष नहीं है, आपका दोष है। लोटा में कचड़ा निकलता है तो लोटा का दोष नहीं माना जाता है आपका दोष माना जाता है। उसी तरह से ज्ञान में क्या मिला? राग, द्वेष, मोह यदि राग, द्वेष, मोह को नहीं छाना तो फिर वह ज्ञान क्या किसी को पिलाने के लायक है? नहीं।

प्रिय आत्मन् !

हमारे घर परिवार में यही स्थिति है कि मोह सहित ज्ञान को पी रहे हैं, राग सहित ज्ञान को पी रहे हैं, द्वेष सहित ज्ञान को पी रहे हैं और जब डॉक्टर कहते हैं कि गंदा पानी पीओगे तो बीमार स्वयं बनोगे। जैन दर्शन कहेगा जीवों की विराधना से कर्म बंध होगा। ज्योतिष कहेगा तुम्हारे अशुभ ग्रह

आ जायेंगे। इतिहास कहेगा कि महापुरुषों का आचरण नहीं करने से तुम्हारे जीवन में बुरे दिन आ जायेंगे।

प्रिय आत्मन् !

आचार्य कहते हैं ज्ञान में विकार आ रहा है। तो ज्ञान में विकार आया कहाँ से? भैया यह बताओ तुमने कभी महावर लगाया? लगाया। कटोरी में जल है कटोरी का जल श्वेत है, निर्मल है, उज्ज्वल है लेकिन उसमें एक छोटी सी रंग की टिकिया डाल दी, अब क्या हो जायेगा? जैसे निर्मल जल में महावर की टिकिया डाल देने से रंग की गोली डाल देने से जल में रंग आ गया उसी तरह ज्ञान तो निर्मल है लेकिन निर्मल ज्ञान में राग-द्वेष-मोह की गोली डाल दी, अब क्या होगा?

एक लोटा जल से यदि पाँव धुलाते तो आप हमको याद नहीं रखते, भूल जाते हमें याद कैसे रखोगे? अब मैंने नयी सोच पैदा की है कि तुम मुझे याद रख सको इसलिये हमने आधी कटोरी जल लिया है उसमें दो रंग की गोली डाल दी कि जब तक यह रंग नहीं छूटेगा तब तक तुम हमें याद तो करोगे।

ज्ञानी! महावर लगाते-लगाते बहुत काल बीत गया ध्यान देना-एक बार महाव्रत लगा लेते तो अनंत काल नहीं बीतता ज्ञानी जीवो! चरणों में महावर लगाओगे तो संसार में भटकोगे और चरणों में महाव्रत लगाओगे तो संसार से पार हो जाओगे। अनंत बार महावर लगाने की अपेक्षा एक बार महाव्रत लगाओगे तो संसार में नहीं भटकोगे।

पाँव में लगाया गया महावर तो कुछ दिनों के बाद छूट जायेगा लेकिन राग भाव नहीं छूट पायेगा। यदि एक बार महाव्रत लगा लोगे तो राग भी छूट जायेगाऔर महाव्रत मोक्ष रूप में परिणमित हो जायेगा।

प्रिय आत्मन् !

ध्यान देना इन माताओं में इतनी एकाग्रता है लेकिन इनका मन उचट जाता है। कहाँ उचट जाता है। एक बार इनको मेंहदी लगाने के लिये बिठा दिया जाये और कहा जाये हाथ सीधा करना यह रेखा ऐसी न हो जाये हाथ की रेखा टेडी हो गयी तो मेंहदी डिस्टर्ब हो जायेगी, ऐसे ही करे रहेंगी मुनि महाराज सामायिक में भले ही टेड़े हो जाये पक्की बात है, हम कायोत्सर्ग जितने अच्छे से न कर पायें, हो सकता है बड़े-बड़े तपस्वी मुनिराज दो घंटे ऐसे हाथ न कर पाये लेकिन महिलाये इतनी

अच्छी साधना करती है कब? जब मेहन्दी लगाती हैं तब दो घंटे तक मेहन्दी लग रही हैं, इतनी एकाग्रता आ जाती है कि हाथ जरा सा भी नहीं हिलता है और दो-तीन घंटे तक आसन ऐसे लगा लिया कि महामुनिराज सामायिक में आसन लगाये या न लगा पायें। यह क्या है?

जिसकी जिसमें रुचि होती है उस कार्य को करने में वह सक्षम हैं, उनकी मेहन्दी में तो रुची है कि हाथ में मेहन्दी रच जायेगी और लगाने के बाद भी तीन घंटे तक जब तक सूख न जाये तब तक हाथ सीधा रखती हैं।

ज्ञानी जीवो! यदि जल्दी धुल गयी तो रच नहीं पायेगी। जैसे मेहन्दी को बहुत देर तक लगाये रखते हो उसी तरह चित्त को स्थिर करके एक बार तत्त्व की बात को सुन लो, उतने समय तक स्थिर रख लो तो ज्ञानी! मेहन्दी का रंग तो कभी महिने भर में छूट ही जायेगा लेकिन प्रवचन यदि एक बार चित्त से सुनोगे तो भव-भव में नहीं छूटेगा।

तत्त्व ज्ञान का रंग कैसे चढ़ता है? जैसे मेहन्दी का रंग स्थिरता के बाद चढ़ता है। ऐसे तत्त्वज्ञान का रंग भी पूरी स्थिरता के बाद ही चढ़ता है। रंग चढ़े कैसे? प्रवचन मेरे सुन रहा देख कैमरे वाले की तरफ रहा। ज्ञानी जीव! मेहन्दी का रंग चढ़ाने के लिये हाथों की स्थिरता चाहिये, वैसे ही प्रवचन का रंग चढ़ाने को मन की स्थिरता चाहिये। मन स्थिर होना चाहिये।

ज्ञानी! यदि हाथ में तू पहले से तेल लगा के जायेगा तो मेहन्दी का रंग नहीं चढ़ेगा उसी तरह राग, द्वेष मन में भरके आया तो प्रवचन का रंग नहीं चढ़ेगा। कभी-कभी तो प्रवचन बहुत अच्छा होता है। लेकिन आनंद नहीं आया अरे! बात क्या है? सुनो बात ऐसी है कि एक गुबरीला और भौंरा दोनों में मित्रता हो गई, तो एक मित्र ने कहा भाई तुम मेरे साथ चलो आज आमंत्रण में तो भौंरे के साथ गुबरीला जाने को तैयार हो गया लेकिन गुबरीले के मन में शंका थी कि वहाँ कुछ मिला या ना मिला तो उसने एक डली नाश्ते की अपने साथ रखली और चला तो भौंरा फूल पर बैठकर के आनंद से रस पान कर रहा है लेकिन गुबरीले को स्वाद किसका आ रहा? गोबर का। क्यों? क्योंकि भीतर में गोबर की डली रखी है और भौंरे के मुख में कुछ नहीं है इसी तरह जिसके मन में राग द्वेष नहीं है, जिसके मन में चिंता, आकुलता, व्याकुलता नहीं है वह प्रवचन सुनने आयेगा तो भौंरे की तरह मकरंद जैसा स्वाद लेगा। और जिसके मन में विकल्प है, चिंता है, तनाव है, राग, द्वेष की डली रखे हुये है तो धर्म प्रवचन का आनंद नहीं आयेगा लेकिन प्रवचन सबको दिया एक ही जा रहा है।

फूल का पौधा एक ही है किन्तु स्वाद भिन्न-भिन्न आ रहा है जब तक वह गुबरीला गोबर की डली मुख से नहीं निकालेगा तब तक स्वाद मिलने वाला नहीं है। इसी तरह हमारे मन में मोह रखा है, अज्ञान रखा है तो ज्ञान के मकरंद का स्वाद नहीं आ रहा। हमें ज्ञान का मकरंद जो मिल रहा है लेकिन वह ज्ञान का मकरंद मोह के कीचड़ से मिलते उसका पूरा स्वाद बिगाड़ देता है। यदि अकेले ज्ञान का स्वाद लेना है तो मोह के गोबर की डली को अलग कर दो, राग द्वेष विकल्प की डली को हटा दो और गुबरीला ने जब गोबर की डली को अलग किया और फिर उसी फूल के रस को चूसा तो कैसा लगा। अहा! जीवन में ऐसा आनंद तो पहली बार आया अरे! भौंरा कहता है तुझे पहली बार आनन्द आया, मैं तो पूरे जीवन काल से इसी का रसपान कर रहा हूँ।

ज्ञानी जीवों! ध्यान देना आचार्य कहते हैं ज्ञान में विकार आ जाता है जैसे- मकरंद में गोबर की डली के संयोग से विकार आ रहा था उसी तरह से ज्ञान में विकार आ जाता है। कैसे आ गया? भीतर का मोह उदय में आ गया, राग उदय में आ गया। ओहो! पर्वत की माँ को राग आ गया राग के कारण राजा वसु से कह दिया-वसु! चाहिए बोलो गुरु दक्षिणा दोगे, मेरा पुत्र जो कहे वह सही यह कह देना।

ज्ञानी! मात्र एक बेटे के राग ने विश्व का अहित कर दिया। जब पर्वत यह कह रहा था कि अज का अर्थ बकरा होता है सुनो माँ यदि आज मेरा वचन मिथ्या हो गया तो तेरा लाल तुझे देखने को नहीं मिलेगा। उसी समय मैं प्राणांत कर लूंगा ऐसी कषायें जिस पर्वत के अंदर चल रही थीं लेकिन माँ ने बेटे का अकल्याण कर दिया, आज लाखों जीव (बकरे) काटे जाते हैं किस कारण, मात्र एक के कारण।

ज्ञानी जीवो! इस तरह जब ज्ञान में मोह मिल जाता है, राग मिल जाता है, द्वेष मिल जाता है तब तत्त्व कल्याण की बात नहीं सूझती है, तत्त्व कल्याण की बात दूर हो जाती है। अनादि काल से यही चक्र चला आ रहा है।

जैसे - पानी को न छाना जाये तो वह पानी पीने के योग्य नहीं है। उसी तरह ज्ञान को न छाना जाये तो ज्ञान से मुक्ति नहीं मिलती। ज्ञान तो सबके पास है लेकिन छना हुआ है कि अनछना यह ध्यान देना भैया। या तो अपना लौटा डोरी छन्ना साथ में लेके जाना या फिर जहाँ छान के पानी पिलाया जाये उसके पास जाना। जो छान के पानी न पिला पाये, उसके पास पानी पीने नहीं जाना। यह परिणाम स्वयं के हैं, दूसरे के नहीं हम इसको स्वीकार करें, मुझे जो मिला है अपने कर्मों से

मिला। जो कुछ भी है निजी है मुझे किसी ने कुछ नहीं दिया। मैंने किसी को कुछ नहीं दिया। मैंने जो कुछ किया है, वही मैंने पाया है। इसमें किसी का किंचित मात्र भी नहीं है।

राम के कर्मों का फल राम पाते हैं, रावण के कर्मों का फल रावण पाता है, कृष्ण के कर्मों का फल कृष्ण को मिलता है, कंस के कर्मों का फल कंस को मिलता है।

प्रिय आत्मन्!

जो स्वयं कर्ता है, वही भोक्ता होता है। ऐसा नहीं है कि करने वाला दूसरा हो, भोगने वाला दूसरा हो। जो करेगा, सो भरेगा। करने वाला ही भोक्ता है। मेरे कर्मों का फल किसी दूसरे को नहीं मिलेगा और दूसरे के कर्मों का फल मुझे नहीं मिलेगा। जो कर्मों को करता है, वहीं कर्म फलों को भोक्ता है।

✻ ✻ ✻ ✻

पुरुषार्थसिद्धि का स्वरूप

सर्वविवर्त्तोत्तीर्ण यदा स चैतन्यमचलमाप्नोति।
भवति तदा कृतकृत्यः सम्यकपुरुषार्थसिद्धिमापन्नः॥ 11॥

अन्वयार्थ - (यदा) जिस समय (सर्वाविवर्त्तोत्तीर्णं) समस्त वैभाविक भावों से उत्तीर्ण वा रहित होकर (सः) वह पुरुष (अचलम्) निष्कंप (चैतन्यम्) चैतन्यस्वरूपको (आप्नोति) प्राप्त होता है, (तदा) उस समय (सम्यक्पुरुषार्थसिद्धिं) समीचीन पुरुषार्थसिद्धि पुरुष के प्रयोजन की सिद्धिको (आपन्नः "सन्") पाता हुआ (कृत्यकृत्यः) कृतकृत्य (भवति) हो जाता है।

प्रिय आत्मन् !

माँ जिनवाणी जगकल्याणी, अरिहंत भाषित, सिद्ध-सिद्धि, आचार्य आचरित, उपाध्याय उपासित, सर्वसाधु साधित, जीव तत्त्व प्रबोधिनी, अजीव तत्त्व विवेचनी, सर्वास्रव निरोधनी, कर्म बंध विमोचनी, संवर पद प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष महल धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्व कल्याण कारिणी, हे माँ जिनवाणी तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल पद में श्रुत सूर्य का उदय हो।

माँ जिनवाणी की महिमा कौन नहीं जानता ? पृथ्वी के कण-कण में, सृष्टि के क्षण-क्षण में चिड़ियों की चहक में, कोयल की कुहुक में, माँ जिनवाणी का गान समाया हुआ है। टिम-टिम टिमकते हुये तारे, रिम-झिम बरसता हुआ पानी, उगता हुआ सूरज, चन्द्रमा की किरणें एवं सूर्य के प्रकाश में, वृक्ष के पत्तों में, सरस्वती के सूत्रों में, पक्षियों के कलरव में, माँ जिनवाणी का संदेश दे रही, इसीलिये तो हमारे ऋषियों ने प्रकृति को उपदेश का माध्यम चुना है।

हमारे ऋषि मुनि वन खण्डों में तपस्या करते हुये जो उपदेश देते रहे उस संदेश को समझ लिया है वे ऋषि भले ही शिवधाम चले गये लेकिन ऋषियों के संदेश प्रकृति ने स्वयं समेट लिये इसलिये आज भी उनके संदेश इस धरा धाम पर हैं।

प्रिय आत्मन् !

प्रकृति ही तो संस्कृति को जीवित रखती है ऐसी जिनवाणी माँ को हम प्रणाम करते हैं जिन्हें प्रकृति का कण-कण गाता है और जिन्हें प्रकृति का क्षण-क्षण गाता है जिसकी उपासना से आत्मा भगवान बन जाता है।

प्रिय आत्मन् !

अमृतचन्द्र आचार्य के मुखारविंद सें नि:सृत देशना आज यह संदेश दे रही है, उत्तीर्णता क्या है? सफलता क्या है? अनुत्तीर्णता क्या है? असफलता क्या है? अभी तक उत्तीर्ण की परिभाषा हम किसी विद्यालय में नहीं पड़ सके जैनागम, स्कूल विद्यार्थियों में जो समस्या पैदा हो रही है वह यह है जब परीक्षा फल आता है तब अनेक विद्यार्थी तनाव में आ जाते हैं और यहाँ तक कि कई आत्महत्या जैसे षड़यंत्र रच लेते हैं।

प्रिय आत्मन् !

उन विद्यार्थियों के सामने आज भगवान महावीर की देशना, अमृतचन्द्र की देशना, अशोक नगर में चल रहे धर्म तीर्थ की देशना एक संदेश लेकर आ रही है। हमने भले ही पहली कक्षा से लेकर के आज तक पढ़ा हो लेकिन विद्यालय में उत्तीर्णता की परिभाषा नहीं सिखाई गयी है व्यक्ति आठ-आठ घंटे पढ़ने के बाद जो टीचर पढ़ाने लगे हैं।

माताओ! यह विभवसागर आप से कह रहा है, निर्गंथ योगी कह रहा है कि तुम विद्यालय में बालक को भेजने से पहले उसे उत्तीर्णता की परिभाषा पढ़ा देना क्योंकि विद्यालय का कोई भी शिक्षक, कोई भी टीचर उत्तीर्ण होने की परिभाषा नहीं पढ़ाता है उत्तीर्णता की परिभाषा नहीं जानता है।

ज्ञानियों! उत्तीर्ण शब्द का अर्थ होता है- तैर कर पार हो जाना, इस घाट से उस घाट पर पहुंच जाना। उत्तीर्णता भाव में डूबना नहीं पार हो जाना। तैर कर पार हो जाने का नाम है उत्तीर्ण। हे प्रभु! आप उत्तीर्ण हैं कि अनुत्तीर्ण हैं और जो तैर के पार हो जाये वह उत्तीर्ण कहलाता है।

ज्ञानी जीव! संसार में आये तुम्हें कितना तैरना है, तुम्हें किस-किस में तैरना है, जहाँ-जहाँ डूबे हो वहाँ-वहाँ तैरना है, जहाँ-जहाँ डूबने की संभावना है, वहाँ-वहाँ तैरना है, जिस समुद्र में आप पहले से हैं, उस समुद्र से तैरने की बात करो।

ज्ञानी जीवों! आज आचार्य अमृतचन्द्र आंखे खोल देंगे। यहाँ माताओं की आँखे खुलेगी यहाँ जनक-जननी की आँखे खुल जायेंगी वस्तुत: मैंने जीवन के काल में इतनी परीक्षायें दी हैं लेकिन वे सब परीक्षायें मेरी उत्तीर्णता की मापक नहीं हैं। परीक्षाओं से मेरी उत्तीर्णता का कोई संबंध नहीं हैं।

भगवान महावीर के केवलज्ञान में जो उत्तीर्ण नहीं है, सर्वज्ञ देव जिसे उत्तीर्ण न मानते हों अमृतचन्द्र आचार्य जिसे उत्तीर्ण न मानते हों ज्ञानीयों! चाहे आपका विद्यालय हो, चाहे विश्वविद्यालय हो, कोई भी उत्तीर्ण कहे मैं उसे उत्तीर्ण मानने तैयार नहीं हूँ। क्योंकि महावीर की देशना किसको उत्तीर्ण मान रही है, किसको सफल मान रही है, किसको पास मान रही है, किसको फेल मान रही है। ज्ञानियों, ध्यान देना हिन्दी, अंग्रेजी, गणित यह लौकिक अध्ययन इन लौकिक परीक्षाओं में उत्तीर्ण होना जीव की उत्तीर्णता नहीं है। इनमें सफल होना जीवन की सफलता नहीं है और इनमें असफल होना जीवन की असफलता नहीं है लौकिक परीक्षायें तो इस जीव ने अनंतो बार दी हैं असंख्यात बार दी हैं और अपने-अपने काल खण्ड में जो विषय आये, उनमें उत्तीर्ण हुआ है लेकिन हे ज्ञानी जीव! आज तक तेरी चेतना के भीतर जो समुद्र लहरा रहा है उस समुद्र में जो राग-द्वेष की कलोलें पैदा हो रही हैं, जिस समुद्र में विषय रूपी मगरमच्छ हैं जिस समुद्र में कषायों का शैलाब है तू ऐसे समुद्र को पार पाया कि नहीं पाया।

ज्ञानी! विभाव परिणाम फेल कर देते हैं और स्वभाव परिणाम पास कर देते हैं विभाव परिणाम डुबो देते हैं और स्वभाव परिणाम तिरा देते हैं। ज्ञानियो! तीर्थंकर उत्तीर्ण हैं अरहंत देव उत्तीर्ण है, भवसागर से तैरने वाला उत्तीर्ण है और भवसागर में डूबने वाला अनुत्तीर्ण है।

कल आचार्य श्री विशुद्ध सागर जी का नागपुर से प्रति नमोस्तु आया। उन्होंने एक संदेश भेजा, विभवसागर जी अशोकनगर में आध्यात्मिक देशना देना, संख्या की चिंता मत करना। भैया तुम चिंता मत करना, संख्या कितनी है, यह मैं जो परिभाषा दे रहा हूँ, यह परिभाषा विश्व के किसी कोने में पहुंचेगी आज के युवाओं के हाथ में पहुंच जायेगी, यह परिभाषा हर जगह प्रचारित कर देना कि उत्तीर्ण वह है जो कषायों के समुद्र में न डूबे, उत्तीर्ण वह है जो विषयों के समुद्र में न डूबे।

प्रिय आत्मन् !

जो राग–द्वेष की भंवर में न डूब पाये वह उत्तीर्ण है। ध्यान देना जब एक व्यक्ति नदी में पांव धोता है तो कितनी तंरगे आती हैं, कितनी लहरे आती हैं, कितनी भंवरे उठती हैं और भवरों में यदि डूब गया तो डूब गया। ज्ञानी जीवो! तैरने वाले की विशेषता होती है कि वह भंवरों से बचा रहे और भंवरों के बीच में पहुंच जाता है तो नहीं बचता है।

ज्ञानी! नदी के बीच में उठने वाली एक भंवर के बीच में वह पहुंच जाता है तो वह डूब जाता है, फिर भी तूने कितनी बड़ी गलती की कि सात भंवर के बीच में तू डूब गया। एक भंवर के बीच में पहुंचने वाला डूब जाता है, फिर सात–सात भंवरों के बीच में डूबे हुये कैसे तैर पायेंगे। ज्ञानियो!

जो भंवर में पड़ गया वह भव–भव में पड़ गया। आचार्य जिनदेव कहते हैं कि

तृष्णां नदी त्त्वयोतीर्णा विद्या.........

हे प्रभु आपने तृष्णा नदी को पार कर लिया है ध्यान देना अभी यहाँ जीव बैठे हैं कुछ जीव दुकान खोलकर के बैठ गये क्यों बैठ गये? क्योंकि वे तृष्णा नदी में डूबे हैं ध्यान देना ज्ञानियों! तुम जिसको अर्जित कर रहे हो दुकान पर बैठकर वह तुम्हारे साथ में जाने वाला है लेकिन जो यहाँ बैठकर अर्जित कर रहे हैं वह उत्तीर्ण होने वाले जीव है जो वहाँ बैठे है वह अनुत्तीर्ण होने वाले जीव है जो यहाँ बैठे है वह उत्तीर्ण की परिभाषा सीखने बैठे हैं और जिसने उत्तीर्णता की परिभाषा सीख ली उसने सफलता की परिभाषा सीख ली। जो आज यहाँ पर उत्तीर्णता की परिभाषा सीख लेगा, वो जीवन में कभी असफल नहीं होगा।

ज्ञानी जीवो! असफल करने वाले कौन होते हैं? मोह और अज्ञान यह असफल करते हैं। यदि मोह और अज्ञान न जागे तो कभी असफल हो ही नहीं सकता मोह और अज्ञान में ही सारे विकार और विभाव हैं। मोह वह बला है जो मोक्ष की कला से दूर करती है। आचार्य देव लिखते हैं तुम उत्तीर्ण हो। क्यों उत्तीर्ण हो? भैया कहाँ उत्तीर्ण हूँ।

हे जिनेन्द्र! उत्तीर्ण हुये बिना कृतकृत्य नहीं हो सकते। यह ग्रंथ किसी को कठिन लगे तो चिंता मत करना क्योंकि जब उत्तीर्णता की परीक्षा पूछी जायेगी तो विश्व का कोई भी विद्यालय नहीं बता पायेगा, उसको बताने के लिये जैन शास्त्र पुरुषार्थसिध्द्युपाय ग्रंथ खोलना पड़ेगा। जब कृतकृत्य की परिभाषा पूछी जाये तो तुम्हें पुरुषार्थ सिध्द्युपाय खोजना पड़ेगा इसलिये ध्यान देना–हम तो

कठिनता में ही कैसे भी खोजे सोना आसान नहीं है खदान में नीचे मिलता है तब भी व्यक्ति सोने को खोजता है कि नहीं ? खोजता है रत्न समुद्र की लहरों में तैरा ही करते हैं रत्न खेतों में उगा नहीं करते हैं रत्न वृक्षों पर फलते नहीं हैं वे बल्कि समुद्र की अतुल गहराई में जाकर के गोता खोर उन्हें खोजकर लाते हैं ज्ञानी। कठिन वो है जो कठिन होता है वही महान और मूल्यवान होता है इसलिये इस ग्रंथ को कठिन मत कहना और कहो तो कहो महान ही तो है जो महान होगा वह मूल्यवान ही होगा।

शैले शैले न माणिक्यम् मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो न हि सर्वत्र, चन्दनं न वने वने॥

जैसे माणिक्य हर पर्वत में नहीं होते है प्रत्येक हाथी के मस्तिक में मोती नहीं होते, चन्दन के वृक्ष हर वन में नहीं होते हैं उसी तरह सम्यकदृष्टि साधु हर जगह नहीं होते हैं और साधु के प्रवचन हर जगह नहीं होते हैं।

प्रिय आत्मन् !

कठिन है कठिन बना रहे। आचार्य श्री से कहा कि आचार्य श्री महाव्रत तो कठिन होते हैं, तो आचार्य श्री बोलते हैं, उनको कठिनता से पाना चाहिये कठिन को और कठिनता से पाओ, जो सरल है वह तो अनंतो काल से पाया है, जिसे तुम सरल कहते हो ज्ञानी वह तो सरल (जहर) है। जिसे जगत ने सरल कहा है। कुंद-कुंद ने सरल कहा है।

सुदपरिचिदाणुभूया सव्वस्स वि कामभोगवंधकहा
एयत्तस्सुवलंभो णवरिण सुलहो विहत्तस्स॥ 4॥ समयसार

सुनिये कुंद-कुंद की देशना सभी जीवों के लिये काम की कथायें, बंध की कथायें, भोग की कथायें ये सर्वत्र सुलभ हैं, यह सरल है सुलभ है जिसे सुना है, जिससे पहले से परिचत हैं, जिसका अनुभव है वह सरल है लेकिन आत्म तत्त्व दुर्लभ है और कठिन है, वह कुंद-कुंद की दृष्टि में वह सरल है। जगत की दृष्टि में जो कष्टमय है वह कुंद-कुंद की दृष्टि में इष्टमय है। हम जगत दृष्टि वाले नहीं बन सकते हमें तो निर्वाण दृष्टि वाले बनना है। हमारी दृष्टि जगत दृष्टि नहीं है, हमारी दृष्टि कुंद-कुंद की दृष्टि है।

तृष्णां नदी त्वयोतीर्णा विद्या नावा विवक्तया।

ज्ञानी जीवो! भगवन् सुख कहाँ है? भगवान बोले नदिया के पार है। कौन सी नदी के पार

है? हम को भी ले चलो न। बोलो भैया बेतवा के पास, गंगा के पास, यमुना के पास, नहीं। सुख है तृष्णा नदी के उस पार, विकार नदी के उस पार, विभाव नदी के उस पार, मोह नदी के उस पार है सुख, राग-द्वेष के दोनों तटों के उस पार है सुख जहाँ राग-द्वेष के दोनों तट के बीच में से पानी बह रहा हो।

ओहो ज्ञानियो! वहाँ कहाँ सुख मिलेगा, मोह की नदी में राग-द्वेष के तट हैं और दुख का जल भरा है अज्ञान की धारा बह रही हो, वहाँ कहाँ सुख है। सुख तो है उत्तीर्णता में। कौन सी उत्तीर्णता में है सुख? ज्ञानी जीवो! परीक्षा का फल वह नहीं है सच्ची परीक्षा तो यह है जब अपने विभाव परिणामों को उत्तीर्णता मिल जाये, जीवन में कभी विभाव न आये जीवन में विकार न आये ओहो! क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेष, मोह, पंचेन्द्रिय के विषय यह इस मन को न छू पाये तो समझ लेना कि उत्तीर्णता मिल गयी।

ज्ञानी जीवो! यह है जैनागम का संदेश, यह है महावीर का उपदेश, यह है परमागम के अभ्यास का फल, हम देखेंगे कि हम कितने उत्तीर्ण हो चुके और कितने अनुत्तीर्ण हैं हम सब विद्यार्थी हैं हम सब निरीक्षक हैं, हम सब परीक्षक हैं और हम सब ही जाँच कर्ता और घोषणा कर्ता हैं गुरुदेव विरागसागर जी महाराज ने कहा था अब तुम स्वयं विद्यार्थी हो और स्वयं निरीक्षक भी हो, स्वयं परीक्षक भी हो कि स्वयं विद्यार्थी भी हो। परीक्षा देना भी है और स्वयं निरीक्षण भी करना है पढ़ना भी स्वयं ही है और जाँच भी स्वयं करना है, इतनी अंतरंग यात्रा करना पड़ती है जीव को, तब कहीं सफलता का राज मिलता है।

आज के विद्यार्थी और आज के माता-पिता, बच्चा लौकिक शिक्षा में उत्तीर्ण हो गया तो उत्तीर्ण मान लेते हैं और अनुत्तीर्ण हो गया तो अनुत्तीर्ण मान लेते हैं किन्तु पूर्वाचार्यों की दृष्टि को ध्यान में रखो, अर्थशास्त्री को ध्यान में मत रखो, आगम के शास्त्रों पर दृष्टि डालो। नाना प्रकार से उत्तीर्णता, जो जीवन में आ रही है, बहुत बड़ी सफलता हाथ में आने के बाद भी सर्विस लगने के बाद भी बच्चे जैन धर्म को भूल जाते हैं, माता-पिता को भूल रहे हैं।

ओहो ज्ञानियो! अब समझ गये होंगे कि तूने पढ़ाई तो बहुत करायी है, लेकिन माता-पिता की आज्ञा को भूल गये तो यह क्या अनुत्तीर्णता नहीं है? जैन धर्म के संस्कारों को भूलना क्या अनुत्तीर्णता नहीं है, जैन मंदिर और जैन गुरु के उपदेश को भूलना क्या अनुत्तीर्णता नहीं है, जैन धर्म का विस्मरण हो जाना क्या अनुत्तीर्णता नहीं है।

ज्ञानी जीवो! लोग न जाने कितने भ्रमित हो रहे हैं। इतने भ्रमित हो रहे हैं। मेरे पास कोटा में एक सज्जन रोते–रोते आये थे महाराज श्री मेरी बेटी इसी पाठशाला में पढ़ती थी और जैन धर्म का अध्ययन करती थी सर्विस के लिये मैंने बाहर भेजा एक लाख रुपये मंथली बेटी को पे मिलता था और उसी ऑफिस में साथी मित्र से शादी कर ली हम सब ने काफी मना किया लेकिन नहीं मानी वह समय तो मित्र का आचरण सही नजर आया लेकिन अब जो बेटी पर्युषण में उपवास करती थी। उसी बेटी को उसी घर में फ्रिज में से शराब की बोतल पर्युषण में उसे जीवन साथी के हाथ में देना पड़ती है।

ज्ञानी जीवो! ऐसी विडम्बना बनती है कि अनेकों उत्तीर्णता हासिल करने के बाद भी प्रत्येक परीक्षा में मेरिट लिस्ट में उत्तीर्ण होने के बाद भी सारी परीक्षायें तो उत्तीर्ण कर लीं लेकिन जीवन की जो सच्ची परीक्षा थी, उसमें अनुत्तीर्ण हो गयी।

आचार्य कह रहे हैं संपूर्ण विभावों से उत्तीर्ण होना चाहिए। हमने अपने बच्चों को शिक्षा तो दी है लेकिन शिक्षा से कोसों दूर है, जिस शिक्षा के माध्यम से आत्मा का कल्याण होता है हमारे यहाँ यह लिखा जाता है।

सा विद्या या विमुक्तये।

विद्या वह है जो मोक्ष के लिये हो किन्तु हमारी आजकल की वर्तमान प्रणाली अर्थ प्रधान हो चुकी है और अर्थ प्रधानता के साथ सह शिक्षा ने उस ओर मोड़ दिया है कि परिवार के परिवार उजड़ने लगे हैं समाज बिखरने लगी है, एकता के नाम पर घर से संस्कार और धर्म उठने लगा है।

ज्ञानी जीवो! आज उत्तीर्णता पर प्रश्न चिन्ह है कि तुमने सोलह कक्षाओं में उत्तीर्णता तो पायी लेकिन एक कक्षा में अनुत्तीर्ण हो गये तो सब कक्षायें बेकार हैं। बेटे ध्यान देना जैनधर्म पंच परमेष्ठी की राजधानी है यह जैन कुल वह आंगन है, जैन धर्म में आना संयम की लब्धि साथ में लेकर आये हो यह आसान नहीं है। उच्च कुल में आये हो, छने पानी में पैदा होने के लिये अनंत काल लग जाता है और एक बार छने पानी से निकल के चले गये तो ध्यान देना निगोद की यात्रा करना पड़ेगी और कुछ नहीं होगा।

जिसने धर्म को छोड़ दिया, देव को छोड़ दिया, शास्त्र को छोड़ दिया, गुरु को छोड़ दिया उसकी उपलब्धियाँ, उसकी उत्तीणतायें, उसकी डिग्रियाँ किस काम की। इसलिये आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं।

मोह से ढ़का हुआ जो ज्ञान है वह स्वभाव को पाने नहीं देता ज्ञानी जीवो!

विषयाशक्त चिन्तानाम्।

आचार्य वादिराज स्वामी लिखते हैं जिनका चित विषयों में आशक्त हो जाता है उनके कौन से गुण नष्ट नहीं हो जाते हैं न तो उनकी जाति रह जाती है न उनका कुल रह जाता है न उनका सत्य रह जाता है न उन माता-पिता का आदर रह जाता है न उनका सम्मान वे कुछ भी नहीं जाते हैं और न गुरु की मर्यादा उनके पास रहती है। कुछ भी शेष नहीं रह सकता है इसलिये कभी भी भले ही स्कूल के सभी विषयों में अनुत्तीर्ण हो जाना लेकिन पंचेन्द्रिय के विषयों में अनुत्तीर्ण है और पंचेन्द्रिय के विषयों पर विजय प्राप्त नहीं करना अनुत्तीर्णता है।

एक सम्राट विजय यात्रा के बाद माँ के पास पहुँचा बोला माँ मैं सर्वजीत हूँ, माँ मैं सबको जीत के आया हूँ, मुझे सर्व जीत की उपाधि से अलंकित किया गया है माँ। बेटा सोच रहा था कि सम्राट हूँ माँ खुश हो जायेगी। माँ बोली बेटा तू तो एक जित भी नहीं है तो सर्वजीत क्या होगा माँ ऐसा कौन है जिसे मैंने न जीता हो जितने भी राजा महाराजा हैं सबको पराजित करके अपना दास बनाकर आया हूँ बेटे तुमने अभी एक को भी नहीं जीता है तेरे पिता ने जिनको जीता था तूने उनको कहाँ जीता है।

माँ मेरे पिता ने जिनको जीता था मैं उन्हीं राजाओं को तो फिर से जीत के आ रहा हूँ बेटा तेरे पिता जिनको जीत रहे हैं जिस दिन तू उनको जीतेगा तब मैं तुझे सर्व जीत समझूंगी माँ वह कौन है बेटा यदि तू मात्र पाँच को जीत लेगा तो मैं तुझे सर्वजित घोषित कर दूँगी। बेटा कहता है माँ मैंने हजारों, लाखों को जीता है तो पाँच को जीतना कौनसी बड़ी बात है। बेटा बोला कौन है वह पाँच। उन पाँच को तो मैं पाँच मिनिट में जीत लूंगा। बस बेटा मैं इतना ही चाहती हूँ कि मेरा बेटा पाँचों को पाँच मिनिट में ही जीत ले बेटा पहला स्पर्शन इंद्रिय के विषय तेरे शत्रु हैं, रसना इन्द्रिय के विषय तेरे शत्रु हैं, घ्राण इन्द्रिय के विषय तेरे शत्रु हैं,चक्षु इंद्रिय के विषय तेरे शत्रु है, कर्ण इंद्रिय के विषय तेरे शत्रु हैं इन पाँच पर विजय पा ली, तो तू सर्वजित कहलायेगा तेरे पिता इन पाँचों को जीतने के लिये वन में गये हैं और तू इन पाँचों से हारने के बाद विजय को निकला है।

माँ मेरे पिता कहां है क्या कर रहे हैं? जा बेटा जंगल में जाके देख तेरे पिता कौन हैं क्या कर रहे हैं।

प्रिय आत्मन् !

ज्ञानमति माताजी पहली कक्षा पढ़ी है परीक्षा में तो वह भी उत्तीर्ण नहीं है पहली कक्षा भी उत्तीर्ण नहीं है आचार्य श्री विशुद्ध सागर जी महाराज नौ कक्षायें पढ़े हैं आचार्य विरागसागर जी महाराज ग्यारह कक्षा पढ़े हैं ज्ञानियो! आज आप लोग बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ हाथ में लेने के बाद फेल हो रहे हैं और ये बिना डिग्री वाले सबसे बड़ी उत्तीर्णता हासिल कर रहे हैं।

ज्ञानी! जिस ग्रंथ में उत्तीर्णता की परिभाषा नहीं है वह ग्रंथ क्या उत्तीर्णता देंगे उत्तीर्णता की परिभाषा को सीखने के लिये आज हमने पुरुषार्थसिद्ध्युपाय खोला है इसमें है उत्तीर्णता क्या कहलाती है। अपने कर्मों पर विजय पाना ही सबसे बड़ी उत्तीर्णता है प्रत्येक स्कूल में एक लाइन लिखी होना चाहिये अपने विकारों पर मन के विकारों पर विजय पाना ही उत्तीर्णता है। तभी तो प्रार्थना में बोलते हैं बच्चे।

हम को इतनी शक्ति देना,
मन विजय करें।
दूसरों की जय के पहले,
खुद पे (स्वय) जय करे॥

ज्ञानियो! मन को जीतना उत्तीर्णता है विषयों में नहीं पड़ना उत्तीर्णता है।

प्रिय आत्मन् !

आत्म दशा को कौन प्राप्त करता है? जो विकारों पर विजय पा लेता है जो पंचेन्द्रिय के विषयों को जीतकर के उत्तीर्णता पाता है जो पहले अनुत्तीर्ण हो वह क्या स्वरूप को प्राप्त करेगा आत्म स्वरूप की डिग्री किसे मिलती है, -सम की डिग्री किसके हाथ में आती है? जो उत्तीर्ण हो जाता है पांच इन्द्रियों के विषयों पर, विजय प्राप्त कर लो मन पर विजय प्राप्त कर लो, शुद्धता स्वरूप सिद्धत्त्व की डिग्री होगी।

ज्ञानी! लोग संसार के क्रिया कलापों में बच्चों को डाल देते और कहते हैं हम कृत-कृत्य हो गये। ज्ञानी जीवो! यह कृतकृत्य नहीं है कृत-कृत्य आज के लिये नहीं होता है कृत तो शाश्वत होता है सदा के लिये होता है कृत-कृत्य एक बार होता है तो फिर संसार में पुन: आता नहीं है कृत-कृत्य यदि कोई है तो वह सिद्ध परमात्मा हैं जो आत्मा के अचल स्वरूप को प्राप्त करते हैं वे कृत-कृत्य हैं। आज तक हम कितने उत्तीर्ण कितने अनुत्तीर्ण हैं।

ज्ञानी! एक वर–वधु चांदखेड़ी में मुझसे आशीर्वाद लेने आयी महाराजश्री शादी के बाद प्रथम बार तीर्थयात्रा पर निकले हैं आप आशीर्वाद दीजिये। मैंने कहा आप प्रथम वर्ष महीने में एक दिन का ब्रह्मचर्य व्रत रखना दूसरे वर्ष महीने में दो दिन का ब्रह्मचर्य व्रत रखना। तीसरी साल महीने में तीन दिन का ब्रह्मचर्य व्रत रखना। चौथी साल में चार दिन का इस क्रम को से नियम ले लो कि जब तीस वर्ष पूरे होंगे तो आजीवन ब्रह्मचर्य हो जायेगा हर एक–एक दिन ब्रह्मचर्य व्रत बढ़ाते जाना वह हमारे पास नियम लेके गये महाराजश्री इस नियम को हम प्रतिज्ञा पूर्वक आपके चरणों में लेते हैं कि हर साल एक दिन ब्रह्मचर्य का बढ़ाते जायेंगे और तीस साल में हम आजीवन ब्रह्मचर्य व्रती वन जायेंगे मैंने कहा यह उत्तीर्णता की पहली क्लास है।

यदि भंवर मे डूब भी चुके हो तो उत्तम तैराक जो होता है वह उसको भी निकाल के पार ले आता है घबराना नहीं कि भंवर में डूब चुके। जो डूब भी रहे हैं अभी भी श्वास बाकी है तो तैराक कहता है मैं तुम्हें वापिस लाने के लिये तैयार हूँ। कुशल तैराकी आते हैं वे कहीं से भी पार लगा लेते हैं यह हमारे दिगम्बर साधु यह दिगम्बराचार्य ऐसे कुशल तैराकी हैं कि तुम समुद्र में भी डूब रहे हो तो डूबते को पकड़ के तैरा देते हैं। हमने बचपन में कविता सुनी थी।

हम भारत के वीर सिपाही,
आगे कदम बढ़ाऐंगे।
गिरे हुए जो अपने साथी,
उनको हाथ उठाऐंगे॥

जो भवसागर में गिरे है, विषय कषायों में गिरे हैं आचार्य क्या होते हैं।

घण्णा ते भयवंता।

वे भगवान धन्य है? कौन भगवान धन्य है? वे आचार्य भगवान धन्य हैं जो विषयों के मगरमच्छ से भरे हुए समुद्र में पड़े हुये इन गृहस्थों को अपने ज्ञान–दर्शन रूपी हाथों से निकाल लेते हैं धन्य है ज्ञानी जीवो। वे आचार्य भगवान धन्य हैं। उत्तीर्णता के बाद कृत कृत्यता मिले कुछ करना शेष न रहे ऐसे उत्तीर्ण होना सम्पूर्ण विकार, विभाव, परिणाम समाप्त हो जाये। यह मेरा मन सभी प्रकार के हिंसा, झूठ, चोरी कुशील परिग्रह नाना प्रकार की आकुलतायें नाना प्रकार के संकल्प विकल्पों से मुक्त हो जाये यही उत्तीर्णता है।

ज्ञानी ! कुल भूषण-देश भूषण ने विद्या प्राप्त की लेकिन अंत में जब गुरु से कहा गुरुदेव में घर जाना चाहता हूँ तो गुरुदेव ने क्या कहा था ? जाओ बेटे मेरा अंतिम आशीष यही है।

अंतिम शिक्षा वात्सल्या युत
गुरुवर की वाणी।
मोक्ष मार्ग के लिए सिखायी
विद्या कल्याणी॥

जाओ बेटा चले जाओ गुरु को विश्वास था कि मैंने शिक्षा दी है जीवन में कितने भी मोड़ आये लेकिन मेरी शिक्षा बेकार नहीं जायेगी, मेरी विद्या बेकार नहीं जायेगी। आखिर वह विद्या काम आयी। गोबरधन आचार्य ने भद्रबाहु को घर वापिस भेज दिया जाओ बेटे मैं तुम्हें उधार लेके आया था माता-पिता से मैंने माता-पिता को वचन दिया था कि शिक्षा के बाद वापिस भेज देंगे जाओ बेटा गोबरधन आचार्य रास्ते मैं खेलते हुये पप्पू को पकड़ के लाये थे वह पप्पू गप्पू खेल रहा था चौदह टप्पू बनाये था और देखा कि यह पप्पू तो चौदह पूर्व का ज्ञाता बनेगा उसके लिये लेके आये और पूरा ज्ञान देने के बाद कहा जाओ बेटा लौट जाओ।

गुरुदेव मैं नहीं जाऊँगा, नहीं बेटा- मैंने तेरे माता-पिता से तुझे उधार लिया था शिक्षा देने के बाद लौटा दूंगा। जाओ बेटा वह माता-पिता के पास जाता है, और माता-पिता से कहता है मैंने शिक्षा पायी है, अब मैं शिक्षा के फल को पाने के लिये जाना चाहता हूँ।

ज्ञानी जीवो ! ध्यान देना- शिक्षा पाना अलग चीज है और शिक्षा के फल को पाना अलग चीज है। साधु बनना शिक्षा पाना नहीं है साधु बनना शिक्षा के फल को पाना है। भले ही शिक्षा थोड़ी हो लेकिन शिक्षा का फल मिले तो सफलता है और शिक्षा बहुत है और फल नहीं मिला तो किस काम का, अरे ! पेड़ कितना ऊँचा है इसकी विशेषता नहीं है पेड़ में फल कितने लगे हैं इसकी विशेषता है पेड़ बहुत ऊँचा, बहुत ऊँचा, बहुत ऊँचा है न तो छाया है न फल है तो किस काम का पेड़ का ऊँचा होना उसी तरह से शिक्षा तो बहुत लंबी-लंबी डिग्रियाँ ले चुके लेकिन जीवन में चारित्र की छाया नहीं है आचरण के फल नहीं लगाये है तो वह शिक्षा रूपी वृक्ष का क्या महत्त्व है।

प्रिय आत्मन् !

अपने बच्चों से कह देना माताओ कि बेटे असफल हो जाओ चिंता मत करना क्योंकि लौकिक परीक्षा कोई परीक्षा का मायने नहीं रखती है जीवन में तो अनंत परीक्षायें होना है हर कदम

एक नयी परीक्षा लिये होता है हर पल एक नयी परीक्षा लिये होता है हमें पल-पल में परीक्षायें देना है और पग-पग पर परीक्षायें देना है।

बेटे स्कूल में फेल हो जाना कोई बड़ी असफलता नहीं है लेकिन जीवन में फेल मत होना।

Welth is lost nothing is lost
Helth is lost something is lost
Corrector is lost everything is lost

ओहो माँ तू सोच रही एक साल पढ़ाई का दो लाख रुपये बर्बाद हो गया लेकिन ध्यान देना- माँ दो लाख की कोई कीमत नहीं है यदि तेरा बेटा आचरणवान है तो कोई कीमत नहीं है स्वास्थ ठीक है कि नहीं मैं एक बात बताऊँ जितने भी भक्तगण आते हैं कभी यह नहीं कहते महाराज आपकी प्रभावना कितनी अच्छी चल रही है कोई भक्त यह नहीं कहता है कि प्रवचन कितने अच्छे चल रहे हैं प्रत्येक भक्त आके यह पूछता है कि महाराज आपका स्वास्थ्य कैसा है। महाराज आपका स्वास्थ्य ठीक है तो आपके पास सब है यदि स्वास्थ्य चला गया तो कुछ चला गया और यदि चारित्र ही चला गया तो सब कुछ चला गया।

प्रिय आत्मन् !

आचार्य कहते हैं कि अपने प्रति जीवन में ईमानदार रहना गुरुदेव विरागसागर जी महाराज ने धर्म स्थलमें मुझसे कहा था हे विभव सागर तेरे लिये तीन सूत्र देता हूँ मैंने कहा गुरुदेव दीजिये-गुरुदेव ने सबसे पहले सूत्र दिया था अपने प्रति ईमानदार रहना। दुनियाँ यह समझती है बारह से एक बजे तक साधु सामायिक करता है तुम अपने प्रति ईमानदार हो कि नहीं सामायिक कर रहे हो कि नहीं। आज मैं यहाँ पर बैठा हूँ लेकिन मेरे गुरुदेव विरागसागर जी को यह विश्वास है कि यदि साढ़े आठ बज गये है तो विभवसागर जी का स्वाध्याय चल रहा होगा। दोपहर के तीन बज चुके हैं इस समय स्वाध्याय चल रहा होगा इतने कूट-कूट के संस्कार भरे है कि आज वहीं संस्कार है।

परम पूज्य गणाचार्य श्री विरागसागरजी कहते हैं कि सोना और शिष्य को आभूषण बनाना है तो दोनों को इतना पिघलाना चाहिये, इतनी ऊष्मा देना चाहिये कि पिघलकर के पानी हो जाये। क्योंकि जब तक पिघलकर के पानी नहीं होंगे तब तक उस सोने और शिष्य का आभूषण नहीं बना पायेंगे। यदि आचार्य नरम बने रहेंगे तो शिष्य अलंकार नहीं बन पायेंगे। और स्वर्णकार तपायेगा नहीं तो सोना अलंकार नहीं बन पायेगा।

ध्यान देना– औजार बनाने के लिये कुछ भी चलेगा लेकिन अलंकार बनाने के लिये सुनार क्या करता है? सोने को पिघलाता है उसी तरह शिष्य को सोने की तरह गलाना चाहिये। छात्र को चाँदी की तरह गलाना चाहिये तभी वे अलंकार बन पायेंगे इतनी ऊष्मा देना चाहिये। आचार्य यदि दया करेगा तो शिष्य का कल्याण नहीं हो पायेगा, गुरु यदि दया करेगा तो शिष्य का कल्याण रुक जायेगा।

आज कल की शिक्षा में तो यह हो गया कि यदि गुरु ने डंडा उठा लिया तो टीचर सस्पेंड हो जायेगा और पहले जब हम पढ़ते थे तो यह कहा जाता था कि "गुरु मारे धम्म–धम्म, विद्या आवे छम्म–छम्म"।

ज्ञानी जीवो! लेकिन वैज्ञानिक तत्त्व भी है कि चोट ऐसी न हो कि उसके मन को कष्ट पहुंचा दे क्योंकि विशुद्ध सागरजी महाराज का यह कहना था कि तिर्यंचो को डाट लगती है मनुष्यों को नहीं और दूसरी बात प्रायाश्चित वह नहीं है जो शिष्य को आकुलता प्रदान करे प्रायश्चित वह कहलाता है जो शिष्य को अंदर विशुद्धि प्रदान करे।

प्रिय आत्मन् !

आचार्य महावीर कीर्ति महाराज का एक सूत्र है उसे याद कर लो एक बार कायोत्सर्ग मात्र कर लेने से सब विकार शांत हो जाते हैं एक कायोत्सर्ग को जो श्वासोच्छ्वास विधि से करता है उसके विकार तत्काल शांत हो जाते हैं विकारों को जीतने का पहला मंत्र है एक बार श्वासोच्छ्वास विधि से कायोत्सर्ग करना यह सबसे पहला मंत्र है महावीर कीर्ति महाराज की डायरी में यह मंत्र लिखा हुआ है। मंत्र अनुभव से बनते हैं भाषा से नहीं। अनुभव क्या किया है तो महावीर कीर्ति महाराज कहते हैं चाहे मन का विकार हो, चाहे इंन्द्रियों का विकार हो किसी भी प्रकार के विकार को जीतना तो श्वासोच्छ्वास विधि से आप कायोत्सर्ग कर लो ज्यादा है तो एक माला फेर लो आपका मन उसमें रम जायेगा और जब मन आपका उसमें रम जायेगा पंचेन्द्रिय को ज्ञान से शून्य होने पर मन णमोकार में जायेगा और मन णमोकार में जायेगा तो अवश्य कल्याण होगा। आप कहते हो श्वास–श्वास में णमोकार हो लेकिन मैं कहता हूँ ग्रास–ग्रास में णमोकार हो तो उसका मन विजय को प्राप्त हो जायेगा।

हे माताओं आज आपसे एक निर्ग्रंथ मुनिराज कह रहा है जब आप भोजन परोसो जब प्रभु के सामने चावल चढ़ाते हो तो दो लाईन का अर्घ बोल के चढ़ाते हो इतनी बड़ी पूजा करके अर्घ चढ़ाते

हो तो कम से कम जब भी किसी की थाली में भोजन परोसो तो णमोकार मंत्र पढ़के भोजन परोस देना।

दो पूजायें मंदिर में पढ़ने की अपेक्षा श्रेष्ठ है कि अपने घर में जिसको भोजन परोसो उसको णमोकार मंत्र पढ़कर भोजन परोस देना और देख लेना जो चमत्कार पूजा नहीं कर पायी वह चमत्कार आपके द्वारा पढ़ा गया णमोकार मंत्र कर देगा। हो सकता है मेरा अनुभव तुम्हारे काम आ जाये।

✻ ✻ ✻ ✻

जीव और कर्म में निमित्त -नैमित्तिक भाव

जीवकृतं परिणामं निमित्तमात्रं प्रपद्य पुनरन्ये।
स्वयमेव परिणामंतेऽत्र पुद्‌गलाः कर्मभावेन।। 12।।

अन्वयार्थ - (जीवकृतं) जीव द्वारा किए गए (परिणामं) रागद्वेषादिक विभाव का (निमित्तमात्रं) निमित्तमात्र (प्रपद्य) पाकर (पुनःअन्य पुद्‌गलाः) जीव से भी जो पुद्‌गल है वे (अत्र) इस आत्मामें (स्वयमेव) अपने आप ही (कर्म भावेन) कर्मरुपसे (परिणमंते) परिणमन करते हैं। अर्थात् पुद्‌गलद्रव्य ही कर्मपर्याय होती है जीवके विभाव भाव उसमें निमित्त मात्र पड़ते हैं।

प्रिय आत्मन् !

माँ जिनवाणी, जगकल्याणी, अरिहंत भाषित, सिद्ध-सिद्धत, आचार्य आचरित, उपाध्याय उपासित, सर्वसाधु साहित, जीव तत्व प्रवोदिनी, अजीव तत्व विवेचनी, सर्वास्रव निरोधनी, कर्म बंध विमोचन, संवर पद प्रदायिनी, निर्जरा- निर्झरणी, मोक्ष-महल धारिणी, पाय-ताय-संताय हारिणी, विश्व कल्याण कारिणी, हे जिनवाणी माँ तेरी जय हो सदा विजय हो तेरे विशाल पद में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन् !

जिसकी आराधना ज्ञानावरण को मिटा दे, और केवल ज्ञान जगा दे, ऐसी जिनवाणी माँ जयवंत हो। जिसकी आराधना दर्शनावरण को मिटा दे, और केवल दर्शन जगा दे, ऐसी जिनवाणी माँ जयवंत हो। जिसकी आराधना मोहनीय को मिटा दे, अनंत सुख प्रकटा दे, ऐसी जिनवाणी माँ जयवंत हो। जिसकी आराधना अंतराय को मिटा दे, और अनंत शक्ति प्रकट कर दे, ऐसी जिनवाणी माँ जयवंत हो। जिसकी आराधना वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र, कर्म को मिटा दे और गुणो को उजागर

कर दे, ऐसी जिनवाणी माँ जयवंत हो। जिसकी आराधना अनंत दोषो को मिटा देती है और अनंत गुणों को प्रकटा देती है, ऐसी जिनवाणी माँ जयवंत हो। जिसकी आराधना गति को मिटा दे और पंचम गति दे दे, ऐसी जिनवाणी माँ जयवत हो। जिनकी आराधना गुणस्थान से रहित कर दे और गुण अनंत प्रदान कर दे, ऐसी जिनवाणी माँ जयवंत हो। जिसकी आराधना कषाय को नष्ट कर चारित्र को प्रदान कर दे, ऐसी जिनवाणी माँ जयवत हो।

प्रिय आत्मन् !

आचार्य देव अमृतचंद स्वामी ज्ञान समुद्र में से अमृत का मंथन करने विद्यामृत प्रदान करते हैं। आज आप वह तत्व ज्ञान का अमृत पान कर रहे हैं, जो अमृत पान कभी राजा श्रेणिक ने, भगवान महावीर से किया था। जो अमृत पान कभी धरणेन्द्र ने भगवान पारसनाथ से किया था।

प्रिय आत्मन् !

जो अमृत पान गौतम गणधर ने भगवान महावीर से किया था। जो अमृत पान जम्बू स्वामी और सुधर्माचार्य ने किया था। आज वही अमृत पान आप सभी कर रहे हैं। युग बदले सदियाँ बीत गयी, पर आदिश्वर तो अमर है।

प्रिय आत्मन् !

जीवकृतं परिणाम निमित्तमात्रं प्रपद्य पुनरन्ये।
स्वयमेण परिण मन्तेडत्र पुद्गलाः कर्मभावेनः।।

ज्ञानी जीवो! अनंतानंत जीव सिद्धालय में विराजमान है, और हम संसार में विराजमान हैं यह संसार, यह संस्कृति, यह भ्रमण, यह भटकन, किसकी देन है? जो संसार में भटकाता है, वह कौन है जो संसार मे डाल देता है?

ओहो ज्ञानी! यह तेरी भूल कब सुधरेगी तूने कर्म को दोष दिया, ओहो कर्म तो जड़ है, कर्म तो नश्वर है ज्ञानी जीवो! हम दूसरे को दोष देने के आदि बन चुके हैं। कभी ब्रह्मा को दोष देते हैं, कभी विधि को दोष देते हैं, कभी कर्म को दोष देते हैं।

ज्ञानी जीवों! लेकिन आचार्य कहते हैं यह कर्म जिन कर्मो को तुम कह रहे हो, वे कर्म पैदा कहाँ से हुये वे कर्म क्या अपने आप आ गये?

ज्ञानी जीवों! जड़ थे, अन्जान थे, उनका तुमसे कोई परिचय नहीं था, वह जहाँ थे, वहाँ थे, उन्हें ज्ञान भी नही था कि तुम कौन हो, कहाँ से हो, क्या हो। ज्ञानी जीवो! कर्म, में ज्ञान चेतना नही है, वे पौद्गलिक परमाणु क्या तुम्हें पहचानतें थे? नही। तो फिर तुम्हारे पास क्यों आये कर्म, तुम्हें यह पहचानते नहीं, कर्मों के पास ज्ञान नहीं, तुमको जानने की शक्ति नही वे अन्जान है, वे चेतना हीन कर्म, ज्ञान हीन कर्म, मेरे ही पास क्यों आये, यह विचारणीय तत्व है हमारे सामने।

णाणा जीवा णाणा कम्मा।

यदि कर्म आते हैं तो सबके पास एक से क्यों नहीं आते। यदि कर्म आते हैं तो सबकी ओली मे एक समान क्यो नहीं आते। यदि विधाता देता है, तो एक समान क्यों नही देता। यदि ब्रह्मा रचता है तो एक समान क्यों नही रचता। यदि सृष्टा रचता है, तो एक समान क्यों नही रचता।

प्रिय आत्मन् !

यह जैन दर्शन के कर्म सिद्धांत की प्रक्रिया जब तक जीवन में नहीं समझेगें, तब तक कर्मो को नष्ट करने की प्रक्रिया भी नही आयेगी। आचार्य कहते हैं, तुम कर्मो को दोष कब तक दोगे? भूल किसी की, सजा किसी को। अपराध किसी का, दण्ड किसी को, यही न्याय है क्यों?

ज्ञानी जीव! यही तत्व विज्ञान है क्या? अपराध किसी का और दण्ड किसी को, ज्ञानी जीव यह तो न्याय नही है। आचार्य देव लिखते है धर्म ग्रंथ पुरुष प्रधान हुआ करते हैं। धर्म ग्रंथ में पुरुषों के अनुसार वर्णन होता है और न्याय ग्रंथ में वस्तु की विवेचना, उसका निर्णय होता है। आज हम यह ग्रंथ पढ़ रहे हैं, यह ग्रंथ द्रव्यानुयोग, करणानुयोग चारों अनुयोगों में विभक्त है। पुरुषार्थ-सिद्धियुपाय यह समयसार का कर्ता कर्म अधिकार चल रहा है।

जिस महान आचार्य ने कुंद-कुंद के समयसार पर लेखनी चलाई हो, जिस महान आचार्य को कुंद-कुंद जैसे महान शास्त्र पर लेखनी चलाने का अधिकार है, वह आचार्य इस कारिका में लिख रहा है,-

''जीव कृतं परिणामं। ''

परिणाम किसने किये, जीव कहो, आत्मा कहो, चेतना कहो, ज्ञान कहो, स्वयं कहो, पहले भाव कर्म होता है? कि पहले द्रव्य कर्म होता है? भाव कर्म। पहले तू बैलेंस डालता है कि पहले मोबाईल से बात करना शुरू कर देता है। पहले भाव होते हैं, बाद में द्रव्य होता है। भाव कर्म किसने

किया ? जीव ने। दोष किसका ? जीव का, अरे ! बदल गये, इसलिये भरोसा नहीं करना किसी पर भी, कौन कब बदल जाये।

अभी कह रहे थे कि कर्मों का दोष पूँछा संसार में क्यों भटक रहे ? बोले कर्मों के कारण और अब कहने लगे जीव के कारण। सत्य तो पकड़ना ही पड़ेगा, सही राह पर तो आना ही पड़ेगा, और जिनवाणी को तो मानना ही पड़ेगा, और कभी भूल हो जाये तो स्वीकार भी कर लेना चाहिये कि सत्य का दर्शन तो हुआ। आज तक हम यह मानते थे कि कर्म के कारण संसार में भटक रहे लेकिन आज हम यह मानने को तैयार तो है कि कर्मों ने कुछ नहीं किया, मैंने कर्मों को किया। ओहो ज्ञानी ! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्ता नहीं है, फिर क्या हो गया देखो।

''जीवकृतं परिणामं।

अशुद्ध द्रव्यों में ऐसी क्षमता बड़ी विचित्र है। पुदगल की ऐसी विशाल शक्ति है कि वह जीव के केवलज्ञान जैसे स्वभाव को ढक देती है। कार्तिकेय अनुप्रेक्षा में कार्तिकेय स्वामी लिखते हैं – तुम्हें पुद्‌गल की शक्ति जानना, तो इतना भी मत जानो कि जल जीवन है। इतना भी मत जानो की विष मरण हैं। इतना भी मत जानो की कांटा पीड़ा देता है, इतना भी मत जानो कि औषधि आरोग्य देती है। पुद्‌गल की शक्ति को जानना है तो यह भी जानें कि यह पुद्‌गल की शक्ति आत्मा के केवल ज्ञान जैसे स्वभाव को नष्ट कर देती है। यह सामान्य शक्ति नही है।

यह पुद्‌गल के स्कंध कभी एटमबंम बन जाते हैं यही पुद्‌गल के स्कंध कभी मलहम बन जाते हैं। पुद्‌गल की शक्ति भी अचिन्त्य है और जीव के परिणामों की शक्ति भी अचिन्त्य।

ज्ञानी जीव के परिणामों की शक्ति अचिन्त्य है कि पुद्‌गल नाश्ता है।

जहाँ न पहुँचे सूरज किरणें, वायु के झोंके।
वहाँ कर्म आकर के पकड़े, रुके नहीं रोके।।

प्रिय आत्मन् !

जहाँ सूरज की किरणें नहीं पहुँच पाये, तो यह मत सोच लेना कि तुम यहाँ से कहीं दूर चले जाओगे और कर्म नहीं पकड़ेंगे ? नहीं। ज्ञानी ! तुम कहीं भी चले जाओ, देने वाला तो तेरे भीतर बैठा है और लेने वाला भी तू है।

जैसे – शरीर के साथ आत्मा जा रही है, तेरा कार्माण शरीर तेरे साथ है हम यह सोचते हैं, घर मे दुख मिल रहा है, चलो बाहर चलें ज्ञानी जीवो! जो दुख हुआ है, वह कार्माण शरीर तेरे अन्दर है।

प्रिय आत्मन् !

परिणाम किसके हैं? जीव के परिणमन कौन कर रहा है? जीव।

जीवकृतं परिणामं, आत्मकृतं परिणामं
चैतन्य कृतं परिणामं, स्वयं परिणामं

परिणाम तो स्वयं ने ही किये हैं, चाहे इस भाव में किये हों, चाहे पर भव में किये हों, चाहे असंख्य भव पूर्व किये हों। ध्यान देना– आपके घर में जो संपत्ति है, उसे आपने आज ही नहीं कमाया है। कुछ पहले भी कमाया था, कुछ और पहले भी कमाया या निरंतर पचास साल से कमा रहे हो और उसके पहले तुम्हारी सत्ता में जो पुण्य था उस पुण्य के अनुसार तुम्हारे परिवार और पिता से तुमको मिला है एक ही दिन का नहीं है। उसी तरह जीव ने क्या किया हैं?

जनम–जनम से जोड़ रखे ,
अपने सिर पर ओढ़ रखे।
जीवों ने जो पाप यहाँ,
दुःख और संताप यहाँ।

प्रिय आत्मन् !

जीवकृतं परिणामं।

यदि कर्मो से बचना हो, यदि दुखों से बचना हो, कर्मों से बचना हो, तो परिणामों से बचो । ध्यान देना – बीज जमीन का निमित्त पाता है, तब फलित होता है, न धरती पर ताकत है कि बीज को उगा दे, न बीज में ताकत है कि अपने आप उग जाये, बोलो ज्ञानी! बीज अपने आप अंकुरित नहीं हो सकता और धरती अपने आप अंकुरित नहीं कर सकती, न मात्र धरती की क्षमता है कि बीज को उगा दे, न मात्र बीज की क्षमता है कि उग जायें। ध्यान देना–यह धरती की भी शक्ति है, और बीज की भी क्षमता। क्योंकि कर्म सर्वत्र है।

चाहे तुम दुनियाँ के किसी भी कोने मे चले जाना लेकिन परिणाम नहीं सम्हाल पाये, तो कर्म बंध से बच नहीं सकते हो। ध्यान देना – गृहीत वर्गणायें, अगृहीत वर्गणायें, गृहीता गृहीत वर्गणायें इस संसार में सर्वत्र ठसाठस भरी हुयी है।

ज्ञानी जीवो! जब दौड़ प्रतियोगिता हुयी थी, तब सभी बच्चे लाइन से खड़े थे। मात्र एक सीटी बजने का इंतजार करते। एक प्रतियोगी और प्रत्याशी की तरह खड़े है उम्मीदवार की तरह खड़े है कब सीटी बजे और कब दौड़ लगा दे। उसी तरह से कर्म बिल्कुल रेड़ी खड़ा हुआ है कौन सीटी बजाये कब सीटी बजती है कौन मन योग चलाये, कौन वचन योग चलाये, कौन काय योग चलाये और जिसने चलाया कैमरा तैयार है और जिसके हाथ-पाव चले उसकी फोटो आ जायेगी। ध्यान देना -यह अगृहीत वर्गणायें सर्वत्र है। यह पौद्‌गलिक परमाणुओं की ऐसी शक्ति है। दीवाल दर-दरी है, तो धूल नहीं चिपकेगी, लेकिन दीवाल चिकनी है तो धूल चिपकती है, इसी तरह-

रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसंपत्तो
एसो जिणोवदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज।

कुंद-कुंद भगवान समयसार की एक सौ पचासवीं गाथा में लिखते है रागी जीव कर्मो को बांध लेता है, और विरागी जीव कर्मों से छूटता है, यह जिनेन्द्र देव का उपदेश है कि दुख नहीं चाहते हो, तो राग मत करो।

ज्ञानी एकपहलवान के साथ दूसरा पहलवान कुश्ती लड़ रहा है, लेकिन जो पहलवान शरीर में तेल लगाये हुये है, उस पहलवान को धूल जादा चिपकती है, और जो पहलवान तेल नहीं लगाये है, उसको धूल नही चिपकती है। आपको मालूम है यदि तेल लगाकर धूल में चलोगे, तो धूल लगेगी, और बिना तेल चलोगे तो नहीं लगेगी। उसी तरह राग का तेल जहाँ लगा हुआ है, उस चेतना में कर्म नियम से आकर चिपकते हैं। यदि राग का तेल हटा दो तो कर्म नहीं चिपकेगें।

जीव परिणामी है, मैंने जो कुछ पाया है सिर्फ मैंने ही कमाया है, तुम कितना भी कह देना कि यह पिता ने कमा के दिया है, यह दादा ने कमा के दिया है, लेकिन कर्म सिद्धांत कहेगा - चाहे दादा ने कमाया हो, चाहे परदादा ने कमाया हो, लेकिन तेरा ही कर्म था, इसलिये दादा-परदादा के घर में तू पैदा हुआ है।

आज एक ज्ञानी मंदिर में पूजा करते मिल गया मैने कहा भैया तू प्रवचन में आता है कि नहीं बोला महाराज में दुकान खोलता हूँ उसी समय। मैंने कहा किसके लिये खोलेगा? तुझे पेट ही भरना है तो इतने घंटे में अपने आप पेट भर जायेगा और तू सोच की पुत्र के लिये तो पुत्र का पुण्य होगा तो तेरे से ज्यादा कमा लेगा और नहीं होगा तो तू जितना रख भी देगा, तो वह भी चला जायेगा इसलिये ज्यादा तृष्णा में नही पड़ने का।

जीवकृतं परिणामं।

जीव के परिणाम है

कैसे परिणाम है?

णाणा जीवा णाणा कम्मा।

जितने जीव है उतने प्रकार के परिणाम है यहाँ सबके परिणाम एकसे नहीं हो सकते। सब के चेहरे एकसे नही हो सकते। सबके हाथ कि रेखायें एक सी नही हो सकती। सभी वृक्ष के पत्ते एकसे नही हो सकते। क्यों नही हो सकते? एक वृक्ष के पते एक से नही होते। दो हाथ की अपनी रेखायें एक सी नही होती है।

ज्ञानी जीवों! ध्यान देना -सिर के बाल भी तेरे सब एकसे नही होते। प्रत्येक जीव के दांत भी एकसे नहीं होते। एक-एक परमाणु कर्म सिद्धांत के आधार पर आया है और उसी आधार पर बंधा है उसी आधार से शरीर बंधा है।

मुंडे-मुंडे मति र्भिन्नः कुंड़े-कुंड़े पया।

प्रत्येक जीव की मति भिन्न है कुंड़-कुंड़ का पानी भिन्न है।

निमित्तमांत्र प्रमद्यत

जीव परिणामों का निमित्त पाकर कर्म बन्ध करता है। राजा श्रेणिक के परिणामों का एक बार निमित्त पाया तो तैंतीस सागर की नरक आयु का बंध हो गया, और दूसरी बार निमित्त पाया तो चौरासी हजार वर्ष शेष रह गयी और उसी जीव के परिणाम का निमित्त पाया तो तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो गया।

ज्ञानी जीवो! आस्रव क्या है? जीव में अजीव का आना आस्रव है, अचेतन में चेतन का आना। आत्मा में अनात्मा का आना, आस्रव हो गया। सूरज प्रकाश जहाँ हो वहाँ हो, लेकिन कुछ स्थान ऐसे भी जहाँ सूरज का प्रकाश नही है जिस बिल में सूरज का प्रकाश नहीं पहुँचा, उस बिल मे बैठा हुआ जीव कर्म को बांध रहा है। क्या अंधेरे मे रहने वाले जीव-जन्तु कर्मों का बंध नहीं करते? जहाँ सूरज की किरणें नहीं पहुँचती हैं, जहाँ वायु के झोंके नहीं पहुँचते हैं, ऐसे स्थान पर अगृहीत वर्गणायें हैं, ध्यान देना।

ज्ञानी जीवों! एक बात सुन कर ग्रहण कर लेना सर्वज्ञ का ज्ञान और कर्मों की वर्गणायें एक तो सर्वज्ञ अपने ज्ञान से सर्वत्र देखता है और कर्मों की वर्गणायें सर्वत्र हुआ करती हैं। हम जो भी कर

रहे हैं उन सबको देखने वाला, जानने वाला सर्वज्ञ है। सर्वज्ञ के ज्ञान में इधर कहा गया सेटेलाइट की व्यवस्था में चार इंच की वस्तु भी धरती पर पड़ी हो तो आकाश के सैटेलाइट में आ जायेगी। मै यह कहना चाह रहा हूँ कि जब सैटेलाइट की व्यवस्था है कि वह आसमान से जमीन पर पड़ी हुई चार इंच की भी वस्तु को देखता हुआ चला जाता है तो फिर केवल ज्ञानी के केवल ज्ञान की विशेषता है कि संसार में सर्वत्र तीन लोक में, तीन काल में जितने भी द्रव्य है, गुण हैं, पर्याय है वे सब सर्वज्ञ के ज्ञान में झलक रहे हैं।

भो ज्ञानी ! मेरा मित्र मुझे देख पाये न देख पाये, मेरा पिता मुझे देख पाये न देख पाये, मेरा गुरु मुझे देख पाये न देख पाये लेकिन इन सब के बाद सबका ईश्वर केवल ज्ञानी सर्वज्ञ देव के ज्ञान में सब झलक रहा है, उनके ज्ञान से कोई बाहर नही है।

प्रिय आत्मन् !

एक जीव कर्ता है, फल हजार को मिलता है। हजार-हजार जीव प्रवचन सुनते हैं, फल एक को मिलता है। एक व्यवस्था बनाता है, हजार जीव सुन रहे हैं। तुम कुछ भी नहीं करो, व्यवस्था बनाने वाले ने व्यवस्था बना दी और फिर हजार सुन रहे है तो हजार का छठवां हिस्सा व्यवस्थापक के हिस्से में चला गया, सौ गुना पुण्य तो उसकी झोली में आ गया।

प्रिय आत्मन् !

जब राजगृही में विपुलाचल पर महावीर का समोशरण आया तो राजा श्रेणिक ने पूरे नगर में ढ़िंढोरा पिटवा दिया कि चलो सभी के लिये महावीर के समोशरण में चलना है।

ज्ञानी जीवो ! वह पूरे नगर के लोगो को लेकर महावीर के समाशरण में पहुँचा, तब कहीं ऐसे निर्मल परिणामी जीव प्रमुख श्रोता बना और वही जाकर के तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया।

ज्ञानी जीवो ! ध्यान देना- यदि पूर्व में उसने नरक आयु का बंध न किया होता तो उसी भव से मोक्ष भी चला जाता।

जीवकृतं परिणामं।

पुद्गल की अपनी कुछ भी शक्ति नहीं है परिणाम तो जीव के है, आदेश तो जीव का है, शासन का आदेश पाकर के नीचे के लोग कार्य करने लगते हैं और आत्मा का आदेश पाकर के कर्म बंध को प्राप्त होता है। योग आमंत्रण व्यवस्था देता है और कषाय आवास व्यवस्था देती है।

कर्मो को आमंत्रण कौन करता है? योग। योग से प्रकृति और आदेश बंध होता है योग तो कर्मो का आमंत्रण करता है। आइये-आइये, बैलकम कौन करता है योग। अत्र-अत्र करने वाला तो योग है और तिष्ठ-तिष्ठ कहने वाला कषाय है। कर्मो को उच्चासन कषाय देती है और पड़गाहन योग करता है।

यदि संसार को रोकना हो तो द्रव्य कर्म को रोक दो और यदि द्रव्य कर्म को रोकना होतो भाव कर्मो को रोक दो, और भाव कर्मो को रोकना हो तो भावों को रोक दो।

भाव तीन प्रकार के होते है।

1. अशुभ भाव   2. शुभ भाव   3. शुभाशुभ भाव

अशुभ भाव से जीव नरक और तिर्यंच गति पाता है- प्रवचन सार में कुंद-कुंद देव ने लिखा है। इसलिये मैं तो एक ही बात कहता हूँ।

अशुभ न सोचूं, अशुभ न चाहूं, अशुभ नही देखूँ।
अशुभ सुनूं न, अशुभ कहूँ न, अशुभ नहीं लिखू।।
शुभ चर्या हो, शुभ क्रिया हो, शुद्ध भाव भर दो।
मेरा अंतिम मरण समाधि तेरे दर पर हो।।

गांधीजी के तीन बंदर थे, लेकिन महावीर के चार। अशुभ न सोचने कि बात गांधीजी ने नहीं कही लेकिन महावीर कहते हैं अशुभ सोचो भी मत अशुभ देखना, सुनना, बोलना तो दूर की बात है। तुम सोचो भी मत, फिर क्या करुँ? अशुभ से बचो।

कुंद-कुंद भगवान लिखते है शुभ क्या है अशुभ क्या है? ज्ञानी जीवों अशुभ उपयोग, शुभ उपयोग, शुद्ध उपयोग। विषय कषायों में चित्त जाना अशुभ उपयोग है और दान पूजा में चित्त जाना शुभ उपयोग है और आत्मध्यान मे उपयोग जाना शुद्धोपयोग है।

देव पूजा अशुभ से बचाने के लिये, गुरु का उपदेश अशुभ से बचाने के लिये। ध्यान देना-यहां पर जितने प्राणी आ रहे है, मेरा दायित्व है कर्तव्य है कि मैं आपको एक घंटे तो अशुभ से बचाये रखूं यह मेरा कर्तव्य है। आप एक घंटे की बात करते हो मात्र एक घंटे ? नही। यदि मैं तुम्हारे यहाँ एक घंटा को जाता हूँ तो चौबीस घंटे को चैन मिलता है। तो फिर तुम मेरे द्वारे एक घंटे को आओगें तो एक दिन को नहीं, एक माह को नहीं, एक भव को नहीं, अनंत काल के लिये चेन मिलने वाला है।

ज्ञानी ! एक पल के पाप को भोगने के लिये अनंत काल लग जायेगा और भोग नही पायेगा। एक बार सम्यक् दर्शन निर्मल हो गया तो अनंत काल तक नही छूटेगा। ध्यान देना-किसका भला किस से हो जाये, किसी को पता नहीं है। मारीचि का भला आदिनाथ नही कर पाये, बाहूबली नही कर पाये, भरत नही कर पाये, उनके सगे भाई नही कर पाये, पोता नही कर पाये। ध्यान देना उसी मारीचि का भला शेर की पर्याय में सामान्य से मुनिराजो ने कर दिया।ध्यान देना-

सागर से प्यास न बुझे हो सकता है, नदियों से प्यास न बुझे, हो सकता है। कभी-कभी अपने घर के कुंआ से ही प्यास बुझे तो ठीक है। इसी तरह ज्ञानी जीवो ! यह तत्व देशना का काल है और ध्यान देना एक घंटे का प्रवचन एक घंटे की मेहनत से नही आता है। न जाने इस विभवसागर की आत्मा ने कितने भव-भव में ऐसे पुण्य भाव संजोये होगे कि हे प्रभु महावीर आपकी वाणी इस मुखारबिन्द से निकले ऐसी शक्ति प्रदान करना, ऐसी भक्ति प्रदान करना।

ज्ञानी जीवों भव-भव की साधनाओं के बाद, वर्तमान में जिन शासन की छत्तीस-सैतीस साल की आराधना के बाद आपके बीच में बोल रहा हूँ। धन्य है तीर्थंकर की वाणी मेरे मुख से निकल रही है। तो मेरा मुख पवित्र हो रहा है, मेरी आत्मा पवित्र हो रही है लेकिन आप सुन रहे है तो आपके कान, आपके प्राण और आपकी चेतना भी पवित्र हो रही है। आत्मा के असंख्यात प्रदेशों पर लगा हुआ कर्म का मैल यह प्रवचन की गंगा नियम से होगी ऐसा विश्वास के साथ पूरी आस्था के साथ कहता हूँ। इसलिये विनम्र आग्रह आप से करुंगा कि एक शब्द छूट गया तो एक पद छूट गया, और एक पद छूट गया तो एक अर्थ छूट गया, तो तत्व का ज्ञान छूट गया, और तत्व का ज्ञान छूट गया तो कल्याण छूट गया, इसलिये ज्ञानी जीवो, समय का पूरा ध्यान रखो।

ज्ञानी जीवो ! मंगलाचरण पूरे प्रवचन की नींव हुआ करता है, जिस दिन मेरा मंगलाचरण अच्छा हो जाता है मैं मान लेता हूँ मेरा प्रवचन अच्छा हो गया है। नींव अच्छी भरी है तो महल अच्छा बनेगा ही बनेगा और जिसने मंगलाचरण नहीं सुना उसने प्रवचन नहीं सुना। मंगलाचरण तो जमीन पर रखने वाला पांव है।

पवित्र भावनायें पवित्र फल प्रदान करती हैं।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

*** * * ***

कर्म और जीव में निमित्त-नैमित्तिक भाव

परिणममानस्य चितश्चिदात्मदैः स्वयमति स्वकैर्भावैः।
भवति हि निमित्तमात्रं पौदलिक कर्म तस्यापि ।। 13।।

अन्वयार्थ - (हि) निश्चय करके (स्वकैः) अपने (चिदात्मकैः) चैतन्यस्वरूप (भावैः) भावोसे रागादिपरिणामों से (स्वयं अति) अपने आप ही (परिणममानस्य) परिणमन करने वाले (तस्य) उस (चितः अति) जीव के भी (पौदलिंक कर्म) पुद्‌गल के विकार रूप कर्म (निमित्त-मात्रं) निमित्तमात्र (भवति) होते हैं।

अज्ञानी जीवों की समझ

एवमयं कर्मकृतैर्भावैरसमाहितोपि युक्त इव।
प्रतिभाति बालिशानां प्रतिभासः स खलु भवबीजम् ।। 14।।

अन्वयार्थ - (एव) इस प्रकार (अयं) यह जीव (कर्मकृतैः) कर्मकृत रागादिक एवं शरीरादिक (भावैः) भावोंसे (असमाहितः अपि) सहित नहीं है तो भी (बालिशानां) अज्ञानियों को (युक्त इव) ''उन भावोंसे'' सहित सरीखा (प्रतिभाति) मालूम होता है (सः) वह (प्रति-भावः) प्रतिभाव-समझ वा प्रतीत (खलु) निश्चयसे (भवबीजं) संसार का कारण है।

प्रिय आत्मन् !

माँ जिनवाणी! जगकल्याणी! अरिहंत भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य आचरित, उपाध्याय उपासित, सर्वसाधु साधित, जीव तत्व प्रबोधिनी, अजीव तत्त्व विवेचनी, सर्वास्रव निरोधिनी, कर्म बंध विमोचनी, संवर पथ प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी,

विश्वकल्याणकारिणी हे जिनवाणी माँ तेरी जय हो, जय हो, जय हो। तेरे विशाल पद में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन् !

जिस माँ की कृपा से, जिस जिनवाणी की आराधना से क्रोध क्षमा का रूप ले लेता है। जिस जिनवाणी की कृपा से मान मार्दव का रूप ले लेता है। जिस जिनवाणी की कृपा से माया आर्जव का रूप ले लेती है। जिस जिनवाणी की कृपा से लोभ संतोष का रूप लेता है। हिंसा अहिंसा में बदल जाती है। असत्य सत्य का रूप ले लेता है। चोरी अचौर्य भावना में बदल जाती है। अब्रह्म ब्रह्म में बदल जाता है और परिग्रह का भाव अपरिग्रह के भाव में बदल जाता है, ऐसी जिनवाणी माँ जयवंत हो।

प्रिय आत्मन् !

तीर्थकर भगवान मूलनायक इष्ट देव आदिनाथ स्वामी के पाद मूल में विराजकर हम उन्हीं तीर्थंकर की पारम्परिक देशना का रसास्वादन कर रहे हैं। कुंद-कुंद भगवान का समयसार और समयसार का कर्ता कर्म अधिकार, और अमृत चंद्राचार्य के पुरुषार्थ सिद्धि उपाय की बारहवीं तेरहवीं गाथा चल रही है।

ज्ञानियो जो देशना तीर्थकर महावीर ने प्रदान की, अनेक जीवों ने देशना को सुनकर सम्यक् दर्शन को प्राप्त किया। नेमिनाथ के समवशरण में बलराम ने देशना को प्राप्त करके क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त किया। जिस देशना को सुनकर के रुक्मणि ने आर्यिका दीक्षा ग्रहण की, जिस देशना को सुनकर के प्रद्युम्नकुमार ने अपनी आत्मा का कल्याण किया शंभुकुमार ने दीक्षा का वरण किया। ध्यान देना! जिस नेमिनाथ प्रभु की देशना को पाकर हजारों लाखों जीवों ने सम्यक दर्शन सहित रत्नत्रय को वरण किया, आज भी वही देशना जिसके प्रत्येक वचन में सम्यक्त्व को उद्‌भूत करने की शक्ति भरी हुयी है।

दिव्य ध्वनि के वचन सम्यक् दर्शन के वचन हैं। शास्त्र के वचन सम्यक् दर्शन वचन हैं और ऐसे सम्यक् दर्शन वचन जब मुखरित होते हैं, तो प्रवचन का रूप ले लिया करते हैं।

प्रिय आत्मन् !

हम वचन सुनने नहीं आये हैं, हमें सम्यक् दर्शन रूपी वचन सुनने हैं। बारह प्रकार की भाषा होती है, उनमें सर्वोत्तम, सर्व श्रेष्ठ, भाषा अकलंक देव ने कही है। सम्यक् दर्शन वचन हुआ करते हैं जो वचन श्रद्धालुओं के कर्णकुण्ड में जाकर के श्रद्धान को पैदा कर देते हैं। मिथ्यादृष्टि को सम्यक् दृष्टि में बदल देते हैं। नास्तिक को आस्तिक में बदल देते हैं। असंयमी को संयमी में बदल देते हैं। क्रोधी को क्षमा वीर बना देते हैं। शंकित को नि:शंकित बना देते हैं कांक्षित को नि:कांक्षित बना देते हैं। ग्लानि युक्त को निर्विचिकित्सक बना देते हैं। मूढ दृष्टि को अमूढदृष्टि बना देते हैं। विचलित को स्थितिकरण कर देते हैं। घृणित के भीतर भी वात्सल्य पैदा कर देते है और जैन धर्म की दिंगदिंगातक पंचरंगी पताका फहराते हुये प्रभावना कर देते हैं। ऐसे सम्यक् दर्शन वचन जहाँ खिरते है, वहाँ महावीर का शासन तीर्थ प्रारम्भ हो जाता है।

प्रिय आत्मन् !

सम्राट चंद्रगुप्त ने स्वप्न देखा था कि दो बछड़े रथ को खींच रहे है और वही स्वप्न आज साकार हो रहा है। आज युवा मुनियों के माध्यम से बाल ब्रह्मचारी त्यागियों के माध्यम से यह जैन धर्म का रथ, जिस रथ का संचालन युग प्रमुख आदिनाथ ने किया और शासन नायक भगवान महावीर स्वामी ने किया, आज वही धर्मतीर्थ व्यवहार और निश्चय नय के भेद से ज्ञाता पुरुषों के द्वारा अशोकनगर में चल रहा है।

प्रिय आत्मन् !

तत्त्व को पहचानो भ्रांति मत पालो, तत्त्व में भ्रान्ति रहेगी तो जीवन में शांति नहीं रहेगी और तत्त्व ज्ञान के बिना भी शांति नहीं आती है।

तत्त्व ज्ञान बिन शान्ति कहाँ, मिटती मन की भ्रांति कहाँ।
तत्त्व ज्ञान जब पाओगे, आत्म शांति प्रकटाओगे।।
तत्त्व ज्ञान कैसे पाऊँ, वह उपाय मैं दरशाऊँ।
तत्त्व ज्ञान जिनवाणी में, आगम से गुरु वाणी से।।

तत्त्व ज्ञान के बिन शांति नहीं मिलती है। कोई कहता है मैं कर्म के कारण दुखी हूँ। कोई कहता है मैं परिवार से दुखी हूँ। कोई कहता मैं व्यापार से दुखी हूँ लेकिन अमृतचंद्र आचार्य कहते हैं तू अपने

अज्ञान से दुखी है। ज्ञानी ! तू तो सुनता जा और गुनता जा, देखता जा आगे–आगे होता है क्या ? कोई कहता मैं सरकार से दुखी हूँ, कोई कहता है मैं व्यापार से दुखी हूँ ओ हो ! कोई कहता है मैं परिवार से दुखी हूँ। इसके बीच में अमृतचंद्र आचार्य मिलते है, तो वो कहते हैं ज्ञानियों ! न सरकार से दुखी है, न व्यापार से दुखी है, न परिवार से दुखी है। ज्ञानी तू अपने अज्ञान भाव से दुखी है।

प्रिय आत्मन् !

तत्त्व दृष्टि है तो तू दुखी नहीं होगा। क्या चला गया ? जो मेरा नहीं था, सो चला गया। जो मेरा था, वह मेरे पास है। मेरा ज्ञान, मेरा दर्शन, मेरा है, इसके अलावा जो जेब में था, वह सब पुद्‌गल था, पर मेरा था ही नहीं सो चला गया। तत्त्व ज्ञानी नहीं रोयेगा, नहीं विलखेगा और तत्त्व ज्ञानी नहीं है, तो वहीं आंसू बहायेगा, गंगा, यमुना बहायेगा। क्या हो गया, भैया हमारी चीज चली गयी।

ज्ञानी तेरी चीज तुझे छोड़ के जा नहीं सकती है। ध्यान देना यही तत्व की देशना है। तूने पैसे को अपना मान लिया ज्ञानी वह पैसा पुद्‌गल था, तो जीव रूप हो जाये या जीव पैसे रूप हो जाये तो मैं मान लूंगा कि वह तेरा पैसा है। एक रुपया को हाथ में ले लेना और कह देना सिक्के तू मेरे रूप हो जा, सिक्के में ज्ञान पैदा करा दे, नोट में ज्ञान पैदा करा दे ? नहीं होगा। तो फिर तूने कैसे मान लिया कि धन–पैसा मेरा है।

प्रिय आत्मन् !

आपने ऐसा भी व्यक्ति देखा होगा जिसे भूत लगा हो, ऐसा भी व्यक्ति देखा होगा जो व्यंतर बाधा से ग्रसित हो और जब व्यक्ति व्यंतर बाधा से ग्रसित होता है, तो दिखता है कि यह सब कुछ यही व्यक्ति कर रहा है, लेकिन करने वाला तो कोई और होता है।

मैं द्रोणगिर में था एक व्यक्ति अपने ऊपर जलती हुयी अंगीठी से आग डाल रहा था। तत्काल दूसरा व्यक्ति गया और उसने उससे आग छुड़ाई और दूसरी जगह फेंक दी। उसने देखा कि यह व्यंतर बाधा के कारण शरीर पर आग डाल रहा है। व्यंतर तो निकलकर चला जायेगा लेकिन इसका शरीर जल जायेगा। शरीर जल जायेगा, पीड़ा होगी।

वह व्यंतर परेशान करने के लिए आग डाल रहा है ज्ञानी जीवो ! दिख यह रहा है कि व्यक्ति कर रहा है, लेकिन सच मानो, क्या व्यक्ति कर रहा है ? नहीं। ध्यान देना दो स्थिति हैं देखने की। एक सत्य की दृष्टि से देखा जाये तो क्या पुरुष नहीं कर रहा था ? हाँ वह पुरुष ही कर रहा है, तो क्या पुरुष

ही कर रहा है? तो पुरुष भी कर रहा है और पुरुष के अन्दर बैठा जो भूत तत्त्व है, व्यंतर तत्त्व है वह व्यंतर भी कार्य कर रहा है।

ज्ञानी जीवो! ध्यान देना! आचार्य कहते हैं शुद्ध और अशुद्ध दो तरह के परिणाम होते हैं शुद्ध दृष्टि से देखा जाये तो जीव अशुद्ध हो रहे हैं। आचार्य कुंद-कुंद देव भी लिख रहे हैं कि जीव मिथ्यात्व, अजीव मिथ्यात्व दो तरह का मिथ्यात्व होता है। दो तरह के कर्म होते है, भावकर्म को जीव कर्म कहा है और द्रव्य कर्म को अजीव कर्म कहा है।

यदि भाव कर्म सर्वथा जीव हो जाये तो कभी नष्ट नहीं होगा लेकिन ज्ञानी व्यवहार की देशना है कि भाव कर्म आत्मा के रागादि परिणामों को पाकर उत्पन्न हुआ है और फिर रागादि भाव कर्म आत्मा के ही विभाव परिणाम हैं। ध्यान देना लक्ष्मण जब मिट्टी पर पांव रखते हैं तो लक्ष्मण को गुस्सा आ जाता है और अपने भाई के लिए नाना प्रकार का बर्ताव करने लगता है।

ज्ञानी जीवो! राम सीता से कहते हैं सीते! यह मिट्टी झोली में रख लो। कुछ दूर पहुँचने के बाद लक्ष्मण भाई के चरणों में क्षमा मांगने लगते हैं, तब सीता कहती हैं कि स्वामी क्षमा कर दीजिये आपका ही तो भाई है। राम कहते हैं वह मिट्टी कहाँ है? लक्ष्मण से कहते हैं इस मिट्टी पर खड़े हो जाओ और लक्ष्मण ज्यों ही मिट्टी पर खड़े होते हैं और फिर ज्यों का त्यों! ऐसा भी कोई भाई होता जो लाख बार क्षमा मांगने पर क्षमा न करे, ज्यों के त्यों कोप में आ जाते हैं।

ज्ञानी जीवो! कभी द्रव्य क्षेत्र काल का प्रभाव भी आत्मा की परिणति पर पड़ता है। ध्यान देना अशुद्ध आत्मा पर प्रभाव पड़ता है। जैसे दूध पर प्रभाव पड़ेगा, घी पर क्या प्रभाव पड़ेगा? दूध पर तो पानी का प्रभाव पड़ेगा लेकिन घी में नहीं, ऐसे ही हम संसारी जीव दूध की तरह हैं, प्रभावित हो जाते हैं और मुक्त जीव घी की तरह हैं, वे प्रभावित नहीं होते हैं।

यदि तू दूध में नींबू डाल देगा तो क्या हो जायेगा? फट जायेगा, लेकिन घी को कुछ नहीं होगा।

प्रिय आत्मन् !

जिसको भूत लगा है वह दिख रहा है कि व्यक्ति क्रिया कर रहा है लेकिन भीतर में एक और आत्मा है, वह प्रेरणा दे रही है। उसी तरह से अशुद्ध निश्चय नय से व्यवहारिक दृष्टि से यह जीव द्वारा किये गये परिणाम हैं लेकिन निश्चय नय से मानो तो क्या कर्म जीव के हैं? जीव कर्म का संबंध अनादि से है। कर्म पुद्गल है, जीव चेतन है। क्या चेतन द्रव्य अचेतन द्रव्य को करेगा? नहीं करेगा।

ज्ञानी जीवों ! शुद्ध दृष्टि से भी समझो ताकि यह धारणा टूट जाये कि हम तो कर्माधीन है 'का करें कछु करई नई सकत' ज्ञानी जीवो तुम कर्माधीन नहीं हो, तुम ज्ञानाधीन हो। ज्ञानाधीन हो जाने से कर्मो को तोड़ने में समय नहीं लगता। कर्माधीन आत्माओं को आज ज्ञानाधीन करने की चर्चा है, जिस समय ज्ञान के आधीन हो जाओ, उस समय कर्म तुझे पराधीन नहीं कर पायेगा।

भैया ! पराधीन वह होता है, जो ज्ञानाधीन नहीं होता है। जो ज्ञानाधीन होता है वह स्वाधीन हुआ करता है। स्वाधीन ज्ञानाधीन हुआ करता है। कर्माधीन पराधीन हुआ करता है। कर्म पौद्गलिक हैं उन पौद्गलिक कर्मो की ऐसी क्षमता है कि जीव के परिणामों को पाकर वे परिणमन कर जाते हैं और जीव की ऐसी क्षमता है कि कर्मो के अनुरूप परिणमन कर जाते हैं। जीव कर्मों के रूप परिणमन कर जाते है एक दूसरे में निमित्त कारण हैं, जीव कर्मो में निमित्त है, राग-द्वेष करता है तो कर्म आ जाते हैं और कर्म उदय में आते हैं तो जीव उस रूप परिणमन कर जाता है। यह कर्मो के उदय को और आत्मा को भिन्न-भिन्न करता है।

आचार्य कहते हैं-

जाव ण वेदि विसेसंतरं तु आदासवाण दोह्लंपि।

अण्णाणी तावदु सो कोहादिसु वट्टदे जीवो।।

जब तक यह आत्मा आस्रव भाव को या कर्म के भाव को और आत्मा को पृथक-पृथक नहीं जानेगा, नहीं समझेगा तब तक कर्म करता रहेगा और जब तक क्रोध आदि करता रहेगा तब तक अज्ञानी बना रहेगा और नवीन कर्मो को बांधता रहेगा। ध्यान देना- माँ मेरा बेटा राजा नहीं है, न तू किसी की रानी है। न तेरा पति राजा है, माँ तेरा बेटा राजा बेटा नहीं है। तू महारानी नहीं है और तेरा पति राजा नहीं है, लेकिन फिर भी माँ कहती है? ''राजा बेटा।'' ध्यान देना-

बेटे को यह भाव हो कि मैं जैसा हूँ अपना नहीं हूँ। मेरे अन्दर बहुत संभावना है, यही संभावना का व्यक्तकरण किया जाये तो आत्मा परमात्मा बन जायेगा। शुद्ध निश्चय नय को जाने बिना हम अपनी असीम सम्भावनाओं को नहीं जान सकते हैं, राष्ट्रपति अब्दुल कलाम बच्चे से कहते हैं कि उच्च स्वप्न देखो, ऊँचे स्वप्न सोचो, हमारे कुंद-कुंद कहते हैं कि तुम शुद्ध निश्चय नय से अपनी भगवत्ता का विचार करो, तुम कहाँ हो उधर लक्ष्य मत रखो। तुम्हारी पतंग की डोरी कहाँ तक जा सकती है और पतंग कहां तक उड़ सकती है, उसका विचार रखो। खुला आकाश है तुम ऊचाईयों तक जा सकते हो।

ज्ञानी ! जो हो, वह हो नहीं। तात्पर्य यह है कि मनुष्य रूप में दिख रहे हो, किन्तु तुम मनुष्य नहीं हो। जो हो, वह नहीं हो। तुम पुरुष दिख रहे हो पुरुष नहीं हो, सत्य की दृष्टि डालो, तुम तो भगवान हो। यह कर्मकृत अवस्थायें हैं कि आज तुम मनुष्य अवस्था में बैठे हो, कल पशु गति में बैठे थे, उसके पहले नरक गति में बैठे थे। आज पुरुष बनके यहाँ बैठे हो, किन्तु इस कर्म के बंधन को तोड़ने की क्षमता आप में है।

जो पुरुषार्थ नेमिनाथ ने किया , जो पुरुषार्थ महावीर ने किया, आदि ब्रह्मा आदिनाथ ने किया, वही पुरुषार्थ हम करते हैं तो हम भी तो भगवान बन सकते हैं। एक पाषाण में प्रतिमा है, लेकिन सबको नहीं दिखती है, शिल्पी को दिखती है, शिल्पी उसी पाषाण को तराशता है। परमात्मा उसमें से प्रकट होके आ जायेगी।

तू स्वयं परमात्मा है। लेकिन आवरण के कारण तू निज परमात्मा नहीं जान पा रहा है।

प्रिय आत्मन् !

चेतना के शिल्पी कुंद-कुंद देव कहते हैं, तुम्हें जो दिखाई नहीं दे रहा है, वह मुझे दिख रहा है, तुम देख रहे हो कि मैं पुरुष हूँ मैं स्त्री हूँ लेकिन कुंद-कुंद देख रहे हैं, कि तुम्हारी इस स्त्री, पुरुष पर्याय के बीच में विराजमान परमात्मा है, यह आज नहीं कुछ भव बाद प्रकट होगा, लेकिन प्रकट होकर के ही रहेगा।

जब शेर के अंदर वह महावीर को देख लेते हैं, हाथी के अंदर पारसनाथ को देख लेते हैं अरे जीव ! हमारे ज्ञानी पुरुषों ने अकौआ के वृक्ष में महावीर को देख लिया और हम ओहो ! हम अपने पुत्र में, मित्र में, भाई में, बहिन में, माताओं में, ईश्वर को न देख पाये, तो फिर हमारी दृष्टि महावीर की दृष्टि कहाँ रही।

ज्ञानी जीवो ! एक दृष्टि अशुद्ध नय की है, क्योंकि रागादि भाव अशुद्ध नय से जीव के हैं, व्यवहार की दृष्टि से मिट्टी के घड़े को भी घी का घड़ा कहा जायेगा। लेकिन तू यह भी मत मान लेना कि जीव का ही कर्म है, नहीं ! जीव का तो ज्ञान दर्शन ही है। कर्म न जीव का हुआ है, न होगा। लेकिन निश्चय नय की जब दृष्टि डालेगें, तो जो अपने आत्म स्वरूप में लीन है, वह ही अध्यक्ष है। जो आत्मा के निकट है, वह अध्यक्ष है।

अक्ष- आत्मा

अधि- निकट

यह निश्चय तत्त्व की परिभाषा।

ज्ञानी जीवो! अशुद्ध नय से जीवकृतं परिणाम निमित्त मात्र पाकर के यह जीव कर्मो को करता है, लेकिन आचार्य कहते हैं जीव अपने ज्ञान दर्शन को करेगा कि पुद्गल को करने पहुँच जायेगा? स्वभाव दृष्टि से देखें तो एक द्रव्य में दो द्रव्यों की क्रियायें कैसे होगी? एक द्रव्य अपनी ही क्रिया को करेगा, न कि दूसरे की क्रिया को करेगा। जीव द्रव्य जीव के ज्ञान गुण में परिणमन करेगा और पुद्गल द्रव्य का परिणमन पुद्गल में होगा।

ज्ञानी जीवो! आत्मा अमूर्तिक है और कर्म मूर्तिक है रागादि भावों के कारण ऐसी शक्ति है कि वह शुभ परिणमन कर जाता है, फिर भी जब शुद्ध दृष्टि से देखा जाये, तो जैसे स्फटिक मणि सामने रखा है, स्फटिक मणि अपने आप में स्वच्छ है, लेकिन यदि उसके समक्ष एक गुलाब का फूल रख दिया जाये तो स्फटिक गुलाबी हो जाता है, लेकिन स्फटिक गुलाबी नहीं है, स्फटिक तो श्वेत ही है, लेकिन गुलाबी फूल के कारण स्फटिक मणि गुलाबी हो रहा है। लाल फूल के कारण स्फटिक मणि लाल हो रहा है। वस्तुतः यह फूल के संयोग के कारण है, यदि फूल को हटा दो तो स्फटिक मणि श्वेत दिखने लगेगा।

इसी तरह कर्म रूपी काँच जिस तरह है, उस तरह का तू दिखाई दे रहा है। यदि कर्म का कांच वहाँ से अलग कर दे, तो आत्मा सबका एक सा है। जैसे सभी बल्बों में एक सा प्रकाश है लेकिन कांच भिन्न-भिन्न रंग के लगे हैं, इसलिए भिन्न-भिन्न दिखाई दे रहे हैं। इसी तरह यहाँ पर जितने जीव हैं, सभी शुद्ध नय की दृष्टि से एक समान है। कर्मो के कांच को हटाकर तो देखो। हम कांच के प्रकाश को रंगीन मान रहे हैं, जबकि प्रकाश दृष्टि से प्रकाश रंगीन नहीं है करेंट दृष्टि से करेंट सब में एकसा है, उसी तरह आत्मा सब में एकसी है, यदि कर्मों का कांच हटा दिया जाये तो यहाँ सब ज्ञानी बिराजे हैं। सब केवल ज्ञानी कहलायेंगे।

प्रिय आत्मन्!

कल कहा था जीव निमित्त मात्र है। आज कह रहे है पौद्गलिक कर्म भी निमित्त मात्र है, क्योंकि प्रत्येक द्रव्य अपना-अपना कर्ता है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्वभाव रूपकर्ता नहीं है, पुद्गल की यह क्षमता नहीं है कि जीव को पुद्गल बना दे और जीव की यह क्षमता नहीं है कि पुद्गल को जीव बना ले। ध्यान देना भैया, आपके पास सब कुछ करने की क्षमता है, लेकिन हम कहते है कि आप क्या एक रुपये को जीव बना दोगे? नहीं बना पाओगे।

पृथ्वी के एक कण को तुम चेतन नहीं बना पाओगे। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को अपने रूप नहीं कर पाता है। जब आत्मा रागादि भावों में परिणमन कर रहा है, तो पुद्गल संबंधी ज्ञानावरणादि कर्म निमित्त मात्र बनके आ जाते हैं।

ज्ञानी जीवो! जब तक भूत प्रविष्ट है, तब तक चेष्टा वैसी चल रही है। भूत निकल जायेगा तो चेष्टा में परिवर्तन आ जायेगा, उसी तरह कर्मो का भूत हमारे अन्दर बैठा है, यदि वह कर्मभूत एक बार उतर जाये तो तू अवधूत हो जायेगा। अवधूत क्या होता है –ध्यान देना आदिनाथ को वेद में अवधूत कहा है। क्योंकि जिसके भीतर का निकल जाता भूत वह हो जाता है अवधूत। जब भूत निकल जाता है, तो जीव अपने सरल स्वरूप में आ जाता हैं। वह सन्यासी जिसने सांसारिक बंधनों तथा विषयों; वासनाओं को त्याग दिया है, वह अवधुन कहा जाता है।

यो विलंध्याश्रमान् वर्णा, नात्मंन्येव स्थितः पुमान्।
अति वर्णाश्रमी योगी, अवधूतः सः उच्चते।।

जो आश्रम तथा वर्ण भेद को त्याग कर अपनी आत्मा में लवलीन है, वर्णाश्रम रहित दिगम्बर मुनि, योगी अवधूत कहा जाता है।

जैसे जल की मलिनता निकल गयी तो जल सहज स्वरूप में आ गया। उसी तरह हे ज्ञानी तू तो सदा शुद्ध है, पानी की तरह, गगन जल की तरह शुद्ध है, लेकिन कर्मों की जैसी तूने मिट्टी पायी है, तू वैसा हो गया है। चिंता मत कर पानी गंदा नहीं है, बेटे पानी भर के ला। गुरु ने अपने शिष्य को भेजा बेटे पानी भर के ला। शिष्य गया और देखा कि पानी गंदा है, लौट के आ गया। गुरुदेव वहां का पानी तो मटमेला है, दूसरे शिष्य को भेजा, जब तक समय लग गया था और उसकी गंदगी नीचे बैठ गयी थी।

शिष्य ने उस पानी को शांति से भरा और लेके आ गया, गुरुदेव यह पानी है और शांति से रख दिया और धीरे-धीरे और स्वच्छ हो गया। ध्यान देना जीवो! जैसे वही मटमेला पानी पुनः अपने स्वरूप में आ जाता है और शुद्ध हो जाता है, उसी तरह से यह जीव भी शुद्ध हो जाया करता है।

प्रिय आत्मन् !

कुछ जीवों को ऐसी मान्यता हो जाती हैं कि हम तो कर्म सहित ही हैं, जबकि आचार्य लिखते हैं जब तक तुम अपने आप को ऐसा मानते रहोगें ऐसी मान्यता और ऐसी अज्ञानता ही संसार का बीज

है। इसलिए यह सत्य है कि तुम मनुष्य हो, परन्तु यह पूर्ण सत्य नहीं है कि तू मनुष्य ही है। पूर्ण सत्य तो यही है कि तू भी ईश्वर है। यह मैं नहीं बोल रहा हूँ यह मेरे महावीर और आदिनाथ बोल रहे हैं। इसी प्रवचन के बल पर तो शेर से कहा था कि रे वनराज तू तो जिनराज होने वाला है, और आज हिरण के पीछे दौड़ रहा है। यही निश्चय नय की शुद्ध बात जब शेर के अंदर पड़ी, तो शेर को लगा मैं भगवान हूँ। ओहो! ध्यान देना–

तुम पापी को पापी कहते हो, लेकिन मैं पापी को पापी नहीं, पापी को भी परमात्मा कहता हूँ। तुम्हारी दृष्टि में जो है, वह एक नय में बैठा है। हमारी दृष्टि में उससे भी आगे कोई बैठा है। ध्यान देना शमशान में एक स्त्री का शव पड़ा हुआ है। वही से एक कामी पुरुष निकलता है सोचता है कि यह जीवित रहती तो मैं इसे भोगता और वही से एक संत निकलता है सोचता है, काश यह स्त्री व्रत संयम धारण कर लेती तो इसका जीवन धन्य हो जाता।

ज्ञानी जीवो! पामर को पामर कहने वाले तो इस संसार में बहुत है, लेकिन पामर में भी परमात्मा को देखने वाले भगवान महावीर हैं। यह शास्त्र जो है तुम्हारी अंदर सोई हुयी चेतना को जगायेगा। यदि माँ बेटे को जगा सकती है, तो शरीर में बैठे हुये परमात्मा को जगाने के लिए तो जिनवाणी माँ के ज्ञान के छींटे चाहिये ज्ञानी।

माँ तुम अपने पुत्र को जगाती हो तो क्या करती हो? सुबह – सुबह पानी के छीटे डालती हो और बेटा जाग जाता है, लेकिन हे माँ तेरी आत्मा के अंदर जो प्रभु रूपी बेटा बैठा है, उसको जगाने वाला कौन हैं। यह जिनवाणी माँ के छींटे, यह ज्ञान के छींटे, समझे ज्ञानी।

ज्ञानी! जब ज्ञान के छींटे पड़ते हैं, तो होश आ जाता हैं और अपने भीतर का प्रभु जाग जाता है। ज्ञानी जीवो! अभी तक जो शेर हिरण के पीछे दौड़ रहा था, वही शेर वही थम गया। अब बाहर की दौड़ बंद हो गयी, अब भीतर के प्रभुता की ओर दौड़ना शुरु हो गया।

''अभी तो और धीरे चलना है, अभी तो चलने की आवाज आती है,'' ज्ञानी जीवो! जब तक यह आवाज आयेगी तब तक और धीमें चलो और चलो ऐसे चलो कि बाहर आवाज न आये। एक बार आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज बिहार कर रहे थे बिहार करते–करते साधुओं ने कहा आचार्य श्री! थोड़ा विश्राम कर लिया जाये और आचार्य श्री भी ठहर गये, पर आचार्य श्री ने इतना जरुर कह दिया कि पैरों को विश्राम देना, पर चेतना को विश्राम मत देना।

पैरों का बिहार रुक जाये, लेकिन भीतर में बिहार चालू रहे। ज्ञान दर्शन में परिणमन चालू रहे। ज्ञानी जीवो ध्यान देना, ज्ञान दर्शन में परिणमन होता रहना चाहिए।

प्रिय आत्मन् !

रागादि भाव अशुद्ध नय से जीव के ही हैं। शुद्ध नय से जीव के भाव शुद्ध होते है जैसे ज्ञान–दर्शन आदि।

जो तीन लोक में तीनकाल में कभी जीव का साथ न छोड़े, वह जीव का ज्ञान दर्शन शुद्ध भाव है, ओर कर्म छूट जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं इसलिए वह जीव के नहीं हैं। ज्ञानी जीवो, जो आत्मभूत है, वह ज्ञान दर्शन है। फिर भी कोई जीव ऐसा मान ले कि यह कर्म तो मेरा है, यदि ऐसी मान्यता रहेगी तो कर्मो से मुक्ति कैसे मिलेगी ?

जौ लौं तन में ममता है, तौ लौं ही तन बनता है।

जब तक यह मान्यता रहेगी कि शरीर मेरा है यह कर्म मेरा है, नो कर्म, भाव कर्म, द्रव्य कर्म को अपना मानेगा, जीव तब तक कर्मो से मुक्त नहीं हो पायेगा।

ज्ञानी जीवो! जब तक मैं माँ को माँ मानता रहता, पिता को पिता मानता रहता तो ज्ञानी जीवों मैं घर से मुक्त होकर के तुम्हारे बीच में नहीं आ पाता। हमने यह माना कि माता–पिता पुद्गल शरीर को जन्म देने वाले हैं, वो भी असद्भूत व्यवहार नय से। क्यों ? क्योंकि पुद्गल शरीर की भी तो रचना नामकर्म के उदय से हुयी है, माता–पिता ने कहाँ रच दिया ? यदि नाम कर्म तेरा न होता, तो माता–पिता रच भी कैसे देते, ज्ञानी कौन कहता है कि माता पिता मेरे हैं ज्ञानी जीवों शब्द दृष्टि से देखो क्या आत्मा का जन्म हुआ है ? आत्मा तो अनादि से अजर, अमर, अविनाशी है। यदि मेरी चेतन आत्मा अन्य गति से नहीं आती, तो जन्म नहीं लेता और शरीर की रचना पहले हुयी कि मैं पहले आया जीव गर्भ में आया तभी से शरीर की रचना शुरु हुयी है। जब तक जीव गर्भ में नहीं आता है, तब तक शरीर की रचना शुरु होती ही नहीं है।पिता का द्रव्य एवं पुरुषार्थ तो जीव ने ही आकर सफल किया, अन्यथा पिता की द्रव्य शक्ति बेकार चली जाती।

ज्ञानियो! ध्यान देना धरती पर आने से नौ माह पहले तुम गर्भ में आ गये थे, इसलिए तुम जिसे जन्म मानते हो, उसे आगम जन्म नहीं मानता है। आगम तो नौ माह पहले ही तुम्हारा जन्म मानता है।

इसलिए जितने जन्मतिथि लिखते हैं, सब गलत लिखते हैं, लेकिन व्यववहार से सत्य है।

क्यों ? जनपद सत्य है सम्पति सत्य है। आगम कहेगा कि तेरा जन्म तो नौ माह पहले हो गया था, जिस दिन तू माँ के गर्भ में आया था, उसी दिन तेरा जन्म हो गया था।

ज्ञानी ! वह जज भी क्या जो दोनों पक्षों की बात न सुने ? उसी तरह तुमने व्यवहार की बात सुन ली, अब निश्चय की भी सुन लो, और दोनों की सुनने के बाद समझ लो कि हमारे अन्तस में कर्म बन्ध ा बैठा है ? मैं मनुष्य हूँ, नारकी हूँ, तिर्यंच हूँ, महिला हूँ, बालक हूँ, पुरुष हूँ यह सब पर्याय का खेल है, कर्मो का खेल है

ज्ञानी ! इसमें से चेतना निकल गयी फिर कौन जल गया ? पर्याय जल गयी। अब न स्त्री बची न पुरुष बचा। जिसको देखकर तुमने निर्णय लिया था। जिसको देखकर तुमने स्त्री का निर्णय लिया था, वह सब तो पुद्‌गल को देखकर के लिया था न ज्ञानी। जो चला गया, वह आत्मा न पुरुष है, न स्त्री है, न नपुंसक है, न तिर्यच है, न नारकी है, इसलिए ज्ञानियो इस सत्य को जानना इस प्रकार यह आत्मा कर्मों के किए हुये भाव आदि से संयुक्त होने पर भी अज्ञानी जीव को लगता है कि मैं तो मनुष्य हूँ।

तन उपजत अपनी उपज जान,
तन नशत आपको नाशवान।
रागादि प्रकट यह दुःख देन,
तिनही को सेवत गिनत चेन।।

तन उत्पन्न हो गया, मैं उत्पन्न हो गया। ओ हो! आज पुत्र उत्पन्न हो गया, ज्ञानी तूने मान लिया। मान ले, खुशी मना ले, लेकिन सच तो है ज्ञानी जीव जानता है यह तो अनादि से है। तेरे घर मैं नही था तो किसी और के घर में था। ध्यान देना कहीं न कहीं था, कहीं न कहीं रहेगा, क्या अंतर पड़ता है?

यदि कर्मों को जब तक अपने रूप मानने की प्रतीति रहेगी तब तक संसार का बीज आपके पास है और बीज है वो वृक्ष बनता रहेगा। भूत की प्रवृत्ति को देखकर तू अपनी प्रवृत्ति मान रहा है। ज्ञानी, भूत की प्रवृत्ति में और सहज व्यक्ति की प्रवृत्ति में अंतर होता है, इसलिए तत्काल पहचान लेते हैं कि आखें चढ़ी हुयी हैं और क्या चेष्टाये हो रही हैं, उन चेष्टाओं को देखकर तत्काल निर्णय कर लेते हैं कि यह भूत की चेष्टा है कि यह सामान्य पुरुष की चेष्टा है। जैसे सामान्य पुरुष की चेष्टा में तथा भूत की चेष्टा में अंतर होता है। उसी तरह कर्म रहित और कर्म सहित व्यक्ति की चेष्टा में अंतर होता है, ऐसा जानना ज्ञानी !

ज्ञानी जीवो! यह कर्मों का भूत उतारना ही पड़ेगा, लेकिन एक बार निर्णय तो करो कि इसको भूत लगा भी है? यदि अपने आपको माने भी कि मुझे भूत लगा है, तो फिर कौन उतारेगा? तांत्रिक-तांत्रिक कोई भी हो लेकिन पहले स्वीकार तो करें, उसी तरह ज्ञानी स्वीकार तो करना पड़ेगा, अभी कर्म का संयोग है और कर्म जुदा हो सकता है।

जैसे भूत उतर जाता है। वैसे कर्म भी उतरता है, जैसे दर्पण के सामने हम जो पदार्थ रख देते है वह पदार्थ झलकने लगता है उसी तरह से आत्मा कर्मों से संयोग होने के कारण अपने को दुखी बना बैठा है, हमें चाहिये कि हम कौन से परिणाम करें, जिन भावों से कर्म बन्ध न हो।

यदि तुम समझ लो कि कर्म के कारण दुखी हैं, फिर ज्ञानी जीवो कभी मुक्त नहीं हो पाओगे कर्म का उदय में आना उसके आधीन है, लेकिन कर्म के उदय में सुख और दुख भोगना यह हमारे आधीन है। यदि हम ज्ञान चेतना का उपयोग करते हैं, तो दुख नहीं भोगना पड़ता है।

ज्ञानी! जितने भी कर्म के उदय में आये लेकिन जो कर्म का उदय तेरे आत्मा के कल्याण का साधन न हो, उस कर्म उदय में मत बैठना। गाड़ी आ रही है, लेकिन मेरी मंजिल तक जो गाड़ी जाती है हम उसी गाड़ी में बैठते हैं, उसी तरह वह कर्म करो, जो कर्म तुझे निष्कर्म बनाने में साधक बन जाये और जो कर्म संसार में ले जाए, नरक में ले जाये, निगोद में ले जाये, उस कर्म में हमें उपस्थिति देना ही नहीं है।

ज्ञानी जीवो! हम एक नगर से दूसरे नगर जाने के लिए पच्चीस गाड़ियाँ छोड़ने को तैयार है, क्योंकि हम तो उसी गाड़ी में बैठेगे जो हमारे नगर जायेगी। उसी तरह क्या सब कर्म भोगना अनिवार्य है? नहीं। तुमने जो थाली दिखाई है, तो क्या हम पूरा सामान खायेगें। अरे उसको डायबिटीज है उसको रसगुल्ला नहीं खाना तो नहीं खायेगा, उसी तरह से कर्म का उदय कैसा भी आये, लेकिन ज्ञानी जीव जिन कर्मों को भोगना चाहेगा भोगेगा। नहीं भोगना चाहेगा नहीं भोगेगा।

पारसनाथ स्वामी पर पत्थर बरस रहे थे, कैसे कर्म के उदय से। सुकुमाल और सुकौशल के कैसे कर्म का उदय है लेकिन कर्मों के उदय के बीच में भी ज्ञान चेतना चल रही है, यह कर्म तो पर है मुझे पर का अनुभव नहीं करना है, मुझे वेदना का अनुभव नहीं करना है, मुझे तो चेतना का अनुभव करना है।

क्या मैं कर्मों के अनुभव के लिये हूँ? कि मैं स्वसंवेदन के लिए हूँ? क्या मैं पर के वेदन के लिये बना हूँ? नहीं। मैं स्वसंवेदन के लिए बना हूँ। मुझे अपनी मंजिल जिन भावों से मिले, वही भाव मुझे बनाना है, यही मेरे जीवन का परम लक्ष्य है। इसलिए इस भाव को छोड़ देना कि ''क्या करें, कर्म के आधीन है।''

ज्ञानी जीव! कर्माधीन मात्र एक इंद्रिय जीव होता है। कर्मफल चेतना वाला मात्र एकेन्द्रिय जीव हैं भैया आपको दया नहीं आती, वह बेचारा नीम का पेड़ ऐसे बरसते पानी में खड़ा है और ऐसी गर्मी में बेचारा नीम का पेड़। कर्म फल चेतना है, वह न जा सकता कहीं, न वहाँ से हट सकता है लेकिन दो इन्द्रिय आदि जीव कर्म चेतना वाले चीटीं, केचुंआ, मक्खी, मच्छर होते तो पानी से दूर भाग जाते और हम और आप जैसे ज्ञानी जीव होते वहाँ रहते क्या ?

आप ज्ञान चेतना वाले, कर्म चेतना वाले हो कर्म फल चेतना जैसा मान लिया है (जिनने का करें, करम का उदय है भोगने पड़े) कुछ महिलाए ऐसी हैं इस संसार में जे का करें भैया करम को उदय है। ध्यान रखना इस बात को भूल जाना आज से।

कर्म का उदय है परन्तु मैं रोकर भोगने इसके लिए बंधन बध्य नहीं हूँ कि मैं कर्मो को उसके अनुरूप ही भोगूं। यह मेरा निजी प्रयोजन है कि मुझे कर्मो को कैसे भोगना है। तुमने दाल भी परोसी है, नमक भी परोसा है, मिर्ची भी परोसी लेकिन मेरी प्रक्रिया है कि मुझे कैसा खाना है। कर्म का उदय कैसा भी आये, लेकिन हमारे महापुरुषों ने कर्म के तीव्र उदय में भी इस बात को चरितार्थ किया है। चाणिक्य मुनिराज सहित पाँचसौ मुनियों के तन में आग लगा दी, लेकिन चाणिक्य मुनि अपने स्परूप में लवलीन रह गये। वह कहते हैं भेद विज्ञान, जो पर है वह जल जायेगा और जो निज है वह उर्ध्वलोक की ओर चला जायेगा।

कर्म के उदय में समता रखना जीवन का परम धन है। कैसे भी कर्म का उदय आ जाये, अरे जीवन में युद्ध की सारी शिक्षायें जो ली हैं, वे युद्ध के मैदान के लिए ही तो ली हैं, साल भर जो पढ़ाई की है वह पेपर देने के लिए ही तो की है। ज्ञानी, उसी तरह से कर्म का उदय आना, वो परीक्षा की घड़ी है, चाहे पारसनाथ की परीक्षा की घड़ी हो, चाहे महावीर की परीक्षा की हो, जब इन जीवों ने कर्म के उदय में कर्म को नकार दिया, तुम पर हो, पुद्गल हो तुम क्या करोगे ? मेरी ज्ञान चेतना के सामने ध्यान देना ज्ञानियो! ज्ञान की ढाल यदि मजबूत है, तो कर्मो की तलवार भी कुछ नहीं कर सकती है।

योद्धा के पास आवश्यक चीजें होना चाहिये, ढाल भी मजबूत होना चाहिये। रानी लक्ष्मीबाई जब युद्ध के लिए निकली झांसी से, तो एक हाथ में तलवार थी और एक हाथ में ढाल थी। हमारे पास ज्ञान की ढाल है, इस ढाल के माध्यम से आने वाले कर्मों के आक्रमण को रोका जा सकता है।

ज्ञानी जीवो! कर्मों के अनुसार ज्ञानी नहीं चलता है। नाव के अनुसार नाविक नहीं चलता है, नाविक के अनुसार नाव चलती है। उसी तरह कर्म के अनुसार मुझे नहीं चलना है।

!! ॐ नमः सिद्धेभ्यः !!

पुरुषार्थ सिद्धि का उपाय

विपरीताभिनिवेशं निरस्य सम्यग्व्यवस्य निजतत्त्वम्।
यत्तस्मादविचलनं स एव पुरुषार्थसिद्ध्युपायोऽयम्।। 15।।

अन्वयार्थ – (विपरीताभिनिवेशं) विपरीत श्रद्धानको (निरस्य) दूरकर (निजतत्त्वं) अपने स्वरूपको (सम्यक् व्यवस्य) अच्छी तरह समझकर (यत्) जो (तस्मात्) उस निजस्वरूपसे (अविचलनं) चलायमान नहीं होना है, (स एवं अयं) वह ही यह (पुरुषार्थसिद्ध्युपायः) पुरुष प्रयोजन की सिद्धिका उपाय है।

प्रिय आत्मन् !

माँ जिनवाणी! जगकल्याणी! सकल कलुष विध्वंस करने वाली है। हे जिनवाणी! तुम्हें प्रणाम। मोक्ष को प्रकाशित करने वाली जिनवाणी! तुम्हें प्रणाम। श्रेयोमार्ग को बढ़ाने वाली हे जिनवाणी तुम्हें प्रणाम। भव्य जीव के मन कमल खिलाने वाली हे जिनवाणी तुम्हें प्रणाम। धर्म से संबंध स्थापित कराने वाली हे जिनवाणी! तुम्हें प्रणाम। कर्म के बंध को छुड़ाने वाली हे जिनवाणी! तुम्हें प्रणाम। पाप को नाश करने वाली हे जिनवाणी! तुम्हें प्रणाम। पुण्य को प्रकाशित करने वाली हे जिनवाणी! तुम्हें प्रणाम। मंगलमय जिनवाणी, महावीर की वाणी है। सौभाग्यशाली श्रोताओं आज आपकी चेतना तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय शास्त्रजी! को सुनने के लिए लालायित है। यह आपके जन्म-जन्मों के संचित पुण्य कर्मों का उदय है, सातिशय पुण्य उदय है।

प्रिय आत्मन् !

वस्तु व्यवस्था को समझे बिना सम्यक् दर्शन रहता नहीं है। जैन दर्शन की तत्त्व व्यवस्था

सम्यक् दर्शन की व्यवस्था है। वस्तु व्यवस्था और जैन दर्शन की तात्त्विक व्यवस्था को न समझकर जीव कौन सी पंक्ति का क्या अर्थ है और उस अर्थ को कहां जोड़ना है वहाँ न समझ करके अन्य-अन्य जगह जोड़ता है। जैसे गलत तार फिट हो जाता है, तो फाल्ट हो जाता है। वैसे ही सूत्र के साथ अर्थ और अर्थ के साथ संदर्भ और प्रयोजन की बात है। जो अकृत्रिम वस्तुयें हैं, सुदर्शन मेरु है, उसमें प्रति समय परिणमन हो रहा कि नहीं ? हो रहा है।

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जग का करता क्या काम?

नंदीश्वर को किसने बनाया ? अकृत्रिम है, होता स्वयं जगत परिणाम। लोक को किसने बनाया ? होता स्वयं जगत परिणाम। अकृत्रिम वस्तुओं में जगत का परिणमन स्वयं हुआ करता है। पुरुषार्थ सिद्धि का पहला उपाय है, ध्यान रखना, जो अकृत्रिम वस्तु है, उनमें तो परिणमन सहज हुआ करता है। धर्म द्रव्य का परिणमन वह स्वयं सहज परिणमन है अधर्म द्रव्य का परिणमन सहज परिणमन है। काल द्रव्य का परिणमन सहज परिणमन है। धर्म, अधर्म, आकाश, काल जिसके परिणमन में तेरा हस्तक्षेप और हस्ताक्षर हो सकता है, वह परिणमन जगत का नहीं, वह जीव कृत परिणमन है और जीवकृत परिणमन को जीव को भोगना पड़ता है कि इस परिणमन को आचार्यों ने तेरी शांति के लिये कहा था कि जब समस्त पुरुषार्थ करने के बाद भी लाभ न हो पाये तो रे जीव! तू आकुल व्याकुल मत होना, दुखड़ा मत रोना, आर्त-रौद्र ध्यान मत करना, यह सोच लेना कि ऐसी भवितव्यता ही थी।

लेकिन जिसके कर्ता-धर्त्ता तथा मालिक हम हैं, जिस परिणमन के मालिक आप हैं, उस परिणमन को सहज मान लेगा तो मान्यता में मिथ्यात्व बस जायेगा। अमृतचंद्र आचार्य कह रहे हैं विपरीत अभिप्राय हृदय से निकल जाना चाहिये।

प्रिय आत्मन् !

अपने अनुसार जितना हो सकता है उतना सम्यक् पुरुषार्थ करो और पुरुषार्थ करने के बाद भी सफलता न मिले तो संक्लेश मुक्त रहना। संक्लेश मुक्त कैसे रहा जा सकता है? परिणाम को न बिगाड़ना ही संक्लेश मुक्त होना है।

कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आनो।

करोड़ों-करोड़ों उपाय बनाने के बाद भी सफलता न मिले तो संक्लेश नहीं करना। न कि

आप पापकर्म आरम्भ-सारम्भ करते रहो और यह मान के बैठ जाओ कि होता स्वयं जगत परिणाम।

ज्ञानी जीवो! यह विपरीत श्रद्धान यदि हो गया तो तुम कभी उससे मुक्त नहीं हो पाओगे। पाप बंध होता रहेगा और काम नहीं होगा। ध्यान देना- आचरण विपरीत है लेकिन श्रद्धा सच्ची है तो पाप कर्म कम बंधता है और यदि श्रद्धा ही मिट गयी तो-

दंसण भट्टा भट्टा दंसणभठ्टस्स णत्थि णिव्वाणं।
सिज्झंति चरियभट्टा दंसणभट्टा ण सिज्झंति।।3।।

दंसणपाहुण

आचार्य कुंद-कुंद भगवान लिखते हैं यदि तत्त्व पर दृष्टि सम्यक् नहीं है, ओहो ज्ञानी! तो दर्शन से भ्रष्ट हो गया और दर्शन से जो भ्रष्ट है वह भ्रष्टों में भ्रष्ट है। जिसकी श्रद्धा ही सच्ची नहीं है, जो श्रद्धा से ही गिर गया है वो आचरण से नियम से गिर जायेगा।

ज्ञानी जीवो! इसलिये श्रद्धा मजबूत होना चाहिये, यह तत्त्व व्यवस्था है। हम जगत का परिणमन तब नहीं मानते जब रोटी बनाना होती है, हम जगत का परिणमन तब नहीं मानते है, जब हमें स्नान करना होता है, जब भूख लगती है तो जगत का परिणमन नहीं मानते हैं?

ज्ञानी जीवो! ध्यान देना हमें अपनी मान्यता को सुधारना होगा। अकृत्रिम वस्तुओं में जो सहज परिणमन चल रहा है, वह सहज परिणमन है लेकिन जिसमें आपके हस्ताक्षर है, हस्तक्षेप है, प्रयत्न है, चाहे वह प्रयत्न बुद्धि पूर्वक हो, चाहे अबुद्धि पूर्वक हो, किसी भी प्रकार का प्रयत्न है तो उसमें कर्म की स्वतंत्र व्यवस्था अपने साथ होती है।

होता स्वयं जीव कृतं परिणाम।

यदि मेरा मन, वचन, काय जुड़ा है तो जगत परिणमन नहीं कहलायेगा। वह जगत परिणमन जीवकृतं परिणमन कहलायेगा और जीवकृत परिणमन का फल जीव भोगेगा। जगत भोगने नहीं जायेगा। षट् काय के जीवों को बचाना आवश्यक है। जगत परिणमन सहज होता है। सोना का परिणमन सोना में है, लेकिन जौहरी के द्वारा वह तपाया जा रहा है वह जीवकृत परिणमन है।

जैसे- आटा अपने आप परिणमन कर रहा है और तीन दिन के बाद मर्यादा रहित हो गया, यह सहज परिणमन है लेकिन आटे में आपने पानी डाल दिया तो एक घंटे में मर्यादा हीन हो गया तो यह जीवकृत परिणमन है।

आचार्य कह रहे हैं संसार में नाना प्रकार के जीव है, कोई कर्म को ही आत्मा मान लेता है। कोई सरसों के बराबर आत्मा मानते हैं तो नाना प्रकार की मान्यतायें हैं।

जिसमें पुरुष का मानसिक प्रयत्न नहीं है, वाचनिक प्रयत्न नहीं है, कायिक प्रयत्न नहीं है और अपने आप वस्तु में जो परिणमन हो रहा है वह जगत का परिणमन सहज परिणमन है, लेकिन जहां पर मानसिक, वाचनिक और कायिक प्रयत्न हो सकता है, हो रहा है या हुआ था वह परिणमन जीव कृत परिणमन है।

आपने रोटी खायी, रोटी पेट में पहुँची, बताइये कौन सा परिणमन है? जीवकृत परिणमन है। यह सहज परिणमन नहीं है। ध्यान देना– एक कम्पनी में बीड़ी बनती है, एक लाख लोगों तक बीड़ी पहुँचती है और उसके माध्यम से उन जीवों को हमने कौनसा साधन दिया है जो साधन दिया है उस साधन के अनुरूप स्वीकार करना होगा कि उसका आस्रव मुझे होगा।

यदि हम स्वीकार नहीं करेगें कि बीड़ी पहुँचाने का साधन देने से मुझे पाप लगेगा तो फिर कोई तलवार के पहुँचाने का भी स्वीकार नहीं करेगा। कोई पाप बेचने का भी स्वीकार नहीं करेगा, फिर तो मिसाल भी कोई स्वीकार नहीं करेगा ज्ञानी।

जैन दर्शन सूक्ष्म से सूक्ष्म की चर्चा करता है अभी तो आचरण सागरजी बतायेगे कि क्वाइल नहीं बेचना चाहिये। गुड़नाईट नहीं बेचना चाहिये। यह गुड नाईट, यह क्वाइल और कीटनाशक दवाईयाँ ध्यान देना यह जैन पुरुष के लक्षण नहीं है। यह जिनेन्द्र भक्त का लक्षण नहीं है। यह जैन धर्म का आचरण नहीं है। संकल्पी हिंसा जैन धर्म में त्याज्य है और गुड नाईट संकल्पी हिंसा में है।

ज्ञानी! एक रात में तूने सैकड़ों मच्छरों को जहर पिलाया है। एक–एक रात में सैकड़ों मच्छरों को जहर पिला रहे हो सो गये हो, तुम सो गये और वे सदा के लिए सो गये हैं। खिड़की बंद, दरवाजे बंद कहां से निकल के जायेगें मच्छर, बोलो ज्ञानी, सोचो भैया सत्य सुनना बहुत कठिन होता है।

लेकिन ध्यान देना यही जिनवाणी की देशना ही तुम्हारे लिए संसार भ्रमण से बचा सकती है। जब तुम एक गुड नाईट को यूज करते हो तो ध्यान देना जब गुड नाईट की एडवर्टाईज आती है तो उसमें मच्छरों को खाना बताया है।

ध्यान देना आचरण सागर जी ने द्रोणगिरी में गुड नाईट को खोला, ऑलाउट को खोला तो उसमें सात–आठ मच्छर तो अंदर थे ज्ञानी। माताओ। जब हम आपसे यह कहते हैं कि गैस जलाना तो देखकर जलाना, शोध कर जलाना तो फिर गुड नाईट यूज कर रहे है, संकल्पी हिंसा चल रही है और

जागते-जागते हिंसा होती तो बात अलग ही थी, लेकिन तू तो सोते समय त्रस जीवों की हिंसा, स्थावर की हिंसा तो अलग ही थी, लेकिन त्रस की हिंसा कर रहे हो ज्ञानी!

हे महावीर के अनुयायियों महावीर ने कहा है श्रावक हो तो श्रावकाचार के अनुसार जीवो और मुनि हो तो मूलाचाार के अनुसार जिवो।

जिवो और जीने दो!

श्रावकाचार को सामने रखो कि श्रावकचार में लिखा है कि आलाउट लगा सकते है। किस श्रावकचार में लिखा है कि आप रात्रि में जहर छोड़ते हुये सो रहे हैं।

ज्ञानियो! ध्यान देना श्रावक बन के जिओगे तो स्वर्ग की ओर जाओगे और श्रावक बन के नहीं तो फिर जहाँ सब जाने वाले हैं, उसमें जाओगे। ज्ञानी जीवो। वस्तु तत्त्व को समझिये यह **दिगम्बर श्रमण की देशना भव भ्रमण को रोकने वाली है।**

प्रिय आत्मन् !

मैंने तो सुना है राजा वज्रजंघ और श्रीमती के रात्रि में सोते समय सेवक ने धूप जला दी और भी पदार्थ जला दिया, खिड़की बंद कर दी और उस अजवाइन आदि के धुयें से उनकी श्वांस रुक गयी और उनका प्राणांत हो गया, तो भोगभूमि में जाना पड़ा, देवगति नहीं हो पायी। उन्होंने मुनियों को दान दिया था, उसके फलस्वरूप भोगभूमि मिल गयी अन्यथा नियम से तिर्यंच गति होती।

जीवो! यह ध्यान रखो, यदि क्वाइल लगाते समय, लगे-लगे तेरा मरण हो गया तो वह मरण कैसा मरण कहलायेगा? अति रौद्र ध्यान चल रहा है। जितने समय हिंसा चल रही है, उतने समय अति रौद्र ध्यान चल रहा है, इसलिए ध्यान देना।

ओहो ज्ञानी! मैं कोटा में था मैंने देखा एक विद्यार्थी छत पर बैठा एक बल्ला लिये था और मच्छरों को चट-चट मार रहा था, ओहो ज्ञानी! उसमें करेंट था और करेंट के माध्यम से मच्छरों को चट-चट करके, ओहो करेंट से जो मच्छर मर जाता हो, वह जलके राख हो जाता है।

ज्ञानी! आज तू मच्छरों को मार रहा है। आज आलाउट के माध्यम से मच्छरों को मार रहा है कल दिन वही मच्छर जब दूसरी पर्याय में तुझ से ज्यादा शक्तिशाली होंगे, तो उसी तरह तुम्हारा भी प्राणांत करेंगे। इसीलिए ध्यान रख लेना ज्ञानी, यह तत्त्व की देशना जब कछुआ के पैर काटने वाले वह कौन से मुनि हैं जिन मुनि के हाथ पैर पुत्र ने ही काट दिये थे? धर्मसिंह मुनि।

जब धर्मसिंह राजा था। अचानक हास्य विनोद में देखा कि यह व्यक्ति कछुआ लिये है, उसने सोचा मेरी तलवार कैसी चलती है और तलवार चलाई कछुआ के हाथ पैर कट गये। ज्ञानी जीवो। वह कछुआ उसी धर्मसिंह राजा के घर में जाकर के पुत्र हो गया, ध्यान देना ज्ञानियों! यह मत समझ लेना कि यह मच्छर मर के क्या करेगा? मच्छर मरकर तेरे ही घर में तेरा पुत्र हो सकता है।

जब कछुआ मर के उसी धरमसिंह के यहाँ पुत्र हो गया और पुत्र होने के बाद पूरे राज्य का अधिकारी हो गया। पिता ने दीक्षा ले ली, सन्यास ले लिया। लेकिन सन्यास लेने के बाद जब वहीं मुनि अवस्था में उस नगर में आये तो अचानक वैर भाव याद आ गया पुत्र को ओहो! इनने तो मेरे पूर्व भव में कछुआ की पयार्य में पैर काटे थे और उसने हाथ पैर काट दिये मुनि के, क्यों? पूर्व भव में किये गये कर्मों का फल हमें भोगना पड़ता है और आज जो करेंगे, उसका फल आगे भोगना पड़ेगा।

हे ज्ञानी जीवो! आज की तत्त्व देशना यह है कि

आउट होने से पहले आल आऊट का त्याग।

प्रिय आत्मन् !

आज कल लोग कहते है बेटा परेशान करता है, ध्यान देना आज की तत्त्व देशना से सुनते जाना कि आलाउट घर में से आउट कर देना। ज्ञानी! एक आलाउट बेचने से तुझे दो रुपये मिलते हैं, तो क्या दो रुपये के लिए मच्छरों को मारा जाये, यह मच्छर मारने की मशीन है। आलाउट हिंसा का उपकरण है यह हमारे आचार्यों ने लिखा है कि श्रावक हिंसा का उपकरण नहीं दे सकता है। अपने यहाँ तो दूसरे घर के लिये आग भी नहीं देते हैं। क्योंकि हिंसा का साधन है न जाने तुम क्या करोगे और मच्छर मारने की मशीन दे, या कीटनाशक दवाईयाँ बेचें, यह महापाप है।

ज्ञानियो! कीटनाशक दवाईयाँ बेचने वालों के लिये आचार्य अकलंक देव राजवार्तिक में लिखते हैं यह नरकगामी जीवों के चिन्ह हैं। ईटों के भट्टे लगाना महा हिंसा, महा हिंसा। ईटों का एक भट्टा लगाओ तो कितने सर्प कितने बिच्छु क्या-क्या मर जाते है ज्ञानी जीवो! अनेक जीव जिंदा जल जाते है महा हिंसा है।

बह्वारम्भ-परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः।

बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह करने से नरक गति का बंध होता है। तत्व ज्ञान के अभाव में हिंसा होती है।

प्रिय आत्मन् !

माताओ अपने घर में जाकर बोल देना पति देव से तुम कहते तो हो, जनम-जनम तक साथ रहे तुम्हारा हमारा। ओहो भैया अच्छी तरह सुनना। अभी मैं बरसात में आ रहा था, जब बरसात के समय में मैंने देखा एक व्यक्ति बोला महाराज यह क्या है? एक व्यक्ति बोला ट्राला है, दूसरा बोला गिजाई है। मैंने कहा यह कुछ नहीं है। यह है जनम-जनम का साथ एक के ऊपर एक जीव चल रहे थे। मनुष्य गति में वादा करके आये थे कि जनम-जनम का साथ रहे तुम्हारा हमारा, उसका फल गिजाई पर्याय में मिल रहा है।

यदि पाप नहीं छोड़ा तो ध्यान देना चाहे घर में पुरुष पाप करें, चाहे स्त्री पाप करें। यदि स्त्री उस कार्य की अनुमोदना कर रही है। ओहो ज्ञानी जब तू पैसे दिन भर कमाता है और शाम को जाकर के श्रीमती के हाथ में देता है तो श्रीमती प्रफुल्लित हो जाती है। आहा। आज तो आप अपनी मुस्कान देकर अनुमोदना कर रही हैं कि आज दिन भर में पाप किया था, उस पाप की अनुमोदना तुमने कर दी।

इसी तरह पुरुष वर्ग ने व्यापार किया, लेकिन जो पैसा आया तुमने अनुमोदना की है, अनुमोदना दिन भर के पाप की अनुमोदना हुयी है। इसीलिए हे माताओं यदि रानी चेलना अपने पति को तीर्थंकर बना सकती है, तो आप कीटनाशक दवाईयाँ बेचने से नहीं रोक सकते हो। क्या आप लोग हिंसक उपकरण बेचने से नहीं रोक सकते हो। बोल देना एक वस्तु नहीं बेचोगे तो कितना नुकसान होगा। वह कहेगें हमको दो सौ रुपये का नुकसान होगा। आप कह देना हम छह हजार रुपये महीने कम खर्च करेगें। लेकिन तुम यह वस्तु मत बेचो। ध्यान देना।

ज्ञानियो! मैं सत्य बात कह रहा हूँ एक वस्तु न बेचोगे, दो वस्तु न बेचोगे तो कितना नुकसान होगा पैसे का नुकसान होगा, लेकिन यदि पुण्य कर्म का योग होगा तो दूसरे वस्तु के विक्रय से भी उससे ज्यादा लाभ हो सकता है। ज्ञानियो के लिये पैसे कमाने से कुछ नहीं होता। यदि तुमने उतने मच्छरों को कष्ट पहुँचाया है तो घर में एक बीमार हो जायेगा तो जीवन भर की कमाई भी एक बार में लग जायेगी।

महाराज! घर में स्वस्थ क्यों नहीं रहते। अरे ज्ञानी, जब प्रतिदिन सैकड़ों मच्छरों को जहर पिलाया है तो तू स्वस्थ कैसे रहेगा? ध्यान देना ज्ञानी जीवो! जो कीटनाशक दवाईयों के दुकान वाले हों, कितनी दवाई बेच रहे ओहो ज्ञानियो! कितने जगह के जीव मार रहे हैं जितने जगह जितने क्षेत्र के जीव मरे ज्ञानी जीवो, उतनी बार इस जीव को भी मरना पड़ेगा, कहाँ मरेगा? निगोद की पर्याय में। ध्यान देना।

यह विभवसागर की वाणी नहीं, यह अमृतचंद्र की देशना और भगवान महावीर की वाणी है। भैया जयकुमार जैन रिंकू रेडिमेड के भाई जबलपुर में मेरे पास आये महाराज श्री मैं एक शास्त्र छपवाना चाहता हूँ मैंने कहाँ भैया क्या करते हो, बोले महाराज खेती करता हूँ। मैंने कहा भैया आप कीटनाशक दवाईयों को यूज करते हो, बोले करता हूँ। मैंने कहा एक काम करिये आप पचास हजार का शास्त्र छपवाते हैं, आप एक काम करिये शास्त्र नहीं छपवाइये, पचास हजार का फायदा जितनी जमीन से होता है उतनी जमीन में कीटनाशक दवाईयाँ नहीं छिड़किए, यही शास्त्र दान है बोले महाराज आज से आप से नियम लेते है कि पाँच एकड़ जमीन में कीटनाशक दवाईयाँ नहीं छिड़केगें।

उन्होंने नियम क्या लिया, दूसरी साल आये, बोले महाराज सबसे अच्छी फसल तो उसी खेत में हुयी है, जिस खेत में मेरा नियम था कि दवाईयाँ नहीं छिड़कूंगा। ज्ञानी जीवो! हम दूसरे जीवो का मरणकर अपना भरण–पोषण करें, यह नहीं होगा।

प्रिय आत्मन् !

हम यह बताना चाहते हैं भगवान आदिनाथ ने कृषि व्यवस्था दी है, लेकिन आदिनाथ की कृषि व्यवस्था में किसी जीव के हिंसा का विधान नहीं था। कीटनाशक दवाईयों का निर्माण आदिनाथ ने नहीं किया है। ध्यान देना भगवान आदिनाथ के विज्ञान में कीटनाशक दवाईयों का प्रवेश नहीं है इसलिए ध्यान देना आप यह तो कहते हैं कि आदिनाथ का संदेश है।

''ऋषि बनो या कृषि करो''

लेकिन ऐसी कृषि मत करना जिस कृषि में कीटनाशक दवाईयों का यूज हो और ऐसा विक्रय मत करना, जिसमें कीटनाशक दवाईयाँ बेचना पड़ें।

प्रिय आत्मन् !

जब तक श्रद्धा सच्ची नहीं आयेगी कि हमारे जैन दर्शन में क्या व्यवस्था है। हमारा जैनाचार क्या कहता है। क्या श्रावकाचार में मैरे लिये मंजूरी है? व्यापार के पहले देख लेना कि श्रावकाचार में इसकी स्वीकृति है कि नहीं ? ध्यान देना ज्ञानियो! श्रावकाचार में स्वीकृति नहीं है तो आचार्य ने स्पष्ट लिख दिया, यदि कोई व्यक्ति ईटों का भट्टा लगाये तो उसके यहाँ पर आहार करने मत जाना। यदि कोई जैन व्यक्ति कीटनाशक दवाईयाँ बेचता हो, तो उसके यहाँ पर आहार करने मत जाना।

भैया! इतनी पाप की कमाई का आहार करके आओगे तो पुण्य के परिणाम पैदा नहीं होगे।

ध्यान देना एक मुनि श्रावक के यहाँ पर आहार करने के लिए गया और मुनि आहार करके जब लौटने लगा तो सेठानीजी का हार चम चमाता हुआ दिखा और मुनिराज ने वह हार अपने कमण्डलु में डाला और चला आया। आने के बाद सुबह से शाम तक स्वाध्याय के बाद शौच बगैरह से निंवृत्त होने के बाद जब देखा कि कमण्डलु में यह हार आ गया, यह हार कहाँ से आ गया। इसको कौन लाया, इसमें हार किसने डाल दिया। अरे! मैं कल आहार के लिये गया था, तो उस समय मेरे परिणाम हार को देखकर के चोरी के हुये। अरे मैं मुनि, मेरे परिणाम ऐसे क्यों हो गये आज तक मेरे परिणाम ऐसे नहीं हुये, गृहस्थ दशा में मैंने ऐसा नहीं किया, जरूर उसके यहाँ का धन चोरी का होगा, इसलिए मेरे परिणाम चोरी के हुये।

ज्ञानी जीवो! सोचिये यदि हमारी हिंसा की कमायी से किसी को अन्न भी खिलायेंगे तो उसका कल्याण नहीं होगा। ओहो! महाराज तत्काल दूसरे दिन आहार को गये। श्रावक ने पड़गाया, उनने हार रखा और बिना आहार के लौट आये। भैया कल आहार किया था तो चोरी का भाव जागा, अब आहार मुझे नहीं करना। ज्ञानी जीवो, यही सत्य है।

विपरीताभिनिवेशं निरस्य सम्यग्वयवस्य निजतत्वम्।
यत्तस्माद विचलनं स एव पुरुषार्थ सिद्धयुपायोऽयम् ।।5।।

प्रिय आत्मन् !

आप श्रावक हो। क्या श्रावक को संकल्पी हिंसा करना चाहिये? क्या यह जैन दर्शन संकल्पी हिंसा की स्वीकृति देता है? नहीं देता है। सुनने से कल्याण नहीं होगा, समझने से होगा और समझने के बाद आचरण करने से कल्याण होगा।

भारतीय संस्कृति का प्राण अंहिसा परमो धर्म, दया धर्म का मूल है। इसलिये मैं इतना ही नहीं कहता हूँ कि जैन धर्म के लोग इसका त्याग करें, मैं तो कहता हूँ कि जो दया धर्म के उपासक हैं, उस प्रत्येक व्यक्ति को आलाउट का त्याग करना चाहिये।

न राम ने कहा कि मच्छर मारो, न कृष्ण ने कहा कि मच्छर मारो। ज्ञानियो! राम चौदह वर्ष के लिये वनवास को गये, तो क्या आलाउट को साथ में लेके गये। ओहो ज्ञानी जंगलों के मच्छरों को तूने जाना ही नहीं कि क्या होते हैं, लेकिन वह तो और कठोर होते हैं और बड़े-बड़े होते हैं, लेकिन राम ने उस जंगल में उपयोग नहीं किया इन चीजों का और आज तू घर में उपयोग कर रहा है। अब ऐसा मत करना।

जिन श्रीराम के लिये इतनी बड़ी सेना, इतने बड़े अस्त्र-शस्त्र मिल सकते हैं समय पर तो क्या उन्हें साधन नहीं मिल सकते हैं। लेकिन जानते हैं हमें किसी जीव की हिंसा नहीं करना है। ओहो ज्ञानी! ध्यान देना कभी मैं सुनाऊँगा राम के विषय में और आगे कि राम नंगे पैर चल रहे हैं, सीता नंगे पैर चल रही है, लक्ष्मण नंगे पैर चल रहे हैं, लेकिन कभी राम के मन में तो यह भी भाव नहीं जागा कि किसी जानवर के चमड़े के चप्पल बनवा लें।

ऐसे आदर्श पुरुषों की चर्चा होती है। भारतीय संस्कृति में सभी व्यक्ति किसी पुरुष को मानते है तो एक मात्र वह पुरुष हैं श्रीराम। चाहे वह जैन धर्म हो, चाहे बौद्ध धर्म हो, चाहे कोई भी धर्म हो, सब धर्मों में आदर पूर्ण स्थान दिया जाता है तो राम के लिये और सर्वोत्तम आदर्श माना है, तो जैन धर्म ने माना है।

यह सत्य है कि हिन्दू धर्म राम को इष्ट मानता है। आराध्य मानता है। लेकिन सर्वोच्चतम गुणों की चर्चा यदि किसी शास्त्र में है तो वह जैन शास्त्र में है। राम को राजा तो वाल्मिकी ने माना है, राम को राजा तो तुलसी ने माना है लेकिन राम को परमात्मा बनाया है रविषेण आचार्य ने जैन शास्त्र में।

ज्ञानी जीवो! ध्यान देना राम तुम्हारे यहाँ राजा तक सीमित हैं, लेकिन हमारे यहाँ राम परमात्मा तक पहुँच गये हैं। इसीलिए कभी जैन शास्त्रों को पढ़कर देखना कि राम का चरित्र कितना अच्छा है। पद्मपुराण में कि हर गहराई को छुआ है, तो जैनाचार्य ने छुआ है।

विपरीत श्रद्धान का हट जाना ही सत्य ज्ञान है। जैसे अंधकार के हटते ही प्रकाश हो जाता है, उसी प्रकार विपरीत श्रद्धा हटते ही सम्यक् दर्शन प्रकट हो जाता है। आत्म तत्त्व को जानने से सम्यक् ज्ञान होता है। पर को जानने से सम्यक् ज्ञान नहीं होता। ज्ञानियो! आपको राजनीति का ज्ञान है लेकिन राजनीति के ज्ञान से सम्यक् ज्ञान नहीं होता।

ज्ञानी जीवो! आत्म तत्त्व के ज्ञान से सम्यक् ज्ञान होता है। जिसे तुमने जाना है, उसी में ठहर जाना चारित्र है। आत्मा को जानो, जानने के बाद आत्मा में ठहर जाना। जैसे पानी को जानने के बाद पानी को पी लेना बुद्धिमानी है।

पर द्रव्यन तें भिन्न आप में, रुचि सम्यक्त्व भला है।
आप रूप को जानपनो सो, सम्यग्ज्ञान कला है।
आप रूप में लीन रहे थिर, सम्यक् चारित्र सोई।
अब व्यवहार मोक्ष मग सुनिए, हेतु नियत को होई।।

आत्मा के स्वरूप में लीन हो जाना सम्यक् चारित्र है। अपने आत्म स्वरूप से चलित नहीं होना, अपने आत्म स्वरूप में लीन होने का नाम है चारित्र। ध्यान देना न सोने की हिरणी किसी ने पहले सुनी है, न किसी ने आज सुनी है, न किसी ने देखी है, न किसी ने निर्मित्त की है, लेकिन क्या हो गया।

न निर्मत्तः के न च पूर्व द्रष्टः
न श्रूयते हेममयी कुरंगी।
तथापि तृष्णा रघु नन्दनस्य,
विनाशकाले विपरीत बुद्धि।।

यह भी लिखा है कि सोने की हिरणी किसी ने निर्मित नहीं की। किसी ने बनायी नहीं, किसी ने देखी नहीं, किसी ने सुनी नहीं, फिर भी हे राम! तू कैसे दौड़ गया। क्या करूँ विनाशकाले विपरीत बुद्धि। अरे ज्ञानी जीवो! ध्यान देना जब राम अपने स्थान से चले, तो क्या हो गया? सीता का हरण हो गया। ज्ञानी जीवो! आत्म स्वरूप से विचलित होने पर ही सब चला जाता है।

ज्ञानी! श्रीराम सम्यक् दर्शन का प्रतीक हैं। लक्ष्मण ज्ञान का प्रतीक हैं। सीता चारित्र का प्रतीक हैं। कैसे प्रतीक हैं जहाँ राम का जन्म हुआ है वहीं लक्ष्मण का जन्म हुआ है। जहाँ सम्यक् दर्शन पैदा होता है, वहीं सम्यक् ज्ञान पैदा होता है। जहाँ राम रहते हैं वहाँ लक्ष्मण रहते हैं। जहाँ सम्यक् दर्शन रहता है, वहीं सम्यक् ज्ञान रहता है। राम बड़े हैं, लक्ष्मण छोटे हैं। सम्यक् दर्शन बड़ा है सम्यक् ज्ञान छोटा है सम्यक् दर्शन कारण है, सम्यक् ज्ञान कार्य है।

राम कारण रूप है तो लक्ष्मण कार्य रूप कार्य करते हैं। ज्ञानी जीवो! राम तो श्रद्धा के प्रतीक है, तो लक्ष्मण ज्ञान के प्रतीक हैं और ध्यान देना जहाँ श्रद्धा पक्की हो, ज्ञान पक्का हो, तो चारित्र भी चला आता है। जहाँ श्रद्धा पक्की हो, ज्ञान पक्का हो तो चारित्र भी चला आता है। जहाँ राम रूपी सम्यक् दर्शन और लक्ष्मण रूपी सम्यक् ज्ञान होगा, तो चारित्र रूपी सीता जनक पुरी से चलकर के अयोध्या में पधार गयी।

सीता ने किसको वरा? राम को वरा, अरे ज्ञानी चारित्र किसको वरता है? चारित्र? श्रद्धा का वरण करता है, इसलिए चारित्र पक्का होना चाहिये। चारित्र पक्का है तभी तो चाहता है कि श्रद्धा पक्की होना चाहिये। इसलिए सीता चारित्र की प्रतीक हैं।

श्रद्धा कहीं जाये तो पहले ज्ञान को सावधान रखे। पहले ज्ञान रुपी लक्ष्मण चला गया युद्ध के लिये। ओहो! और फूक दे दी आवाज दे दी, तो राम चले गये। ज्ञानी पहले ज्ञान चला जाये, फिर श्रद्धा चली जाये, तो फिर चारित्र कैसे रह सकता है फिर चारित्र भी चला जाता है। यदि चारित्र को सुरक्षित रखना है, तो फिर श्रद्धा के हवाले कर देना और श्रद्धा को ज्ञान के हवाले रहना चाहिये, जहाँ तीनो रहेंगे। राम, लक्ष्मण और सीता ये अयोध्या से तीन गये थे।

ज्ञानी जीवो! आचार्य कहते हैं सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र राम, लक्ष्मण, सीता को मानता है। मैं कहता हूँ मेरा राम सम्यक् दर्शन है, मेरा लक्ष्मण सम्यक् ज्ञान है और मेरी सीता सम्यक् चारित्र है, इन तीनों की एकता मोक्ष का मार्ग है।

''सत्य मेव जयते''

यह सत्य है यही परम सत्य है कि राम सम्यक् दर्शनी है। सीता का अपहरण हुआ, बताइये किस कारण हुआ, यदि राम छोड़ के न जाते, लक्ष्मण छोड़ के न जाते तो क्या सीता का अपहरण हो पाता ? नहीं। सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञान न छूटे तो कभी सम्यक् चाीत्र नहीं छूटता है ज्ञानी जीवो! सम्यक् दर्शन मजबूत है और सम्यक् ज्ञान मजबूत है और चारित्र चला भी जाये तो फिर वापिस आ जाता है।

जैसे- राम मजबूत थे, लक्ष्मण मजबूत थे तो उन्होंने अपनी सीता को वापिस ले लिया ज्ञानी। उसी तरह तुम्हारी श्रद्धा मजबूत होना चाहिये राम की तरह। ज्ञान मजबूत होना चाहिये लक्ष्मण की तरह। तो चारित्र रूपी सीता आ जायेगी।

जैसे राम और लक्ष्मण अपने पुरुषार्थ से सीता को वापिस प्राप्त कर लेते हैं, उसी तरह से सम्यक् दृष्टि आत्माओं सम्यक्ज्ञानी आत्माओं को अपने पुरुषार्थ से चारित्र रूपी सीता को प्राप्त करना ही जीवन का ध्येय होना चाहिये। अरे! राम, लक्ष्मण, सीता तो यह व्यवहार में है, निश्चय में तो मेरा आतम ही तो आतम राम है और आत्मा में बैठा ज्ञान ही मेरा लक्ष्मण है और आत्मा में बैठा चारित्र ही मेरी सीता है।

जैसे- हनुमान के हृदय में तुमने चित्र देखा कि राम, लक्ष्मण, सीता बैठे हैं। ज्ञानी जीवो! हनुमान की यह कल्पना समझना, लेकिन परम सत्य यह है कि हनुमान ने अपने हृदय में सम्यक् दर्शन रूपी राम को, सम्यक् ज्ञान रूपी लक्ष्मण को और सम्यक् चारित्र रूपी सीता को प्रकट कर लिया था।

सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र मेरे भीतर हैं यही मेरे राम, यही मेरे लक्ष्मण और यही मेरी सीता है। एक आत्मा में सम्यक् दर्शन भी है सम्यक् ज्ञान भी है और सम्यक् चारित्र भी है।

जैसे- पिपरमेंट, कपूर और अजवाइन का फूल तीनों एक शीशी में डाल देते है, तो अमृतधारा बन जाती है। उसी तरह से सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र यह तीनों मेरी हृदय रूपी शीशी में है, उसे रत्नत्रय कहते हैं। यही मेरे लिए कल्याणकारी है।

।। ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।।

*** * * ***

मुनियों की अलौकिक वृत्ति

अनुसरतां पदमेतत् करंविताचार नित्यनिरभिमुखा ।
एकांतविरतिरूपा, भवति मुनीनामलौकिकी वृत्तिः ।। 16 ।।

अन्वयार्थ - (एतत्) इस (पदं) पदको (अनुसरतां) अनुसरण करने वाले अर्थात् रत्नत्रय को प्राप्त हुए (मुनीनां) मुनियोंकी (करंविताचातार नित्यनिरभिमुखा) पापमिश्रित आचार से सदा परांङ्.मुख (एकांत-विरतिरूपा) सर्वथा त्यागरूप (अलौकिकी वृत्तिः "भवति") लोकको अतिक्रम किए हुए वृत्ति होती है।

प्रिय आत्मन् !

माँ जिनवाणी! जगकल्याणी, अरिहंत भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य आचरित, उपाध्याय उपासित, सर्वसाधु साधित, जीव तत्त्व प्रबोधिनी, अजीव तत्त्व विवेचनी, सर्वास्रव निरोधनी, कर्म बंध विमोचनी, संवर पथ प्रदायिनी, निर्जरा, निर्झरणी, मोक्ष-महल धारिणी, पाप-ताप-संताप, हारिणी, विश्वकल्याण कारिणी, हे जिनवाणी माँ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल पद में श्रुत सूर्य का उदय हो।

गंगा की धार में, मलय की वयार में, वीणा के तार में, मजीरा की झंकार में, राष्ट्र के गान में, देश के संविधान में, भारत के संविधान में एक ही स्वर गूंजता है। जय जिनवाणी! जय महावीर।

ज्ञानियों के ज्ञान में, ध्यानियों के ध्यान में, दानियों के दान में, प्राणियों के प्राण में, विरागियों के विराग में, त्यागियों के त्याग में, मालियों के बाग में, विद्या और विराग में एक ही स्वर गूंजता है, 'जय जिनवाणी ! जय महावीर।'

प्रिय आत्मन् !

जल के समान निर्मल, आकाश के समान निर्लेप, चंदन के समान सुगंधित, बर्फ के समान शीतल, बैल के समान भद्र परिणामी, हाथी के समान स्वाभिमानी, सिंह के समान पराक्रमी, सर्प के समान अनियत विहार करने वाले धरती के देवता परम पूज्य प्रसन्न आत्मा जिनकी वृत्ति अलौकिक हुआ करती है। लोक में रहते हैं। परन्तु लोक में रहते हुये भी निजलोक में रहते है।

प्रिय आत्मन् !

आज अमृतचन्द्र देव सूत्र दे रहे हैं। :-

मुनिनामलौकिकी वृत्तिः।

पुरूषार्थ सिद्धि उपाय

हे प्रभु! सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चरित्र के धारी! श्रद्धा, ज्ञान और चर्या की मूर्ति! निर्ग्रंथ मुनियों की वृत्ति कैसी होती है? प्रवत्ति कैसी होती है? चेष्टा कैसी होती है?

प्रिय आत्मन् !

परम तपोधन, धन्य-धन्य उस निर्ग्रंथ दशा को जिसका वर्णन हम करने जा रहे हैं। भगवान के प्रतिनिधि, अरिहंत भगवान रूपी वृक्ष के बीज निर्ग्रंथ साधु कैसे हुआ करते हैं? सम्पूर्ण दु:खों से मुक्त होने के लिये विश्व कल्याण की भावना से भरे हुये नवनीत के समान कोमल और दुग्ध के समान शुक्ल लेश्या के समान परिणाम वाले होते हैं- दिगम्बर साधु।

प्रिय आत्मन् !

जिनकी निर्मल चेतना में, दर्पण के समान सभी मानव एक समान झलका करते हैं। धन्य हैं वे योगी जो इस कलिकाल में भी एक समय भोजन, एक ही समय पानी लेते हैं, श्रावक के अनाज के दाने लेते है, और उस अनाज के दाने-दाने को जिनवाणी का अक्षर बना-बनाकर लौटा देते हैं।

मुनिनामलौकिकी वृत्तिः।

ओहो! ज्ञानी! वे धन्य है, जो श्रावक का चुल्लुभर पानी पीते हैं, और मुख से अमृत वाणी निकाल देते हैं, ध्यान देना - ग्वाला दूध को खोया बना सकता है, लेकिन पानी को अमृत बनाने वाले कोई हैं तो-मुनिराज।

मुनिनामलौकिकी वृत्तिः।

ज्ञानी जीवो। इस धरती पर जो मानव जन्म लेते हैं, अधिकाशतः सारे जग के जीव कपड़े धारण कर लेते हैं। लेकिन जो एक बार कपड़े उतारते है, और फिर जीवन भर कपड़े को धारण नहीं करते हैं धन्य हैं वे ।

मुनिनामलौकिकी वृत्तिः।

ज्ञानी जीवो। जहाँ मनुष्य अन्न का कीड़ा बना बैठा है दिन में कितनी बार खायें, कितनी बार पीयें, पता नहीं ऐ चाहे ग्रीष्मकाल का सूरज सतायें, चाहे शीतकाल की शीतलहर सताये, चाहे बरसात लगी हो लेकिन जिनकी चर्या में एक ही बार भोजन-पानी है, फिर भी जो समता की निर्विकार राजधानी हैं।

मुनिनामलौकिकी वृत्तिः।

ज्ञानी जीवो! धन्य हैं, जिन्होनें व्यवहार जीवन को चलाने के लिय पिच्छी कमण्डलु धारण किया, जिनकी पिच्छी विश्व के लिय दया का संदेश देती है और जिनका कमण्डल दुनिया को अर्थशास्त्र सिखाता है।

मुनिनामलौकिकी वृत्तिः।

अहो ज्ञानी ! कैसे कमाना चाहिए और कैसे खर्च करना चाहिये ? सीखना हो तो साधु का कमण्डलु उठाकर देख लेना। ध्यान देना साधु के कमण्डलु में जल भरने का स्थान बड़ा होता है। और निकालने का स्थान छोटा होता है।

ज्ञानी जीवो! जिनका कमण्डलु दुनियाँ का सबसे बड़ा अर्थशास्त्र हो, और जिनकी पिच्छी दुनिया का सबसे बड़ा दयाशास्त्र हो, उन दिगम्बर मुनियों को मेरा प्रणाम है।

मुनिनामलौकिकी वृत्तिः।

ध्यान देना, ज्ञानी जीवो। मुनि को बोलने की आवश्यकता ही नहीं। महाराज! आपने आचरण सागरजी का प्रवचन नहीं कराया? ओहो ज्ञानी!

अवाग विसर्गं वपुसा निरुपयन्तं मोक्षमार्गः।

बिना बोले ही मोक्ष मार्ग का उपदेश देने वाली जिनकी मुद्रा है।

ज्ञानी जीवो! आपकी एक माता है। लेकिन मेरी माता आठ हैं। ओहो! तुम एक माता के साथ चलते हो। ज्ञानी जीवो लेकिन दिगम्बर मुनि की अष्ट प्रवचन माता है, एक माता इनको चलना सिखाती है, और दूसरी माता जिन्हें बोलना सिखाती है, तीसरी माता जिन्हें खाना सिखाती है, चौथी माता जिनको उठना-धरना सिखाती है, और पांचवी माता जिन्हें मल-मूत्र क्षेपण करने की कला सिखाती है, ऐसी पांच माताएं है इनके साथ ही मन गुप्ति, जिनकी छठवीं माता है, वचन गुप्ति सातवी माता हैं, तथा कायगुप्ति जिनकी आठवीं माता है ऐसे एक पुत्र जिनकी आठ माता है।

मुनिनामलौकिक वृत्तिः।

ज्ञानी जीवो। धन्य है, चांद आकाश में कैसे चलता है? तुम सो जाते हो, पता नहीं पड़ता है। सूरज कब निकलता है, पता नहीं पड़ता है लेकिन जो आहार को निकलते है तो चांदनी और सूरज की आभा दोनो एक साथ दिखाई देती है।

मुनिनामलौकिकी वृत्तिः।

यदि गाय के सामने कोई घास डाले तो ज्ञानी जीवो उस गाय को विकल्प नहीं होता है, कि रूपवान ने घास डाली है कि कुरूप ने घास डाली है। गरीब ने घास डाली है, कि अमीर ने घास डाली है। स्त्री ने घास डाली है कि पुरुष ने घास डाली है, उसी तरह से गाय के समान गोचरी करने वाले दिगम्बर मुनियों को मेरा प्रणाम हो।

मुनिनामलौकिकी वृत्तिः।

ज्ञानी जीवो! धन्य है, ओहो ! जो मुनि स्वयं कभी अपना आवास नहीं बनाते हैं। सर्प की तरह बने-बनाये किसी आवास में प्रवेश कर जाते हैं, उन मुनियों को मेरा प्रणाम हो।

मुनिनामलौकिकी वृत्तिः।

ओहो ! यह सीढ़ी क्यों लगी हैं? इसलिए कि तुम मेरे ऊपर पैर रखो और आगे बढ़ जाओ। उसी तरह जो क्षमाशील हैं, तुम निरंतर आगे बढ़ते जाओ, ऐसे मुनियों को मेरा प्रणाम हो। पृथ्वी के समान क्षमाशील, आकाश में धूल के कण फैंक दो तो आकाश मलिन नहीं होता है, उसी तरह जिन मुनियों का चित्त कभी मलिन नहीं होता है, ऐसी अलौकिक वृत्ति के धनी मुनिराज हैं।

मुनिनामलौकिकी वृत्तिः।

ज्ञानी जीवो! जल के समान निर्मल, ओ हो ! जो जल के समान प्रसन्न मन है ज्ञानी जीवो।

जैसे जल निर्मल रहता है अपनी लहरों से वह निर्मल हो जाता है, समुद्र में भी कितनी गंदी नदियाँ जाकर के मिलें लेकिन समुद्र अपनी लहरो से निर्मल हो जाता है, उसी तरह कितने जन भी यहाँ वहाँ के राग द्वेष पहुंचाये लेकिन जो अपनी ज्ञान की लहर और तरंगो से अपने चित्त को निर्मल कर लिया करते हैं धन्य हो ऐसे मुनिराज।

मुनिनामलौकिकी वृत्तिः।

ज्ञानी जीवो! शुभ उपयोग की लहर तो दिखाई देती है, जैसे समुद्र में ऊपर उठने वाली लहरे तो दिखती हैं, लेकिन नीचे का तल भाग शांत रहता है उसी तरह जिन मुनिराजों की शुद्धोपयोग की परिणति हमें नहीं दिखाई देती है। लेकिन होती है, ऐसी अलौकिक वृत्ति को प्रणाम हो।

ज्ञानी जीवो ! जिन्हें नमन करने से उच्च गोत्र की प्राप्ति होती हो, जिनकी भक्ति करने सुंदर रूप की प्राप्ति होती है। और जिन्हें दान देने से सदा अक्षय लाभ की प्राप्ति होती हो।

उच्च गोत्रं प्रणते। भोगोदानात् उपासनात् पूजा।

जिनकी उपासना से सम्मान मिला करता है, ऐसे तपो निधि इस धरती के देवता धन्य हैं, उन दिगम्बर मुनियों को मेरा प्रणाम हो। ओ हो एक बटवृक्ष के नीचे अवधूत आदिनाथ विराजमान हुए दिगम्बर मुनि आदिनाथ विराजमान हो गये। ज्ञानी जीवो। स्वर्ग के देवता ने उनको देखा कि यहाँ आदिनाथ विराजे हैं तो वह पूजने आ गये जनता ने देखा पूजने आ गये।

ज्ञानी जीवो। जिनकी एक बार की सान्निधि मात्र लेने से वह वट् वृक्ष पूजनीय हो गया। ज्ञानी जिस तरह से भौंरा फूल में से रस पीता है लेकिन फूल को कष्ट नहीं पहुँचता है उसी तरह से जो साधु समाज में रहते है और कभी समाज को कष्ट नहीं पहुँचाते हैं।

ज्ञानी जीवो! गाय पानी पीती है दूध दिया करती है उसी तरह यह दिगम्बर साधु समाज की सेवा लेते हैं तो समाज को संस्कार दिया करते हैं।

मुनिनामलौकिकी वृत्तिः।

ओहो ! ध्यान देना – सूरज उदय होता अस्त हो जाता है लेकिन यह दिगम्बर मुनि सदा उदय को ही प्राप्त रहते है। सर्वोदय के सूत्र दिखाते हैं सूरज का उदय होता है अस्त हो जाता है लेकिन जिस नगर में दिगम्बर मुनि होते है। वहाँ सदा उदय–उदय हुआ करता है।

मुनिनामलौकिकी वृत्तिः।

ओहो ज्ञानियो ! संसार के जीव जिस ओर मुख किया करते हैं मुनिराज उस ओर पीठ किया करते हैं और जिस ओर मुनिराज की पीठ हुआ करती है संसारी जीवों का उस ओर मुख हुआ करता है। ज्ञानी जीवो एक व्यक्ति मुझसे बोल रहा था महाराज आप नई दुनियाँ पढ़ोगे – नई दुनियाँ। ओहो! ज्ञानी जीवो मैने कहा भैया पहले किसी ओर ने पूछा था मैने कहा भैया मुझे भास्कर नहीं पढ़ना है, भास्कर को पढ़ने के लिए कोई समय नहीं है, क्योंकि मेरे पास समयसार है फिर उसने कहा महाराज तो मैं नई दुनियाँ ला दूँ मैने कहा भैया! मैरे पास नई दुनियाँ को समय नहीं क्योंकि मेरे पास तो नय दुनियाँ है।

ज्ञानी जीवो! सारा संसार, सारा देश नई दुनियाँ पढ़ रहा है लेकिन आपके नगर में विराजे साधु नय दुनियाँ (जिनवाणी)पढ़ रहे हैं। निश्चय नय और व्यवहार नय यह दोनों नय दुनियाँ है। सम्पूर्ण जिनवाणी नय दुनियाँ है। यह प्रवचन सुनने वाले नय दुनियाँ को सुन रहे हैं।

प्रिय आत्मन् !

कितने भी चेनल देख लें लेकिन चैन नहीं मिलता है। किन्तु मुनि के पास आने मात्र से, उनके चरण को छूने मात्र से चैन मिल जाता है, इसलिये सबसे बेस्ट चैनल हमारे पास है। जो शांति को लाते हैं, जो अमन को लातें है, देश में चलने वाले दो सौ चैनल तुम्हें शांति दे पायें न दे पायें और सोने की चैन शांति दे पाये या न दे पाये लेकिन दिगम्बर संतो के चरण सबसे ज़्यादा चैन दिया करते हैं।

मुनिनामलौकिकी वृत्तिः।

सुना है चंदन शीतल होता है, सुना है काशी का तल शीतल होता है, सुना है गंगा का जल शीतल होता है, सुना है चन्द्रमा की किरणें शीतल होती हैं, सुना है मुक्ता का हार शीतल होता है लेकिन यह अचेतन को शीतलता पहुँचाते हैं संसार में चेतना को शीतलता देने वाला यदि कोई है, तो वे मात्र दिगम्बर मुनि के वचन और चरण हैं। इसलिये

मुनिनामलौकिकी वृत्तिः।

भो ज्ञानी ! जब तुम्हारे सोने का समय होता है तब निमित्त ज्ञानी आचार्य विमलसागरजी जाग जाते हैं, जब तुम्हारे सोने का समय होता है तब तपस्वी सम्राट सन्मति सागरजी जाग जाते हैं इस

धरती पर आचार्य विमलसागर जी महाराज ऐसे संत हुए हैं जो मात्र दो घण्टे सोया करते थे। आज मुझसे एक सज्जन पूछ रहे थे कि महाराज आप तीन साढे तीन बजे तक उठ जाते हैं तो आपकी नींद पूरी हो जाती है? मैंने कहा मेरी नींद जल्दी लग जाती है। बोले महाराज! दस बजे तो हम ही लोग गये थे ? तो मैंने कहा दस बजे आप गये थे तो दस दस पे मेरी नींद लग जाती है किसी तरह का कोई विकल्प नहीं कोई चिन्ता नहीं न दरवाजे लगाने का विकल्प है, न दरवाजे खोलने का विकल्प है। यदि खुला है तो खुला रहने दो, बंद है तो बंद रहने दो, खिड़की खुली है तो खुली रहने दो। हमें प्रयोजन नही सो नींद जल्दी आ जाती है। अब वे क्या करें हमारा कल एक व्यक्ति के यहाँ आहार हुआ उस व्यक्ति के घर की खिड़की खुली रह गयी, क्या हो गया ? एक चोर आया मोबाईल चुरा ले गया। लेकिन इधर कोई किसी तरह का विकल्प ही नहीं है जहाँ विकल्प होता है वहाँ नींद नहीं आती है लेकिन नींद आती है साता वेदनीय के उदय से और जो स्वयं साता मय हो उन्हें कौन सा विकल्प।

मुनिनामलौकिकी वृत्ति :।

हो अर्द्ध निशा का सन्नाटा, वन में वनचारी चरते हों।
तब शांत निराकुल मानुष तुम, तत्त्वों का चिंतन करते हो॥

ज्ञानी जीवो! जिस समय तुम्हारा अच्छे से सोने का समय होता है उस समय साधु का जागने का समय होता है जिनके शरीर को देखो तो लगता है कुछ है ही नहीं लेकिन जिनकी आत्मा में अरिहंत बसा करते हैं। यह मुनि नहीं हैं, यह संत नहीं हैं यह तो भविष्य के भगवंत और अरिहंत हैं।

ज्ञानी जीवो! यह माता जब अपने बेटे में राजकुमार और राजा को देख सकती है तो ज्ञानी जीवो मैं कहता हूँ दिगम्बर मुनि में अरिहंत को देखो। बीज में वृक्ष को देखो, दूध में घी को देखो, पाषण में प्रतिमा को देखो, तिल में तेल को देखो, ईंधन में आग को देखो और जब विभवसागरजी दिख जायें तो विराग को देखो।

प्रिय आत्मन् !

आपकी सुबह होती है, ओ हो! दादी माँ क्या लेती हो हाथ में? महाराज मैं सुबह-सुबह झाडू लेती हूँ हाथ में। यह सुबह सुबह झाडू हाथ में ले लिया करती हैं। दादा जी आप क्या लेते हैं हाथ में ? महाराज में चाबी ले लेता हूँ दादी के हाथ में झाडू आता है दादा के हाथ में चाबी आती है ध्यान देना - संसारी की और मुनि की चर्या में कितना अंतर है यह सुबह होते ही झाडू हाथ में लेते

है यह सुबह होते ही लोटा हाथ में लेते है लेकिन मुनिराज पिच्छी और कमण्डलु हाथ में लेते है।

ज्ञानी ! सुबह होती है आपके हाथ में संतान हुआ करती है और मुनिराज के हाथ में शास्त्र हुआ करते हैं। ओ हो! ध्यान देना - माताओं यदि रात में तुम्हारी नींद खुल जाये तो तत्काल देखते हो हमारा शिशु कहाँ सो रहा है हमारी संतान कहाँ सो रही है और साधु की आँख खुल जाये तो देखता है हमारा शास्त्र कहाँ रखा है।

मुनिनामलौकिकी वृत्ति :।

ज्ञानी जीवो! ओ हो! यह पुरुष वर्ग दिन भर माल गिनते-गिनते समय निकाल देता है और हमारे महाराज माला जपते-जपते समय निकालते हैं। ध्यान देना-निर्ग्रंथों की चर्चा अलौकिक है।

''सिद्धों की श्रेणी में, आने वाला जिनका नाम है।
जग के उन सब मुनिराजों को, मेरा नम्र प्रणाम है॥

ज्ञानी जीवो! सिद्धों की श्रेणी में आने वाला नाम है, पंच परमेष्ठी की श्रेणी में आने वाला नाम है किनका ? जो रत्नत्रय का अनुसरण करते हैं उनका साधु पद परमेष्ठी का पद है।

प्रिय आत्मन् !

स्वपर हित साधयति इति साधुः।

एक पिता अपने परिवार का भला कर सकता है, एक सरपंच अपने गांव का भला कर सकता है, एक जनपद अध्यक्ष अपनी नगर पालिका का भला कर सकता है, एक विधायक तहसील की सोच सकता है, एक सांसद जिला की सोच सकता है, एक मुख्यमंत्री अपने प्रदेश की सोच सकता है, और एक प्रधानमंत्री हो तो मात्र अपने देश की सोच सकता है लेकिन आपके दिगम्बर मुनि सम्पूर्ण सृष्टि के कल्याण की सोचा करते है।

ज्ञानी ! ध्यान देना - पिता जब पत्र लिखता है तो पुत्र के हाथ में चला जाता है और सरपंच कोई चीज देता है, तो गांव के उपयोग में आ जाती है, विधायक कोई निर्माण कराता है तो तहसील के उपयोग में आता है, सांसद कोई निर्माण कराता है तो जिले के उपयोग में आता है, मुख्यमंत्री कोई योजना बनाता है तो प्रदेश के काम आती है और प्रधानमंत्री कोई सड़क बनवाता है तो पूरे देश के काम आती है लेकिन दिगम्बर संत जब प्रवचन करता है तो पूरे विश्व के कल्याण में काम आता है।

ध्यान देना – पिता जब योजना बनाता है तो परिवार के कल्याण की बनाता है, सरपंच जब योजना बनाता है तो ग्राम के कल्याण की बनाता है, विधायक जब योजना बनाता है तो तहसील के कल्याण और निर्माण की बनाता है, सांसद जब योजना बनाता है तो जिले के निर्माण और कल्याण की बनाता है, मुख्यमंत्री कोई योजना बनाता है तो प्रदेश के निर्माण और कल्याण की बनाता है, प्रधानमंत्री योजना बनाता है तो देश के निर्माण और कल्याण की किंतु दिगम्बर संत की योजना दिगम्बर संत की सामायिक, दिगम्बर संत का प्रतिक्रमण, दिगम्बर संत की आलोचना और दिगम्बर संत का प्रवचन पूरे विश्व कल्याण की योजना हुआ करता है।

मुनिनामलौकिकी वृत्ति :।

ज्ञानी जीवो! आपका एक पेपर छपता है तो मात्र एक जगह रह जाता है, दूसरा समाचार पत्र छपता है तो जिले तक रह जाता है और कोई पेपर छपता है तो प्रदेश तक रह जाता है और कोई दिल्ली से छपता है तो पूरे भारत देश में पहुंच जाता है लेकिन दिगम्बर मुनि के मुख से जो प्रवचन निकलता है वह प्रवचन समाचार पत्र नहीं वह तो समयसार बन जाता है और पूरे विश्व के लिए सदा काम आता है।

ज्ञानी जीवो! आप बोले तो पांच मिनट काम आता है और कोई बोले तो पांच घण्टे काम आता है। सरपंच कुछ बोले तो पांच साल काम आ जायेगा, मुख्यमंत्री बोलेगा तो भी पांच साल काम आ जायेगा और प्रधानमंत्री की भी मान ले तो बड़ी योजना 25 साल तक काम आ जाये लेकिन जब दिगम्बर संत बोलता है तो पूरे बीस हजार वर्ष पंचम काल तक काम आयेगा।

प्रिय आत्मन् !

यह मुनि की चर्या ध्यान देना – एक नेता दूसरे नेता के विषय में कुछ बोलता है किंतु मोक्ष मार्ग का नेता जितना भी बोलता है कहीं से लाता नहीं है आत्मा से निकालता है और आत्मा में ही मिला लेता है। जिस तरह समुद्र की लहर समुद्र से ही उठा करती है और समुद्र में ही मिल जाया करती है उसी तरह का प्रवचन मुनि के मौन से निकलता है और ज्यों का त्यों मुनि के कानों से उन्हीं में प्रवेश कर जाया करता है।

ओ हो ज्ञानी जीवो! मेरे प्रवचन को सबसे पहले सुनने वाला श्रोता कौन है? मैं ही हूँ क्योंकि भाव वचन प्रकट होते हैं और में सुन लेता हूँ आप तो मेरे द्रव्य वचनों को सुना करते है। जब प्रातः

काल की सांय-सांय चलती है। लेकिन फिर भी जो निज में तल्लीन रहते हैं धन्य हैं उन मुनिराजों को जो अपने स्वरूप में लवलीन हैं। और पाप की छाया भी जिन पर नहीं पड़ती है, पाप की परछाई से दूर रहा करते हैं जिनकी चर्या और क्रिया इतनी उज्जवल और निर्मल हुआ करती है कि पाप की परछाई भी जिसके जीवन पर ना पड़ जाये। पर परछाई से दूर रहते हैं।

ज्ञानी जीवो ! आप लोग जब कभी याद आ जाये तो कहते भैया हम तो इनकी छाया से दूर रहते है लेकिन आपका दिगम्बर संत कहता है मै आप सभी के मध्य में बेठा हूँ लेकिन पाप की छाया से हमेशा दूर रहता हूँ।

''जुड़ा हुआ जो आपसे, जोड़ रहा वह जाप।
जुड़ा नहीं जो आपसे, जोड़ रहा वह पाप॥''

मुनियों से जुड़ने में कितना अंतर पड़ता है और ना जुड़ो तो क्या अंतर पड़ता है जुड़ जाओ तो यह अंतर पड़ता है कि जाप होने लगती है ना जुड़ो तो यह अन्तर पड़ता है कि पाप होने लगता है। बस एक ही अंतर है।

मुनिनामलौकिकी वृत्तिः।

धन्य हैं जब मुनिराज की प्रातःकाल की चर्या देखो! मुनिराज एक बार आहार लेते हैं और चार बार स्वाध्याय करते हैं और आप बार-बार भोजन लेते हो लेकिन स्वाध्याय एक बार भी नहीं। ज्ञानी जीवो! संसार के जीवों का मुख जिस ओर मुनि की पीठ उस ओर है लोग सोचते है साधु खड़े होकर आहार लेते है और आप बैठ के आहार लेते है यह लौकिक जीव सब बैठ के आहार लेते है यदि कह दिया जाये तो आप लोग खड़े होकर आहार लो ज्ञानी तो आधा पेट आहार नहीं ले पायेगा। ध्याने दें-

ज्ञानी जीवो! दिगम्बर मुनि को खड़े होकर आहार लेने का कारण एक ही है खड़े होकर आहार लेने वाला पूरा आहार नहीं ले सकता है। दूसरी बात का संकल्प है कि जब तक पैरों में खड़े होने की ताकत है साधना की ताकत है तभी तक में आहार लूंगा और जिस दिन साधना की शक्ति नहीं बचेगी उस दिन आहार नहीं करूंगा।

मुनिनामलौकिकी वृत्तिः।

आप दोनो हाथ से कमाते हो ज्ञानी जीवो! और फिर भी एक हाथ से खाते हो पर आपके

साधु कुछ भी नहीं कमाते है और फिर भी दोनों हाथ से खाते हैं।

मुनिनामलौकिकी वृत्तिः।

''मजा कहा ना जाये इस कंगाली का''

जिनके पास रंच मात्र भी धन नहीं है, न पैसा, न परिवार है, न पुत्र है, न मित्र है, न स्त्री है कुछ भी नहीं है लेकिन इस कंगाली में जितना मजा है, उतना मजा संसार के कहीं किसी वैभव में नहीं है।

ज्ञानी जीवो! लखपति, करोड़पति, अरबपति, खरबपति बन जाना कितने भी पति बन जाओ लेकिन ध्यान देना – जितना सुख दिगम्बर मुनि को होता है, उतना सुख किसी अरबपति, खरबपति को नही होता है।

मुनिनामलौकिकी वृत्तिः।

संसार में सबसे महान सुखी कोई होता है तो वह मुनि हुआ करता है ज्ञानी जीवो! क्यों होता है? तत्त्वज्ञान के बल पर होता है धन्य है ज्ञानी जीवो! हमने देखा है और सुना है कि हिमालय पर्वत की नग्न श्रेणियों से गंगा नदी निकलती है लेकिन सुख शांति की गंगा यदि पूरे विश्व में कहीं से निकलती है तो वह दिगम्बर नग्न मुनियों के जीवन से निकला करती है।

प्रिय आत्मन् !

यह दिगम्बर नग्न मुनि इस धरती पर चलते – फिरते देवता हैं। देवता क्यों हैं? क्योंकि ज्ञान देव है। और ज्ञान देव जिसके पास वह देवता है। दिव्यज्ञान जिन्होने प्राप्त कर लिया है ज्ञानी तुम दो आँखो से देखते हो, सारी दुनिया दो आँखों से देखा करती है लेकिन यह दिगम्बर मुनि अलौकिक हुआ करते है। यह तीन आँख से देखते है।

लोकत्रयेक नेत्रं!

लोकत्रय में एक और अद्वितीय नेत्र ज्ञान है?
आगम चक्ख साधु का नेत्र शास्त्र साहू!

ओ हो ! ज्ञानी देव अवधि ज्ञान से देखा करते है। सिद्ध भगवान केवल ज्ञान से देखा करते

है और मनुष्य ? आँखों से देखा करते है लेकिन आपके दिगम्बर साधु आगम से देखा करते है। सबकी आँखे जुदा-जुदा होती हैं।

मुनिनामलौकिकी वृत्तिः।

ज्ञानी जीवो! जब ठण्डी लगती है तो धेर्य का कम्बल ओढ़ते है और जब गर्मी लगती है तो संतोष का छत्र धारण कर लेते हैं, और जब बरसात आती है तो ''चातुर्मास'' कर लेते हैं।

एक जगह पर प्रवास कर लेते हैं।

प्रिय आत्मन् !

जिन्होनें कभी कहीं पर मठ नहीं बनाया है, ओ हो! ज्ञानियो हमारे यहाँ सब पारसनाथ-पारसनाथ बनने की प्रेरणा है हमारे यहाँ कमठ बनने की प्रेरणा है ही नहीं इसलिए मठ नहीं।

जानते हो मुनिराज भवन नहीं बनाते क्योंकि भवन बनाने से भव-वन में भटकना पड़ेगा ध्यान देना-ज्ञानी जीवो! संसार के जीव अपने अपने भवन बनाकर रहा करते हैं लेकिन मुनिराज तुम कहते हो विद्या भवन में रहते हैं ज्ञानी जीवो सच है मैं बाहर के विद्याभवन में टिकता हूँ और भीतर के विद्या भवन में रहता हूँ ज्ञान भवन ही तो भवन है चैतन्य भवन ही तो भवन है।

ज्ञानियो! आप कहते हो रहने के लिए जगह चाहिए, मुनिराज कहते है शरीर में मेरी आत्मा है और में आपनी आत्मा में रहता हूँ मात्र जहाँ दो पांव रखने की ज़मीन मिल जाय वहाँ में ठहर जाता हूँ वही मेरा रहने का स्थान है।

ज्ञानी जीवो! प्रत्येक चर्या में अलौकिकता है चाहे उनका नग्नत्व हो चाहे उनका केशलोंच हो। अरे! भाईयो आपका कोई भाई आया है उसको शीश झुका लो, नहीं। आज दुनियाँ में भाई-भाई को शीश नहीं झुका पा रहा है लेकिन जब बाल कटवाने पहुँचता है तो नाई के सामने शीश झुका लेता है। किंतु दिगम्बर मुनि आज तक जिस दिन से पिच्छी कमण्डलु धारण किया है उस दिन से नाई से बाल नहीं कटवाता है।

ओ हो! यह तुम्हारी चर्या है कि तुम्हें कपड़े धोने के लिए धोबी चाहिए, बाल कटवाने के लिए नाई चाहिए। शीतल जल पीने के लिए कुंभकार चाहिए लेकिन आपके मुनि को बाल कटवाने

के लिए न नाई चाहिए, न पानी पीने के लिए कुंभकार चाहिए, न कपड़े धोने के लिए कोई मशीन चाहिए। क्योंकि मुनि कपड़े नहीं पहनता है तो धोबी नहीं चाहिए बाल स्वयं निकाल लेता है तो नाई नहीं चाहिए और पानी अंजली में ले लेता है तो किसी कुंभकार के घड़े की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

मुनिनामलौकिकी वृत्तिः।

प्रिय आत्मन् !

ज्ञानी जीवो! ध्यान देना – कोई अपने साथ पाउडर रखता है, कोई अपने साथ क्रीम रखता है, और कोई अपने साथ में दर्पण रखता है लेकिन हमारे साधु कहते हैं न हमें पाउडर रखना, न क्रीम रखना और न मुझे दर्पण रखना क्योंकि मैं ह्रीं को अपने साथ रखता हूँ। तुम क्रीम लगाते हो और मुनि ह्रीं का ध्यान लगाते हैं।

ओ हो ज्ञानी! तुम दर्पण रखते हो काँच का और हम सर्वज्ञ देव के आगम का दर्पण रखते है यह शास्त्र हमारा दर्पण है। ज्ञानी जीवो मुनियों की चर्या को देखिये आप कल्पना कीजिये एक बार जरा सा निहारिये यह मातायें जरा ध्यान दे कि हमारे जीवन में और आर्यिका माता के जीवन में कितना अंतर है।

ओ हो! सुबह उठते हो तो बिस्तर पर बैठते हो और साधु उठता है तो संस्तर पर उठता है। साधु बिस्तर नहीं रखता श्रावक बिस्तर रखा करता है श्रावक का संस्तर नहीं होता है और साधु का संस्तर हुआ करता है। साधु संस्तर पर जागता है साधना करने वालों का संस्तर हुआ करता है।

मुनिनामलौकिकी वृत्तिः।

प्रातः काल को देख लो मुनिराज जाते हैं अभिषेक देखा करते हैं और आप अपने को स्नान कराया करते हैं आज सुबह – सुबह मैरे पास एक सज्जन आये बोले महाराज दो साल से भगवान का पूजा–भजन छूट गया मैंने कहा क्यों ? महाराज क्या बतायें क्या करूँ संसार का ऐसा ही पालन पोषण होता है जब घर में बच्चे होते हैं तो उनकी देखभाल करना पड़ती है।

ज्ञानी जीवो! ध्यान देना – तुम्हारे यहाँ संतान जन्म लेती हैं और प्रभु का पूजन और भजन छूट जाता है और हमारे यहाँ शिष्य गण आते है और साधना एवं स्वाध्याय बढ़ जाता है। आपके यहाँ संतान का जन्म होता है और हमारे यहां ब्रह्मचारी का जन्म होता है और वह ब्रह्मचर्य के पालन से होता है।

प्रिय आत्मन् !

ब्रह्मचर्य–ब्रह्मचारी को जन्म देता है। एक व्यक्ति बोला मेरा बेटा ब्रह्मचारी है ज्ञानी तेरा बेटा तो ब्रह्मचारी नहीं या जब ब्रह्मचारी मुनि के पास पहुँच गया तो बेटा ब्रह्मचारी हो गया। तूने बेटे को ब्रह्मचारी बनाया ही नहीं तेरा वश चलता तो उसे ब्रह्मचारी बनने ही नहीं देता वह तो मुनि के पास संगति में आ गया तो ब्रह्मचारी बन गया । महाराज! एक बेटा मेरा दिल्ली में सर्विस करता है और एक बेटा बॉम्बे में सर्विस करता है। यह बात सही है।

ज्ञानी ध्यान देना – आचार्य कहते है तूने संसार का सबसे बड़ा विष का काम कर लिया है यह सेवावृत्ति सबसे बड़ा पाप है! ओ हो ज्ञानी एक यशोधर चरित्र को पढ़ लेना या पद्म पुराण में कृतांतवक्र कहता है संसार में सबसे बड़ा पाप सेवावृत्ति है मुझे सीता जैसी निर्दोष माता के लिए जंगल में छोड़ना पड़ रहा है यह सेवावृत्ति का फल है यदि मैं किसी की नौकरी नहीं करता तो सीता माता को आज जंगल में नहीं छोड़ना पड़ता।

सर्विस को आप अच्छा मानते हैं लेकिन सेवा वृत्ति किसी के नौकर बनना ओ हो ज्ञानी जीवो! ध्यान देना – जब सेवा करने वाले ही व्यक्ति के घर में दिगम्बर मुनि का पदार्पण हो गया लेकिन वह उस दिन भी आहार नहीं दे पाया बेचारा क्योंकि सर्विस पर जाना है। क्या करूँ नौकर हूँ, पराधीन हूँ।

सेवावृत्ति पराधीनता है।

आचार्य वादिराज स्वामी जी लिखते हैं कि क्षत्र चूड़ामणि में जैन मुनि की जो तपस्या होती है। उसमें कहीं पर भी स्वच्छंद वृत्ति नहीं चलती है एक–एक चर्या महावीर के अनुशासन और संविधान में ढली हुआ करती है।

प्रिय आत्मन् !

दिगम्बर संत की चर्या की एक आचार संहिता है उस आचार संहिता के अन्तर्गत मुनि की मूलाचार के अनुसार सम्पूर्ण चर्या चलती है, अनुशासन है, संविधान है, आत्मानुशासन में जीते हैं, किसीका शासन मध्यप्रदेश शासन है कोई उत्तर प्रदेश के शासन में है कोई भारत के शासन में है लेकिन दिगम्बर मुनि आत्मानुशासन में है। और आत्मानुशासन में जीता है वह सर्वज्ञ के शासन में जीया करता है वह महावीर के शासन में जीया करता है। वह महावीर के शासन में जीया करता है।

प्रिय आत्मन् !

आप शासन को पढ़ते है और शासन के आदेश पर जीते हैं और आपके मुनिराज तत्वानुशासन को पढ़ते हैं और आत्मानुशासन में जिया करते हैं।

मुनिनामलौकिकी वृत्ति :।

ज्ञानी जीवो! आप सुबह उठते हैं समाचार पड़ते हैं आपके मुनिराज सुबह उठते हैं और समयसार पढ़ते हैं, यही तो मुनि की चर्या है। धन्य-धन्य निर्ग्रंथ दशा वह कैसी अलौकिक चर्या, चाहे सुबह हो, चाहे शाम हो, चाहे रात्रि हो, संध्या में पंछी जिस तरह से वृक्ष पर ठहर जाते है, ऐसे ही मुनिराज एक स्थान पर ठहर जाते हैं और जिस तरह से सुबह होती है तो पंछी चल देते हैं उसी तरह आपके दिगम्बर मुनि पंछी की तरह विहार कर देते हैं। धन्य हैं ऐसे मुनि।

नदियाँ न पीये कभी अपना जल,
वृक्ष न खायें कभी अपने फल,
अपने तन का, मन का, धन का,
दूसरों को दे जो दान रे,
वो सच्चा भगवान रे,
इस धरती पर इंसान रे।

प्रिय आत्मन् !

कुंद-कुंद आचार्य कहते है 'धण्णा ते भयवंता''
भिक्कं वक्कं हीयं, सोहिय जो चरदि णिच्च सो साहू।
एसो सुद्दिठ साहू, भणियो जिण सासणे भयवं॥

जिसकी भोजन चर्या शुद्ध हो, जिसका हृदय शुद्ध हो, जिसकी वाणी शुद्ध हो, वह दिगम्बर मुनि इस युग का भगवान है। कुंद - कुंद आचार्य का उन्हें प्रणाम है।

प्रिय आत्मन् !

इस पंचम काल में तीर्थंकर की मुद्रा को धारण करना चैतन्य चमत्कार है। चौथे काल की हजार वर्ष की साधना कर लेना और पंचम काल का एक वर्ष के मुनि की साधना दोनों एक बराबर है।

मुनिनामलौकिकी वृत्ति :।

प्रात:काल का समय होता है, सब के सब चौका और चूल्हे में लग जाते हैं। ज्ञानी जीवो आपके मुनिराज चार आराधनाओं में लग जाते हैं। ज्ञानी जीवो आप बर्तन ही बर्तन मांजते रहोगे एक बार तो जरा मन को मांजलो। तुम तन को मांजते हो और तन के मांजने के बाद कुछ समय मिलता है तो बर्तन मांजने लगते हो। पहले तन को मांजते हो, बाद में बर्तन मांजते हो। माताओं एक बार तो मुनिराज की चर्या को देखो और सोचो कि मुनिराज न बर्तन को मांजते है न तन को मांजते है, वह तो मात्र चेतन को मांजते हैं। ज्ञानियों ऐसी अलौकिक चर्या के धनी मुनिराज होते हैं। अर्घावतारन असि प्रहारन में सदा समता धरन।

कोई चाहे अर्घ उतार ले, चाहे तलवार चला दे, दोनों में जिनकी समता है। चाहे कोई पूजा करके आरती उतार ले, चाहे कोई तलवार चलादे लेकिन दोनों के लिए सदा आशीर्वाद है, ऐसे दिगम्बर यति इस धरती पर धन्य हैं।

ओ हो! ज्ञानी हंस किसे कहते हैं?

पायंबुभेदी हंसः ।

जो दूध को और पानी को भेद दे, वह हंस हुआ करता है। जो शरीर और आत्मा का पृथक-पृथक भेद विज्ञान कर ले, वह परम हंस दिगम्बर संत कहलाता है।

मुनिनामलौकिकी वृत्ति :।

ज्ञानी जीवो! ध्यान देना - आप विद्युत के प्रकाश में पढ़ते हो और हम वेद के प्रकाश में पढ़ते है जैनों के चार वेद - प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग होते हैं।

कल मैं दर्शन करने गया और दर्शन प्रारम्भ किया तब एक सज्जन बोले महाराज तो उलटे दर्शन कर रहे हैं, पहले मैंने महावीर स्वामी का दर्शन किया फिर पारस नाथ का दर्शन किया। बोले महाराज तो उलटे दर्शन कर रहे हैं। मैंने कहा भैया मैं उलटे दर्शन कर रहा हूँ ताकि सीधे तक आ जाऊँ सुनो ज्ञानी! मुनिराज कहते है तुझे उलटा दर्शन लगता है तुझे सीधा दर्शन लगता है लेकिन मुझे तो लगता है कि लड्डू कहीं से भी खाओ, मीठा ही मीठा लगता है।

मुनिनामलौकिकी वृत्ति :।

ज्ञानी जीवो! कौन पहले, कौन बाद में, क्योंकि मोक्ष तत्त्व भी बाद में है ज्ञानी जीवो और सबसे पहले भी तो जीव तत्त्व के समान प्रिय है।

प्रिय आत्मन् !

धन्य हैं वे मुनिराज जो अपने जीवन में समता का संदेश देते है, जिनकी चर्या और जिनकी तपस्या ही पृथ्वी के प्राणियों के लिए कल्याण का मार्ग सिखाती है। जिस दिगम्बर मुनि को देखकर के श्री कृष्ण कह देते हैं कि विजय अवश्यंभावी है। जिन दिगम्बर मुनि की चर्चा वेदों की ऋचायें गाया करती हैं, जिन दिगम्बर मुनि की चर्या रविषेण की रचनायें गाया करती हैं, जिन मुनियों के चरित्र पुण्य की कथायें कहलाया करती हैं और जिन मुनियों की वाणी से मन की व्यथायें मिट जाती हैं, उन मुनियों को मेरा नमस्कार है।

* * * *

एक देश व्रत का उपदेश किसे देना ठीक नहीं है ?

बहुशः समस्तविरतिं प्रदर्शितां यो न जातु गृह्णाति।
तस्यैकदेशविरतिः कथनीयानेन बीजेन ॥ 17॥

अन्वयार्थ - (बहुशः) अनेकबार (प्रदर्शितां) दिखलाई गई (समस्तविरतिं) सर्वथा त्यागरूप मुनियों की महावृत्तिको (यः) जो पुरूष (जातु) कदाचित् (न ग्रहणाति) नहीं ग्रहण करता है (तस्य) उस पुरुष के लिए (एकदेशविरति) एकदेश त्याग का उपदेश (अनेन बीजेन) इस बीज से इस हेतु से नीचे लिखे हुए हेतु से (कथनीया) कहना चाहिए।

यो यतिधर्म मकथयन्नुपदिशति गृहस्थ-धर्ममल्पमतिः।
तस्य भगवत्प्रवचने प्रदर्शितं निग्रहस्थानम्।। 18।।

अन्वयार्थ - (यः) जो (अल्पमतिः) अल्पबुद्धिवाला उपदेशक (यतिधर्मम्) मुनिधर्म का (अकथयन्) उपदेश न देकर (गृहस्थधर्मम्) गृहस्थ धर्म का (उपदिशति) उपदेश करता है (तस्य) उस उपदेशक को (भगवत्प्रवचने) भगवान के सिद्धांत में (निग्रहस्थांन) दण्ड देने का स्थान (प्रदशितम्) कहा गया है अर्थात् दण्ड का पात्र कहा गया है।

* * * *

क्रमरहित उपदेश से क्या हानि होती है ?

अक्रमकथनेन यतः प्रोत्साहमानोऽतिदूरमपि शिष्यः।
अपदेऽपि, संम्प्रतृप्तः प्रतारितो भवति तेन दुर्मतिना॥ 19॥

अन्वयार्थ - (यतः) जिस कारण से (तेन) उस (दुर्मतिना) दुर्बुद्धिके (अक्रमकथनेन) क्रमविरूद्ध उपदेश देने से (अति दूरं) अत्यंत अधिक (प्रोत्साहमानः अपि) बढ़े हुए उत्साह वाला भी (शिष्यः) शिष्य-उपदेशका पात्र (अपदेअपि) जघन्य श्रेणियों में ही (संप्रतृप्त) संतुष्ट होता हुआ (प्रतारितः) ठगाया (भवति) जाता है।

प्रिय आत्मन् !

माँ जिनवाणी, जगकल्याणी, अरहंत भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य आचरित, उपाध्याय उपासित, सर्वसाधु साधित, जीव तत्त्व प्रबोधिनी, अजीव तत्त्व विवेचनी, सर्वास्रव निरोधनी, कर्म बंध विमोचनी, संवर पथ प्रदायिनी, निर्जरा निर्झरणी, मोक्ष-महल धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण कारिणी, हे जिनवाणी माँ! तेरी जय हो, सदा विजय हो, तेरे विशाल पद में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन् !

संसार के जीवों को दुखों से निकाल करके जो उत्तम सुख धारण करता है वह धर्म कहलाता है। वह धर्म सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चरित्र है। धर्म के साधन दो हैं, दो आधार है ग्रहस्थ और श्रमण। मुनि धर्म साक्षात मोक्ष का मार्ग है। संसार में मुनि धर्म जैसा, श्रमण धर्म जैसा, यति धर्म जैसा, अनगार धर्म जैसा, धर्म नहीं। जहाँ सर्वोत्कृष्ट, अहिंसा, परम सत्य, आचार्य की आराधना, परम बह्म की उपासना परम ब्रह्मचर्य के माध्यम से होती है और अपरिग्रह का पालन होता है।

आचार्य कहते हैं कि मनुष्य गति की दुलर्भता क्या है? ध्यान देना – मनुष्य गति में तप होता है, मनुष्य गति में व्रत होता है, मनुष्य गति में ध्यान होता है और मनुष्यगति में निर्वाण होता है। इन चार बातों के कारण मनुष्य गति महान है। ध्यान देना – आचार्य कहते हैं ज्ञानी जीवो! यदि जीवन को पाया तो मुनि बनके जीना ध्यान रख लेना तुम अपने आप स्वेच्छा से कपड़े उतार दो तो दिगम्बर मुनि बन जाओ अन्यथा एक दिन यहाँ नहीं उतारोगे तो वहाँ लोग उतार ही देंगे। यदि चेतना के रहते कपड़े उतार दिये तो दिगम्बर मुनि (शिव) कहलाओगे और चेतना निकलने के बाद कपड़े उतारोगे तो शव कहलाओगे। तुम ध्यान रख लेना, कितने भी सुंदर कपड़े पहन लेना काया जलने से पहले कपड़े उतार लिये जाते हैं।

कितना भी सोना चांदी पहन लेना लेकिन शमशान में वह भी उतार लिया जाता है। ओ हो ज्ञानियो! जब चिता पर रखते हैं तो फिर एक धागा भी नहीं रखा जाता है ज्ञानियो! यही संस्कृति है या तो सल्लेखना के संस्तर पर पहुँचने के पहले कपड़े को उतार देना चाहिए यदि सल्लेखना के संस्तर पर पहुँचते समय कपड़े नहीं उतार पाये तो फिर चिता पर पहुँचने के पहले तो उतर ही जायेंगे।

ज्ञानी जीवो! ध्यान देना – आचार्य देव कह रहे हैं ओ हो! आप आखिरी में संसार से विदा लेते समय कपड़े उतारते हो और आपके संत सदा सदा उतारे रहते हैं ज्ञानी जीवो! कोई दूसरा उतारे क्या विशेषता। जागृत में उतार लेना चैतन्यता में उतार देना सबसे महानता है, लेकिन यह मुनि धर्म इतना महान है कि इस मुनि धर्म को पाने के लिए चरित्र मोहनीय कर्म का क्षयोपशम चाहिये। एक जन्म के पुण्य से नहीं होता है यह ध्यान देना – बुंदेलखण्ड के लोग सातिशय पुण्यात्मा जीव हैं यह धरा धाम ऐसी पुण्य भूमि है अन्यथा दो सौ देशों में (ऑनली वन कन्ट्री इण्डिया) मात्र एक भारत देश ही ऐसा देश है, जहाँ पर दिगम्बर मुनि हुआ करते हैं, जहाँ पर दिगम्बर दीक्षा हुआ करती हैं। अन्य किसी देश में दिगम्बर दीक्षा नही होती है।

ध्यान देना – जो कार्य नरक में नहीं होता है, जो कार्य पशुगति में नहीं हो पाया, जो कार्य तुम स्वर्ग में रहके नहीं कर पाये उस कार्य को करने के लिए मनुष्य गति है। ज्ञानी जीवो! जो कार्य तुमने नरक गति में किया है, जो कार्य देव गति में कर चुके हो, फिर भी भला नहीं हुआ उस कार्य को यहाँ मत करना। जो कार्य नरक में किये हैं उन कार्यो को करने से फिर भी भला नहीं हुआ। उन कार्यों करने के लिए मनुष्य गति नहीं है। मनुष्य गति उस कार्य को करने के लिए है, जिस कार्य से आप आत्मा से परमात्मा बन सके।

सम्यग्दर्शन ही प्रथम क्यों प्राप्त करना चाहिए

एवं सम्यग्दर्शनबोध चरित्रत्रयात्मको नित्यं।
तस्यापि मोक्षमार्गो भवति निषेव्यो यथाशक्तिः॥ 20॥

अन्वयार्थ - (एवं) इस प्रकार (सम्यग्दर्शनबोध चरित्रत्रयात्मकः) सम्यग्दर्शन, सम्यज्ञान, सम्यक्चारित्रस्वरूप (मोक्षमार्गः) मोक्ष का मार्ग (नित्यं) सदा (तस्य अपि) उस उपदेशग्रहण करने वाले पात्र को भी (यथाशक्ति) अपनी शक्ति के अनुसार (निषेव्यः) सेवन करने योग्य (भवति) होता है।

उपदेश ग्रहण करने वाले पात्र का कर्तव्य

तत्रादौ सम्यकत्वं समुपाश्रयणीयमखिलयत्नेन।
तस्मिन् सत्येव यतो भवति ज्ञानं चरित्रं च॥ 21॥

अन्वयार्थ - (तत्र) उन तीनों में (आदौ) पहले (अखिलयत्नेन) सम्पूर्ण प्रयत्नों से (सम्यकत्वं) सम्यग्दर्शन (समुपाश्रयणीयं) भले प्रकार प्राप्त करना चाहिए, (यतः) क्योंकि (तस्मिन् सति एव) उस सम्यगदर्शन के होने पर ही (ज्ञानं) सम्यग्ज्ञान (च) और (चरित्रं) सम्यक्चारित्र (भवति) होता है।

प्रिय आत्मन् !

माँ जिनवाणी, जगकल्याणी, अरिहंत भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य आचरित, उपाध्याय उपासित, सर्वसाधु साधित, जीव तत्त्व प्रबोधिनी, अजीव तत्त्व विवेचनी, सर्वास्रव निरोधनी, कर्म बंध विमोचनी, संवर पथ प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष महल धारिणी, पाप-ताप-संताप

हारिणी, विश्व कल्याण कारिणी, हे जिनवाणी माँ तेरी जय हो सदा विजय हो तेरे विशाल पद में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन् !

स्याद्वाद मुद्रा से मुद्रित, अनेकांत से सिद्ध, अरिहंत भगवान के मुख कमल से निर्गत, तीर्थंकर देशना से अनुप्राणित, सर्वज्ञ ज्ञान से ज्ञापित, पूर्वाचार्यों की परम्परा से प्रवाहित, चेतना के कल्मष को धोने वाला यह ज्ञान प्रवाह ही हम सभी के प्राणियों के उद्देश्य से यह धर्म तीर्थ चल रहा है।

हे प्रभु! महावीर में कामना करता हूँ कि यह आपका तीर्थ जब तक नभ में तारे हैं, जब तक सूर्य में प्रकाश है, चांद में शीतलता है, फूलों में सुगंधी है, चंदन में गंध है, दूध में सफेदी है, घृत में स्निग्धता है, आत्मा में ज्ञान है, अग्नि में उष्णता है, तब तक यह आपका तीर्थ निरंतर धरा धाम पर चलता रहे। जिस तरह से महावीर प्रभु आपने पारसनाथ के तीर्थ को आगे बढ़ाया उसी तरह आपका यह लघुनंदन आपके तीर्थ को धरती पर आगे बढ़ाता रहे। यह धर्म की धारा निरन्तर प्रवाहित होती रहे और जन-जन के चित्त को निर्मल करती हुयी प्रवाहित होती रहे। धन्य है प्रभु! यह धरती का पुण्य है कि व्यक्ति का पुण्य है। यह धरा का पुण्य है कि इस नगर का पुण्य है लेकिन कुछ भी कहो धरती का भी पुण्य है और नगर का भी पुण्य है।

ज्ञानी जीवो! ध्यान देना-अयोध्या नगरी में आदिनाथ का जन्म हुआ? सत्य है नैगम नय से। आदिनाथ का जन्म अयोध्या में हुआ कि रानी के महल में हुआ? महल में, संग्रह नय की अपेक्षा सत्य है। महल में जन्म हुआ कि प्रसूति गृह में जन्म हुआ? अरे ज्ञानी! प्रसूतिका गृह में प्रसूतिका गृह में जन्म हुआ कि रानी के पलंग पर जन्म हुआ? कि रानी के पलंग पर जन्म हुआ कि रानी की कोख से जन्म हुआ है। रानी की कोख से।

ज्ञानी जीवो! यह जैन दर्शन की प्रणाली इतनी सूक्ष्म है कि यह भी सत्य है कि अध्योध्या में आदिनाथ का जन्म हुआ है। तो यह भी सत्य है कि राजमहल में जन्म हुआ है। तो यह भी सत्य है कि रानी के महल में जन्म हुआ है। तो यह भी सत्य है कि प्रसूतिका गृह में जन्म हुआ है। तो यह भी सत्य है कि पलंग पर जन्म हुआ है। तो फिर यह भी सत्य है कि रानी के शरीर से जन्म हुआ है। तो यह भी सत्य है कि सम्पूर्ण शरीर से जन्म नहीं हुआ है रानी की कोख से जन्म हुआ है। ज्ञानी जीवो परम सत्य तेरे यह है कि स्वयं के नाम कर्म के उदय से जन्म हुआ है। शाश्वत सत्य यह आत्मा अजन्मा हैं।

प्रिय आत्मन् !

यह जैन दर्शन की सप्त नय व्यवस्था है सत्य नय व्यवस्था। नयी व्यवस्था नहीं है, बहुत प्राचीन व्यवस्था है। माँ जिनवाणी के दो बेटे हैं एक का नाम साधु है और एक का नाम श्रावक है। श्रावक छोटा बेटा है और साधु बड़ा बेटा है। माँ का छोटा बेटा और माँ का बड़ा बेटा इनमें रिश्ता कौनसा हुआ ? भाई-भाई का। रविषेण आचार्य ने लिखा है कि श्रावक धर्म मुनि धर्म का छोटा भाई है। और मुनि धर्म श्रावक धर्म का बड़ा भाई है। दो ही तो भाई है हम और तुम। ओहो! आर्यिका बड़ी बेटी है और श्राविका छोटी बेटी है।

दोनों में कौनसा रिश्ता हुआ ? बहिन-बहिन का और मुनि और आर्यिका दोनों एक ही माँ के बेटे-बेटियाँ है। तो कौनसा रिश्ता हुआ भाई-बहिन का। ध्यान देना श्राविका छोटी बेटी है और आर्यिका बड़ी बेटी है। मुनि बड़ा बेटा है और श्रावक छोटा बेटा है। एक माँ की चार संतान श्रावक-श्राविका मुनि-आर्यिका। चर्तुविध संघ माँ जिनवाणी की संतान है। आपके पिता का नाम क्या है ?

अरहंत मेरे पिता है, जिनवाणी मेरी माता है, ओम् आचार्य, उपाध्याय, साधु यह मेरे भाई हैं अर्थात रविषेण आचार्य लिखते हैं मुनि धर्म श्रावक धर्म का बड़ा भाई और बड़ा भाई तो पिता के समान माना गया है भारतीय संस्कृति में लक्ष्मण भैया राम भैया के साथ रहते हैं उसी तरह से श्रावक को मुनि के साथ रहना चाहिये। यह छोटे भाई और बड़े भाई का रिश्ता है और कोई दूसरा रिश्ता नहीं है। न हम दूर के हैं न आप दूर के हैं लेकिन समस्त रिश्ते दूर के हो सकते हैं लेकिन हमारा रिश्ता और आपका रिश्ता तो सहोदर का रिश्ता है। ध्यान देना -

संसार के सब रिश्ते तो बाद में बनते हैं और बाद में बन सकते हैं लेकिन सहोदर का रिश्ता बाद में नहीं बनता है। बड़े भाग्य से होता है श्रावक होना, श्राविका होना, मुनि और आर्यिका होना यह तो अपने ही घर के सदस्यों का एक साथ होना है। भगवान के समोशरण में यही देशना खिरी चतुर्विध संघ मंगलकारी होता है।

प्रिय आत्मन् !

मुनि को मुनि धर्म पालन करना चाहिये तो श्रावक को क्या करना चाहिये ? बड़े भाई को अपना कार्य करना चाहिये लेकिन छोटे भाई को बड़े भाई से काम करना सीखना चाहिये। और बड़े

भाई को पिता के काम में हाथ बंटाना चाहिये। मैं तो बड़ा भाई हूँ और अरहंत भगवान मेरे पिता है मैं उपदेश दे रहा हूँ पिता के काम में हाथ बंटा रहा हूँ। और आप छोटे भाई है तो क्या करेंगे ? आपका काम है बड़े भाई की कार्य प्रणाली को देखो उसके साथ–साथ बैठो उसके साथ–साथ रहो और जो न बने न समझ में आये तो अपना बड़ा भाई है उससे पूछ लो उससे सीख लो। मुनि तो आपका बड़ा भाई है तो भाई से सीखने में, और बड़े भाई के घर आने में, बड़े भाई के पास बैठने में कोई आपत्ति नहीं है और आपत्ति भी हो तो हो लेकिन जब माँ के आँचल में बैठे है तो माँ तो चारों बच्चों को एक साथ गोद में बिठा लेती है। चाहे बड़ा भाई हो तो भी माँ की गोद में है। छोटा भाई है तो भी माँ की गोद में है। बड़ी बेटी है तो भी माँ की गोद में है। छोटी बेटी है तो भी माँ की गोद में है।

ज्ञानी जीवो ! अरे बड़ा भाई जिस आँचल का दूध पीता है छोटा भाई भी तो उसी आँचल का दूध पीता है। बड़ी बहिन जिस आँचल का दूध पीती है छोटी बहिन भी उसी आँचल का दूध पीती है। तात्पर्य यह है साधु को वही तत्त्वज्ञान है श्रावक को वही तत्त्व ज्ञान जिनवाणी से मिल रहा है दोनों को एक ही दुग्ध रूपी तत्त्व ज्ञान जिनवाणी माँ करा रही है तुम भले ही अलग–अलग बैठो लेकिन यह तो जिनवाणी श्रवण की वेला है। माँ की गोद है। जिनवाणी माँ की गोद में तो सब एक साथ आके विराजते हैं।

जिस तरह से जब एक माँ अपने बच्चों को त्यौहार पर बुला लेती है लेकिन जिनवाणी माँ कहती है बच्चो अपने जीवन का त्यौहार यही है जब तुम चार इकट्ठे बैठ जाते हो तो मेरे जीवन का त्यौहार आ जाता है। जिनवाणी माँ की आराधना में जब हम चार एक साथ बैठते हैं। माँ की खुशी तो यही है कि मेरे बेटा–बेटी एक साथ बैठे एक थाली में भोजन करें। अरे ! महाराज हमारे घर में इतना प्रेमभाव है कि हम सब एक साथ बैठकर एक थाली में भोजन करते हैं। लेकिन हमारे यहाँ तो इतना ज्यादा प्रेमभाव है कि हम तो एक हजार बैठकर के एक थाली में भोजन कर रहे हैं। ध्यान देना–

यह जिनवाणी माँ का प्रसाद है। यह तत्व ज्ञान तीर्थंकर के प्रवचन का प्रसाद है। आचार्य देव कहते हैं।

शान्तिं शान्ति जिनेन्द्र शान्त, मनसः त्वत्पाद पद्मा श्रयात्।
संप्राप्ताः पृथिवी   तलेषु बहवः, शान्त्यर्थिनः प्राणिनः॥

कारुण्यान् मम भाक्तिकस्य च विभो ! दृष्टिं प्रसन्नां कुरु॥
त्वत्पाद द्वय दैवतस्य गदतः, शान्त्यष्टकं भक्तितः॥

हे शांतिनाथ जिनेन्द्र! आपके चरण कमल मात्रका आश्रय लेने से शांति की प्राप्ति हो जाती है। उसी तरह मात्र जिनवाणी के पास आने से, गुरु के पास में आ जाने से ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है जैसे प्रज्वलित दीप के सामने पहुँचते ही पदार्थ प्रकाशित हो जाता है।

ज्ञानी! दीपक को कुछ लाभ हो या न हो लेकिन पदार्थ प्रकाश में पहुंचेगा वह तो प्रकाशित हो ही जायेगा।

एव सम्यग्दर्शन बोध चरित्रत्रयात्मको नित्यम्।
तस्यापि मोक्षमार्गो भवति निषेव्यो यथाशक्तिः॥

ज्ञानी जीवो! आचार्य अमृतचन्द्र ने जो बात कही है वह बात आपके हित में है। आपके पक्ष में है। आपके कल्याण में है। इस प्रकार सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र इन तीनों की एकता मोक्षमार्ग है। अभी तक आचार्य ने यह बताया है कि प्रवचन कर्ता कैसा होना चाहिए। सुनने वाला कैसा होना चाहिये यह सब बताने के साथ बहुत सारी विशेषतायें है। श्रोता में भी विशेषतायें होना चाहिये और वक्ता में भी विशेषता होना चाहिये।

"प्रत्यायनाय हीच्छा वक्तुरेव।" (3/20 परीक्षामुख)

समझाने की इच्छा वक्ता में होना चाहिये। यदि इच्छा शक्ति ही नहीं होगी तो वक्ता समझायेगा क्या? और ज्ञान नहीं होगा तो समझायेगा क्या? इसलिये आचार्य ने कहा है।

व्यवहार निश्चयज्ञाः प्रवर्त्तयंते जगति तीर्थम्।

जो व्यवहार और निश्चय दोनों का ज्ञाता है वह जगत में तीर्थ का प्रवर्तन करता है। ज्ञानी जीवो! जहाँ-जहाँ दिगम्बर संतो की देशना खिरा करती है उस धरा पर जैन शासन का तीर्थ चला करता है। ज्ञानी तू अचेतन रथ बना रहा है आचार्य कहते हैं यह धर्म का तीर्थ है। यह चैतन्य तीर्थ दिगम्बर मुद्रा जहाँ आ जाती है वहाँ पर चेतन तीर्थ ज्ञान रथ चला करता है।

ज्ञानी! ध्यान देना- वृषभ रथ चलना आसान है और गजरथ चलना भी आसान है। सिंह रथ भी चलना आसान है लेकिन सम्यक् दर्शन का रथ, सम्यक् ज्ञान का रथ और सम्यक् चारित्र का रथ यह तीनों रथ, जब चलते हैं तो यही मोक्ष के द्वार तक ले जाते हैं।

ज्ञानियो! वृषभ रथ में बैठना आसान है और गजरथ में बैठना आसान है। सिंह रथ में बैठना आसान है क्योंकि नरक निगोद की यात्रा करने वाले जीव भी वृषभ रथ, गजरथ और सिंह रथ में बैठ जाते हैं। क्योंकि नरकगामी चक्रवर्ती के पास भी गज रथ होता है। अश्व रथ, वृषभ रथ, नाना प्रकार के सिंह रथ भी होते हैं। लेकिन इस जिन शासन के रथ में, धर्म तीर्थ के रथ में बैठना बहुत कठिन है।

कल्याण मंदिर में आचार्य कुमुदचंद्र लिखते हैं हे जीवो आकाश में तीर्थंकर भगवान के समोशरण की सूचना देने वाली देव दुन्दुभि नाद कर रही है। हे-हे प्राणियों प्रमाद को छोड़कर के यहाँ आकर के मोक्ष पुरी के सारथी अरहंत भगवान और आपके नगर में पधारे मुनिराज मोक्षपुरी के सारथी है।

ज्ञानी जीवो! कुमुदचंद्र आचार्य लिखते हैं यह धर्म का तीर्थ है और उसके सारथी, ज्ञान रथ के सारथी, धर्म रथ के सारथी, चारित्र रथ के सारथी, श्रद्धा रथ के सारथी मुनिराज हैं। हे-हे प्राणियों प्रमाद को छोड़ो, आलस को छोड़ कर के इस धर्म रथ में बैठ जाओ यह तुम्हें मोक्षपुरी ले जायेगे।

प्रिय आत्मन् !

सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र इन तीनों की एकता मोक्ष का मार्ग है।

जियो और जीने दो।

मुनि हो तो मूलाचार के अनुसार जियो और श्रावक को श्रावकाचार के अनुसार जीने दो। उस गृहस्थ को भी मोक्ष-मार्ग होता है। जिस प्रकार बुखार की गोली पचास साल वाले के लिये और वही गोली पांच साल वाले बालक के लिये और वही गोली पांच महीने वाले बालक के लिये देते हो लेकिन अंतर क्या है? अंतर यह है कि मात्रा का अंतर डाल दिया Mg के माध्यम से मात्रा का निर्धारण करते हैं यह आपका विषय डॉक्टर जानते हैं। गोली चेंज नहीं है तो सम्यक् दर्शन चेंज नहीं है। सम्यक् ज्ञान भी चेंज नहीं है। सम्यक् चारित्र भी चेंज नहीं है। लेकिन उसकी मात्रा चेंज हो गयी यदि श्रावक हो तो एक देश और मुनि हो तो सर्व देश। रत्नत्रय में अंतर नहीं है श्रावक को भी रत्नत्रय पालना चाहिए-श्रावक को भी मोक्ष मार्ग होना है मुनि को रत्नत्रय पालना चाहिये।

तस्यापि मोक्षमार्गो भवति, निषेण्यो यथाशक्तिः।

यथा शक्ति सेवन करना चाहिये किसका रत्नत्रय का सम्यक् दर्शन ज्ञान, चरित्र का कुंद-कुंद देव समयसार में लिखते हैं -

णाणम्हि भावणा खलु, कादव्वा दंसणे चरित्तेय।
ते पुण तिण्णिवि आदा, तहा कुण भावणं आदे॥
दंसण णाण चरित्ताणि, सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णिवि अपाणं चेव णिच्छयदो॥ 16॥

प्रिय आत्मन् !

सम्यक् दर्शन में, ज्ञान में भावना करना चाहिये और चारित्र में भावना करना चाहिये यह तीनों आत्मा में होते हैं इसलिये आत्मा में भावना करना चाहिये। तन को स्वस्थ बनाने के लिये हर्र, बहेड़ा, आंवला त्रिफला की सेवन विधि है और चेतन को स्वस्थ बनाने के लिये सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र का सेवन करना चाहिये। तीन फल जिसमें है वह त्रिफला है और तीन रत्न जिसमें है वह रत्नत्रय है।

ज्ञानी जीवो! क्वालिटी में अंतर नहीं है, कम्पनी में अंतर नहीं है, वही क्वालिटी है वही कम्पनी है और उसी नाम की गोली है मात्र अंतर है मात्रा का। इनके लिये कहा पूर्ण रूप से पांच पाप का त्याग। मुनिराज क्या कर सकते हैं यदि मिट्टी भी लेंगे तो बिना पूछे मिट्टी भी नहीं ले सकते क्यों? अधिकार है किसी का तो।

ज्ञानी जीवो! मुनिराजों के लिये तो पाँचों पापों को पूर्णरूप से त्याग है ध्यान देना-भैया एक व्यक्ति वह है जो अपने शिर पर सौ किलो का भार रखे है। एक व्यक्ति वह है जिसके शिर पर पच्चीस किलो का भार है। एक व्यक्ति वह है जिसके सिर पर खाली बोरा अकेला रखा है मात्र एक किलो के बोरे का भार है और एक व्यक्ति वह है जिसके सिर पर वह भार भी नहीं है। चारों में कौन श्रेष्ठ है? आचार्य कहते हैं जैसे तू सौ किलो के भार को सिर पर रखकर ज्यादा दूर नहीं जा सकता है और जिसने सम्पूर्ण भार उतार दिया तो वह निर्भार हो जाता है और वह अपनी यात्रा पूरी कर लेता है उसी तरह हे ज्ञानी जीवो! सम्पूर्ण पापों का त्याग हो जाये तो जीवन धन्य हो गया। यदि पूरा नहीं कर सकते हो तो यात्रा तो प्रारम्भ करो। श्रावक धर्म मोक्ष जाने की लाइन है और मुनि धर्म भी मोक्ष

जाने की लाइन है लेकिन श्रावक धर्म से विलंब तो होता है और मुनि धर्म एक्सप्रेस की तरह उससे जल्दी पहुंच जाते हैं।

प्रिय आत्मन् !

देशना लब्धि जीवन की श्रेष्ठ उपलब्धि है। सब कुछ मिल जाना आसान है पर गुरु की देशना मिलना बहुत कठिन है। प्रवचन होना देशना लब्धि है। उपदेश होना देशना लब्धि है और यह देशना जहाँ भी मिल जाये आचार्य कहते हैं नरक में भी कोई उपदेश देने पहुंच जाये तो वहाँ पर भी कल्याण कर लेते हैं।

देशना लब्धि, सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि।

सम्यक्त्व की उपलब्धि का पहला कारण है- देशना लब्धि। ओहो ज्ञानी जीवो! यदि मैं आपके नगर में आकर उपदेश देता हूँ तो कहीं न कहीं कारण है या मेरा सातिशय प्रबल पुण्योदय है तभी तुमने मेरे लिये यह सौभाग्य दिया है।

ज्ञानी जीवो! महावीर की वाणी को बोलने के लिये जन्म-जन्म का सातिशय पुण्य चाहिये ध्यान देना-अन्यथा आसान बात नहीं कि जिनवाणी मुख से खिर जाये। आप दुकान पर बैठते हैं, गल्ला मंडी में बैठते हैं, दलाल बैठते हैं। दुकान में बैठकर ग्राहकों से बात कर लेना आसान है, गल्ला मंडी में बैठकर व्यापारियों से बात कर लेना आसान है। बस स्टेंड पर खड़े होकर के गांव-गांव के नाम बोल लेना आसान है लेकिन धर्म सभा में बैठकर के तीर्थंकर की वाणी को बोल लेना और सुन लेना बहुत पुण्यशाली पुरुष की पहिचान है।

✻ ✻ ✻ ✻

जीवादि तत्वों का यथार्थ श्रद्धान करने का उपदेश

जीवाजीवादीनां तत्त्वार्थानां सदैव कर्त्तव्यं।

श्रद्धानं विपरीताभिनिवेशविविक्तमात्मरूपं तत्॥ 22॥

अन्वयार्थ - (जीवाजीवादीनां) जीव अजीव आदिक (तत्त्वार्थानां) तत्त्वों का (विपरीताभिनिवेशविविक्तं) मिथ्या अभिप्राय रहित-मिथ्याज्ञान रहित-जैसे का तैसा (सदैव) सदा ही (श्रद्धानं) श्रद्धान-विश्वास-अभिरुचि-प्रतीति (कर्त्तव्यं) करना चाहिए (तत्) वही श्रद्धान (आत्मरूपं) आत्मा का स्वरूप है, अथवा आत्मस्वरूप है अर्थात् आत्मा से भिन्न पदार्थ नहीं है।

प्रिय आत्मन् !

माँ जिनवाणी, जगकल्याणी, अरिहंत भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य आचरित, उपाध्याय उपासित, सर्वसाधु साधित, जीव तत्त्व प्रबोधिनी, अजीव तत्त्व विवेचनी, सर्वास्रव निरोधनी, कर्म बंध विमोचनी, संवर पद प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण कारिणी, हे जिनवाणी माँ तेरी जय हो सदा विजय हो, तेरे विशाल पद में श्रुत सूर्य का सदय हो।

प्रिय आत्मन् !

जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय प्रवचनं।

प्रवचन सुनना जिनवाणी की पूजा है। गुरु वाणी सुन रहे हैं गुरु की पूजा हो रही है। अरहंत वाणी पर श्रद्धा करना ही अरहंत की पूजा है। प्रवचन जन्म-जरा-मृत्यु का विनाश करने वाला है। भव-ताप का विनाशक है- प्रवचनअक्षय पद को देने वाला प्रवचन है। काम-बाण को विध्वंश करने वाला जिनेन्द्र का प्रवचन है। मोह अंधकार को विनाशने वाला ज्ञान दीपक है प्रवचन ज्ञान।

क्योंकि मुनीन्द्र का प्रवचन मोह रूपी अंधकार को नष्ट कर देता है। अष्ट कर्म को दहन करने वाली अग्नि है-प्रवचन मोक्ष फल की प्राप्ति श्रीफल से हो या न हो लेकिन मुनिराज के मुखारबिंद से निकला हुआ प्रवचन का फल मोक्षफल को प्राप्त करने में समर्थ हैं। अनर्ध पद की प्राप्ति अर्घ चढ़ाने से हो न हो किन्तु प्रवचन के अर्घ से अवश्य प्राप्त हो जाती है। जिसमें सम्यक् ज्ञान के आठ अंगों का अर्घ बनाया गया है उससे अवश्य अनर्घ पद की प्राप्ति होती है।

प्रिय आत्मन् !

आज तक जितने जीवों ने जन्म-जरा मृत्यु का विनाश किया है वह प्रवचन को पाकर किया है। जिन जीवों ने भव-ताप का विनाश किया है प्रवचन को पाकर किया है। जिन जीवों ने अक्षय पद को प्राप्त किया है प्रवचन को पाकर किया है। जिन जीवों ने काम बाण विध्वंस किया है उन्होंने प्रवचन को पाया है। जिनने मोह अंधकार का नाश किया है उनने प्रवचन को पाया है। जिनने अष्ट कर्म का नाश किया है प्रवचन को पाकर किया है। और जिनने मोक्ष फल को पाया है पहले प्रवचन को पाया है। जिनने अनर्ध पद पाया है उनने पहले प्रवचन को पाया है। आज का प्रवचन सूचना देता है कि आप जन्म-जरा-मृत्यु का विनाश करने जा रहे हैं।

प्रिय आत्मन् !

पुरुषार्थसिद्धियुपाय आचार्य अमृतचंद्र देव की अनमोल कृति है। अहिंसा शास्त्र, विश्वधर्म शास्त्र, श्रावकाचार, पुरुषार्थ के प्रयोजन को सिद्ध करने वाला है। आचार्य देव लिखते हैं सर्वप्रथम सम्यक् दर्शन को प्राप्त करना चाहिये। कैसे करना चाहिये ? सम्पूर्ण प्रयत्नों के द्वारा सम्यक् दर्शन को प्राप्त करना चाहिये।

ज्ञानी जीवो ! सम्यक् दर्शन की प्राप्ति में दो कारण होते हैं एक तो बाह्य कारण होता है और दूसरा अंतरंग कारण होता है। सबसे पहले सम्यक्त्व को प्राप्त करना क्यों बताया है ? और ऐसी क्या विशेषता है सम्यक्त्व में ? ऐसी कौन सी गुणवत्ता है सम्यक्त्व में ? ऐसा कौनसा तत्त्व है सम्यक्त्व में, जिस विशष्टता के कारण चारित्र और ज्ञान से पहले सम्यकत्व को पाने का आचार्यों ने निर्देश दिया है। समग्र जिज्ञासाओं का समाधान हम पायेंगे।

प्रिय आत्मन् !

सम्यक् दर्शन मोक्ष रूपी वृक्ष का बीज है। सम्यक् दर्शन मोक्ष महल की पहली सीढ़ी है।

सम्यक् दर्शन कारण है सम्यक् ज्ञान कार्य है। सम्यक् दर्शन आत्मा का गुण है और आत्मा में उत्पन्न होता है। सम्यक् दर्शन निज श्रद्धा का विषय है। सम्यक् दर्शन आत्मरूचि रूप परिणाम है। सम्यक् दर्शन शास्त्र तत्त्व की प्रतीति के भेद-विज्ञान का फल है। सम्यक् दर्शन जीव और अजीव को जुदा-जुदा श्रद्धान करने का परिणाम है।

प्रिय आत्मन् !

सम्यक् दर्शन तीन लोक और तीन काल में सबसे दुर्लभ तत्त्व है। आज तक इस जीव ने संसार में आकर के अनंत भव पाये हैं लेकिन एक भी बार सम्यक् दर्शन को नहीं पाया। यदि एक बार भी सम्यक् दर्शन को पा लेता तो इस पंचम काल में आकर के जन्म नहीं होता। इसी तत्त्व से समझ ले कि वह चीज कितनी दुर्लभ होगी जिसे अनंत काल से नहीं पाया यदि पा लेता, तो सम्कग्दृष्टि होता तथा इस पंचम काल में जन्म नहीं लेता।

ध्यान देना पंचम काल में सम्यक् दृष्टि का जन्म नहीं होता है। चाहे इस धरती पर कोई कितना भी महान विद्वान महापुरुष क्यों न हो कितना भी महान हो। हम, तुम, आप, वे, सब जितने भी इस पृथ्वी पर हैं जितने भी मनुष्य हैं कोई भी हों इस पंचम काल में जन्म लेने वाले मिथ्यात्व के साथ ही जन्म लेते हैं। हम में से किसी भी जीव ने सम्यक् दर्शन के साथ जन्म नहीं लिया है और सम्यक् दर्शन होता तो पंचम काल में इस पाप के काल में कलिकाल में जन्म ही नहीं होता।

ज्ञानी जीवो ! ऐसा महान गुण सम्यक् दर्शन है। आचार्य कहते हैं सम्यक् दर्शन रत्न है, चेतन रत्न है और सम्यक् दर्शन जब तक नहीं हुआ तब तक काल अनंत है और जिस पल सम्यक् दर्शन हो जाये तो आचार्य कहते हैं मात्र अर्द्धपुद्गल परावर्तन काल शेष रह जाता है।

जैसे-समुद्र भर पानी हो और उसे चुल्लू में भर लिया जाये उसी प्रकार मिथ्यात्व की दशा में समुद्र के बराबर संसार है और सम्यक्त्व के आते है ही संसार भ्रमण चुल्लू भर जल के समान रह जाता है। ज्ञान और चारित्र के प्रभाव से चुल्लू भर जल भी सूख जाता है।

प्रिय आत्मन् !

सम्यक् दर्शन अंक लिपी का प्रथम अंक है और सम्यक् दर्शन के अभाव में सब शून्य हैं सम्यक् दर्शन के अभाव में ज्ञान और चारित्र शून्य है। ध्यान देना ज्ञानी जीवो। आप बैंक में हो चेक पर कितने शून्य लिखे जायें तो आप कितने रुपया देंगे ? कितने भी शून्य लिख दो एक भी रुपया

नहीं मिलेगा लेकिन सम्यग्दर्शन का अंक आगे है तो पीछे शून्य रखते जाओगे तो कीमत बढ़ती जायेगी। यदि सम्यक् दर्शन का अंक नहीं है ज्ञान, चारित्र, तप, त्याग, संयम, ये सब शून्य-शून्य-शून्य हैं, कब? सम्यक् दर्शन के अभाव में तो सम्यक् दर्शन अंक है सम्यक् दर्शन के बाद ज्ञान आ गया तो दस गुनी कीमत हो गयी। चारित्र आ गया तो सौ गुनी कीमत हो गयी और जो आता जाये सौ गुनी-गुनी और सम्यक् दर्शन के अभाव में जीरो कितना भी बड़ा हीरो हो लेकिन सम्यक् दर्शन के अभाव में जीरो (शून्य) है।

ज्ञानी जीवो! श्रद्धा की कीमत क्या है? अमूल्य है। श्रद्धा आत्मा के सिवाय कहीं नहीं उपजती है सम्यक्त्व का बहिरंग कारण जिनदर्शन आदि भी हो लेकिन अन्तरंग कारण तो आत्मा ही है।

मोक्खस्स कारणंआदा।

प्रिय आत्मन् !

मोक्ष का कारण आत्मा है और तुम कहते हो।

मोह का कारण शरीर और मोक्ष का कारण आत्मा है। सम्यक् दर्शन जब होगा, जहाँ होगा, मात्र आत्मा में ही होगा। ध्यान देना- अनंतानंत जीव संसार में हैं। ज्ञानी! एकेन्द्रिय जीव को सम्यक् दर्शन नहीं होता। दो इंद्रिय को सम्यक् दर्शन नहीं होता। त्रिनेन्द्रिय जीव असंख्यात-असंख्यात है। उनको सम्यक् दर्शन होने वाला नहीं है। चार इन्द्रिय जीव असंख्यात-असंख्यात हैं उनको सम्यक् दर्शन होने वाला नहीं है। ध्यान देना- असंज्ञी पंचेन्द्रिय को सम्यक् दर्शन नहीं होता है। सम्यक् दर्शन पाने के लिये संज्ञी पंचेन्द्रिय होना आवश्यक है।

प्रिय आत्मन् !

अनंत काल हमारा जो बीता है मिथ्यात्व में बीता है। दो इंद्रिय में मिथ्यात्व में बीते। तीनेन्द्रिय में श्रद्धा न जागी। चार इंद्रिय में श्रद्धा न जागी। पंचेन्द्रि में असंज्ञी हुये तो हित और अहित को न जान सके तो श्रद्धा क्या जागेगी? ध्यान देना- श्रद्धा पर को छूने से नहीं जागती है। श्रद्धा पर का स्वाद लेने से नहीं जागती है। श्रद्धा पर को सूंघने से नहीं जागती है। श्रद्धा आंखों से देखने से नहीं जागती है।

यदि छूने से श्रद्धा जागती तो एकेन्द्रिय को श्रद्धा जागनी चाहिये। यदि स्वाद लेने से श्रद्धा

जागती तो दोइन्द्रिय को सम्यक्त्व होना चाहिये। यदि सूंघने से श्रद्धा जागती है तो तीन्द्रिय को सम्यक्त्व होना चाहिये। यदि देखने से भी श्रद्धा जागती है, तो चार इंद्रिय को सम्यक्त्व हो जाना चाहिये। ध्यान देना-यदि मात्र सुनने से श्रद्धा जागती है तो असंज्ञी पंचेन्द्रिय को सम्यक्त्व हो जाना चाहिये। तो श्रद्धा जागती है। संज्ञी पंचेन्द्रिय को जिसके पास मन हो जो हित-अहित, लाभ अलाभ, शिक्षा, उपदेश को सुनकर के विचार कर सके, चिंतन कर सके वह जीव सम्यक्त्व का पात्र होता है सम्यकत्व का पात्र होने के लिये संज्ञी होना चाहिये।

ओहो! सोते हुये जीवों को सम्यक् दर्शन नहीं होता। ध्यान देना- अपने शयन कक्ष में एक बात जरूर लिख देना सोते हुये जीव को दुर्लभ सम्यक् दर्शन नहीं होता। जब भी नींद आये एक सूत्र ले लेना इसकी माला फेर लेना, याद कर लेना कि विभव सागर जी ने कहा था- सोते हुये जीव को, निद्रालु को दुर्लभ सम्यक् दर्शन नहीं होता है। सम्यक् दर्शन नींद में उत्पन्न नहीं होता है। सम्यक् दर्शन की उत्पत्ति सोते समय नहीं होती है।

प्रिय आत्मन् !

सम्यक्त्व की उत्पत्ति विशुद्ध परिणाम वाले को होती है। शुभ लेश्या वाले को होती है। अशुभ लेश्या में नहीं होती। शुभलेश्या चाहिये। विशुद्ध परिणाम चाहिये। जागृत उपयोग चाहिये। ध्यान देना इसके साथ ही तत्त्वार्थ का श्रद्धान चाहिये।

तत्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्। जीवादि सद्दहणं सम्मत्तं॥

आचार्य उमास्वामी से पूछा सम्यक्त्व क्या है? तो उमास्वामी जी बोले तत्त्वों पर श्रद्धान करना सम्यक् दर्शन है। कुंद-कुंद देव से पूछा तो कहते हैं -जीवादि पदार्थों के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है। नियम सार में कुंद-कुंद लिखते हैं।

अत्तागम तच्चाणं सद्दहणं सम्मतं।

आप्त, आगम और तत्त्वार्थ के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है। समंतभद्र स्वामी कहते हैं।

श्रद्धानं परमार्थाना, माप्ता-गम-तपो-भृताम्।

त्रिमूढा-पोढ मष्टाङ्गं, सम्यग्दर्शन-मस्मयम्॥ 4॥

तीन मूढता रहित, आठ अंग सहित परमार्थ रूप सच्चे देव,शास्त्र गुरू पर श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

सम्यक्‌दर्शन भवति!

प्रिय आत्मन् !

सम्यक्‌दर्शन भवति! सम्यक् दर्शन होता है। सम्यक् दर्शन किसको होता है? सम्यक् दर्शन आत्मा को होता है। किसमें होता है? आत्मा में होता है। ध्यान देना– ज्ञानी जीवो! यह दुर्लभ चीज आज होती है। धरती पर कुछ उगे चाहे न उगे इस देश में कुछ मिले चाहे न मिले हो सकता है अमेरिका में कुछ मिलता हो और चीन में कुछ मिलता है, जापान में कुछ मिलता हो लेकिन कोई भी चीज तुम्हें कहीं मिले न मिले लेकिन ज्ञानी आत्माओं तुम्हारे लिये हो सकता है विश्व की कोई दूसरी चीज न मिले लेकिन मैं आपसे आज धर्म सभा के माध्यम से और भगवान महावीर स्वामी का जो तीर्थ चल रहा है इस तीर्थ के माध्यम से अवश्य कहूँगा कि विश्व की सबसे अनमोल जो चीज है वो कहीं मिले चाहे न मिले लेकिन जो प्रवचन चल रहा है यदि प्रवचन पर श्रद्धा हो गयी तो आपकी आत्मा में वह दुर्लभ सम्यक् दर्शन आज ही अभी यहीं मिल सकता है।

प्रिय आत्मन् !

जब दो मुनिराज शेर को मुक्ति दिला सकते हैं। जब एक मुनिराज जटायु पक्षी को सम्यक् दृष्टि बना सकते हैं तो ज्ञानी जीवो! आज का यह उपदेश हमारे लिये क्या सम्यक् दृष्टि नहीं बना सकता? अरे! बनायेगा क्या? महाराज श्री हम तो सम्यक् दर्शन के साथ ही आपके सामने आये हैं। किस विषय में संदेह है। ज्ञानी जीवो! ध्यान देना –

श्रद्धानं सदैव कर्त्तव्यं।

श्रद्धा सदा करना चाहिये। सम्यक् दर्शन होता है। किसको होता है? प्रत्येक जीव को होता है, जो निकट भव्य जीव है। अभव्य को सम्यक् दर्शन नहीं होता है। दूरान्दूर भव्य को नहीं होता है जो निकट भव्य है आसन्न भव्य है उसको तो आज ही सम्यक् दर्शन हो सकता है अभी सम्यक् दर्शन हो सकता है यही सम्यक् दर्शन हो सकता है। सम्यक् दर्शन को लेने के लिये बाहर नहीं जाना? सम्यक् दर्शन को लेने के लिये अपने स्वरूप के भीतर आ जाना क्योंकि सम्यक् दर्शन तो आत्मा का गुण स्वरूप है।

सम्यक् दर्शन को लेने के लिये बाहर नहीं जाना है। सम्यक् दर्शन किसी दुकान पर नहीं मिलता है। कितना भी बिग बाजार हो, कितना भी बड़ा बाजार हो किसी भी विश्व व्यापार के पास सम्यक् दर्शन नहीं मिलेगा उस सम्यक् दर्शन को पाने के लिये तो हमें किसी निर्ग्रंथ की शरण में आना होगा।

सम्मत्तस्य णिमित्तं जिण सुत्तं तस्स जाणिया पुरिसा।

ज्ञानी जीवो! कुंद-कुंद देशना है कि सम्यक् दर्शन का निमित्त जिन सूत्र है। पुरुषार्थ सिद्ध युपाय जिन सूत्र है यह सम्यक् दर्शन का निमित्त है। निमित्त से नैमित्तक कार्य हुआ करता है। कमल खिलते हैं कमल में ही कमल खिलता है लेकिन वह कमल जब भी खिलता है तो सूरज के उदय होने पर ही खिलता है उसी तरह से निर्ग्रंथ संतो की देशना जिन शास्त्रों का श्रवण जिस धरा पर होता है उस धरा पर भव्य जीवों के मन कमल सम्यक् श्रद्धा से खिल उठते हैं।

प्रिय आत्मन् !

सम्यक् दर्शन होता है। यह त्रैलोक्य दुर्लभ संपत्ति हजारों- लाखों जीवों में यदि एक को भी सम्यक् दर्शन हो गया। बोलिये ज्ञानियो। क्या उस जंगल में कोई जानवर नहीं था दूसरा जिस जंगल में मात्र एक शेर के लिये मुनिराज आकाश मार्ग से उतरकर उपदेश देने आ गये। ध्यान देना -

ज्ञानी जीवो! आकाश मार्ग से उतरकर के शेर को उपदेश देने आ गये और भी जीव थे लेकिन सबका ऐसा पुण्य नहीं है कि गुरु का उपदेश सबको मिल जाये उपदेश को भी सुनने का पुण्य भी विशेष चाहिये क्योंकि पुण्य के बिना भी पुण्य जगता कहाँ है। पुण्य को जगाने के लिये भी पुण्य चाहिये। पुण्य को कमाने के लिये पुण्य चाहिये। पुण्य को पाने के लिये भी पुण्य चाहिये। ध्यान देना -

पुण्य परिणाम जब जगते हैं तो हम प्रवचन सभा में आकर के भगवान की देशना सुन लेते हैं और पाप जागता है तो समोशरण से बाहर भी चले जाते हैं। ज्ञानी जीवो! पहले दीपक का जलना होता है ज्यों ही दीपक जलता है तो प्रकाश भी हो जाता है श्रद्धा जागती है तो ज्ञान हो जाता है।

आप सम्यक् दर्शन को चाहते हैं क्या ? चाहते हैं, नरक में भी सम्यक् दर्शन होता है आचार्य कहते हैं सम्यक् दर्शन की महिमा ऐसी है।

वरम् नरक वासोऽपि, सम्यक्त्वेन समायुतः।
न तु सम्यक्त्व हीनस्य, निवासो दिवि राजते।।

प्रिय आत्मन् !

सम्यक् दर्शन के साथ नरक में रहना श्रेष्ठ है। किंतु मिथ्यात्व के साथ स्वर्ग में रहना अच्छा नहीं है। और सम्यक्त्व के साथ नरक में रहना अच्छा है। ज्ञानी जीवो! आज वर्तमान में हम अपने परिवार इष्ट-मित्रों को बड़ी-बड़ी ऊँची सर्विस के लिये देश-विदेश भेज देते हैं। जहाँ उन्हें सम्यक्त्व का कोई आधार नहीं मिलता है। जिनेन्द्र देव और पूजा का आधार भी वंचित हो जाता है।

ज्ञानी जीवो! आचार्य कहते हैं सम्यक् दर्शन के साथ नरक में रहना ठीक है लेकिन मिथ्यात्व के साथ स्वर्ग का वैभव भी ठीक नहीं है। ज्ञानी जीवो सच्ची श्रद्धा कैसे उमड़ती है? तत्त्व को सुनने से श्रद्धा उमड़ती है आचार्य देव लिखते हैं।

सुनना, जानना, भावना करना और धारण करना यदि हम लिख दे एक-एक-एक-एक ग्यारह सौ ग्यारह हो गये अब ग्यारह सौ ग्यारह जीवों में ग्यारह सौ ग्यारह जब प्रवचन को सुनते हैं और सुनने के बाद जानते एक सौ ग्यारह और उसको समझने वाले ग्यारह हैं और उसको धारण करने वाला एक है। आचार्य देव कार्तिकेय स्वामी ने कार्तिकायेनुप्रेक्षा मैं यह तथ्य लिखा है।

प्रिय आत्मन् !

ग्यारह सौ ग्यारह में से मात्र एक सौ ग्यारह प्रवचन को जान पाते हैं एक हजार तो जान ही नहीं पाते हैं। महाराज! प्रवचन तो समझ में ही नहीं आता है हम क्या करें आचार्य पहले ही लिख गये हैं सबकी समझ में नहीं आयेगा। ज्ञानी जीवो! तो क्या करोगे प्रवचन सुनने नहीं आओगे? नहीं ऐसा मत करना, आना पड़ेगा। ध्यान देना- मेरा प्रवचन तो रेडीमेड की दुकान है और रेडीमेड की दुकान पर तुम चाहो की हमारे नाप का पूरा कपड़ा हो तो नहीं सबके नाप के कपड़े है यदि छोटा बालक है तो उसके समझ में भी आने वाला कुछ तत्त्व होगा तो कुछ बड़े की समझ में आने वाला तत्त्व है। चाहे वह महिला हो, चाहे पुरुष हो, चाहे बालक हो, चाहे वृद्ध हो, जैसे रेडीमेड की दुकान पर सब के नाप का कपड़ा होता और तीर्थंकर भगवान की देशना में तो ऐसा होता है कि तिर्यंच भी अपनी-अपनी भाषा में समझ लो।

ज्ञानी जीवो! यह तीर्थंकर की जो देशना सम्यक्त्व का कारण है और जिन शास्त्रों को जानने वाले आचार्य, उपाध्याय, साधु यह सम्यक् दर्शन के कारण हैं। यदि आपके सामने दिगम्बर यति विराजमान है तो सम्यक् दर्शन का कारण है चाहे वह मौन हो, चाहे वह बोलता हो ध्यान देना– नरक गति में सम्यक् दर्शन के कौन–कौन से कारण है? वेदना, जातिस्मरण, धर्म श्रवण...

भो ज्ञानी जीवो! जो जीव यहाँ पर श्रद्धा नहीं करेंगे। वे नरक में मानेंगे। जो जीव महाराज की नहीं मानेंगे तो यमराज की मानेंगे और याद करेंगे की यहाँ पर महाराज श्री ने देशना दी थी और कहा था भैया मद्य, मांस, मधु का त्याग कर दो यदि तुम पाप नहीं छोड़ पाये तो क्या होगा? नरक सात क्यों होते हैं? क्योंकि व्यसन सात होते हैं। मैं इस नरक में क्यों आ गया? महाराज श्री ने कहा था कि व्यसन छोड़ दो लेकिन मैंने व्यसन नहीं छोड़ा है इसलिये मैं नरक में पड़ा हूँ। और जब नरक में एक दूसरे नारकी पिटाई करते है ' तब याद आयेगा कि मैं क्यों पिट रहा हूँ क्योंकि मैंने धर्म का आचरण नहीं किया उस समय महाराज ने समझाया था यदि समझ जाता तो मैं नरक में नहीं आता।

प्रिय आत्मन् !

जो बेटा माँ की बात प्यार से न माने माँ ने कहा बेटा चोरी नहीं करना चाहिये। लेकिन बेटा ने चोरी करना नहीं छोड़ा और पुलिस के हाथों पकड़ा गया तो पुलिस के डंडे लगे तब माँ याद आयी। घर में माँ याद नहीं आयी। मंदिर में माँ याद नहीं आयी। जेल में माँ याद आयी कि माँ ने कहा था कि चोरी नहीं करना चाहिये काश! मैं माँ की बात मान लेता तो आज जेल में डंडे नहीं लगते उसी तरह भो ज्ञानी! माँ एक बार मुझे बचा लो मैं दोबारा ऐसा पाप नहीं करूँगा, मैं चोरी नहीं करूँगा ऐसा विचार करते हैं हे गुरुदेव! अब मुझे इस नरक से निकाल लो। हे अरहंत देव! अब मुझे इस नरक से निकाल लो मैं आपकी वाणी पर श्रद्धा करता हूँ आगे कोई व्यसन सेवन नहीं करूँगा। ऐसी भावना जागते ही मात्र वेदना से सम्यक्त्व नहीं होता है। वेदना के समय तुम अनुभव क्या कर रहे हो। यदि अनुभव में देव शास्त्र गुरु आ जायें तो महानता है ध्यान देना –

शरीर पर तो त्रिशूल चल रहे है। शरीर पर तलवार चल रही है। शरीर पर प्रहार चल रहे हैं। और शरीर पर नाना प्रकार की यातनायें चल रही है लेकिन वह यातनाओं के काल में जब जीव मुनि के प्रवचन को याद कर लेता है तो देशना लब्धि जो सत्ता में पड़ी थी वह देशना लब्धि नरक में सम्यक् दर्शन का कारण बन जाती है।

देशना लब्धि श्रेष्ठ उपलब्धि।

आज का प्रवचन संख्यात-असंख्यात वर्ष के बाद में भी तुम्हारे काम आयेगा। ध्यान देना-जमीन के अंदर बीज पहुँच चुका है वह कभी न कभी तो उगेगा। ध्यान देना- उगने में समय भले ही लगे जब तुम्हें नौ महीने का समय लग सकता है बाहर आने में, तो तुम्हारे भीतर में सम्यक्त्व जागने में समय भले ही लग जाये लेकिन कभी न कभी तो जागेगा सम्यक्त्व। ध्यान देना-ज्ञानी जीवो। सम्यक्त्व जागेगा।

सबसे पहले नरक में भी सम्यक्त्व होता है। तिर्यंच गति में भी सम्यक्त्व होता है। जातिस्मरण से, धर्मश्रवण से, और जिन बिंब दर्शन से ओहो! आज हम जिनेन्द्र भगवान के दर्शन की बात करते हैं आचार्य कहते हैं पशु भी यदि दिगम्बर मुनि को देख ले तो उस जानवर को भी सम्यक् दर्शन हो सकता है।

हाथी की पर्याय में पारसनाथ को सम्यक् दर्शन हुआ है। गिद्ध पक्षी की पर्याय में जटायु पक्षी को सम्यक् दर्शन हुआ है। दिगम्बर मुनि के दर्शन से जब एक पशु भी सम्यक्त्व पा सकता है तो हम मनुष्य गण क्यों नहीं पा सकते हैं जो श्रद्धा हाथी के अंदर जागी, जो भाव जटायु पक्षी के अंदर जागा क्या वहीं भाव मेरे अंदर जाग सकता है? यदि जाग सकता है तो मैं नियम से कहता हूँ और जागा है तो मैं कहता हूँ कि आप व्यवहार से नियम से सम्यक्दृष्टि ही हैं। यह व्यवहार सम्यक् दर्शन का परिचय हैं यह सराग सम्यक् दर्शन का परिचय है यदि सराग सम्यकत्व न होता तो आप निरंतर देव शास्त्र गुरु की सन्निधि में न आते। आपका आना देव शास्त्र गुरु की उपासना करना यह सराग सम्यक्त्व का परिचय है।

जैसे- चार स्तम्भ के ऊपर छत का निर्माण होता है वैसे ही प्रशम, संवेग, आस्तिक्य, अनुकम्पा इन चार स्तम्भ के ऊपर सम्यक् दर्शन की छत ढल जाती है। कषायों का कम होना प्रशम भाव है। धर्म और धर्म के फल में खुशी होना यह संवेग आपके सम्यक् दर्शन का चिन्ह है। संवेग धर्म और धर्म के फल को देखकर चित्त में हर्ष हो जाना यह संवेग है। आस्था भाव का जन्म होना आस्तिक्य है। जीवों पर दया का भाव होना अनुकम्पा है।

ज्ञानी जीवो! सम्यक् दर्शन मनुष्य गति में भी होता है। धर्मश्रवण, जातिस्मरण, जिनबिंब दर्शन, जिनेन्द्र भगवान के दर्शन ने गौतम स्वामी के लिये सम्यक् दर्शन पैदा करा दिया। पात्र केशरी ने पारसनाथ का अहिच्छेत्र में दर्शन किया सम्यक् दर्शन हो गया। जिनबिंब दर्शन सम्यक् दर्शन का कारण है और जिनबिम्ब में दिगम्बर मुनि भी आते हैं और मुनिराज चलते फिरते जिनबिम्ब है। ध्यान देना-इसलिये इनका श्रद्धान भी सम्यक् दर्शन का कारण है। प्रवचन का सुनना सम्यक्त्व का कारण है।

प्रवचनं सम्यक्त्वं कारणं।

प्रवचन सम्यक् दर्शन का कारण है। इसलिये मैं बार-बार कहता हूँ प्रवचन नहीं छोड़ना चाहिये। प्रवचन कर्ता को आगम से प्रवचन करना चाहिये और श्रोता को प्रवचन छोड़ना नहीं चाहिये।

प्रिय आत्मन् !

आपकी पचास ग्राम मिठाई में कर्नाटक का काजू है। किसी प्रदेश की बादाम है। किसी प्रदेश की शक्कर है। किसी प्रदेश का घी है और किसी प्रदेश के रसोईया हैं उसको बनाने वाले अब बताइये जब पचास ग्राम मिठाई में इतना सब कुछ हो सकता है तो फिर एक दिगम्बर मुनि के पचास मिनिट के प्रवचन में क्या-क्या नहीं हो सकता है। ध्यान देना -

ज्ञानी जीवो! एक प्रवचन में जीवन के समग्र अनुभव और अनेक शास्त्रों का निचोड़ हुआ करता है।

प्रिय आत्मन् !

मनुष्य गति में भी सम्यक्त्व होता है। देवगति में भी सम्यक्त्व होता है। सम्यक्त्व चारों गतियों में होता है। आपको सम्यक् दर्शन होता है, हो सकता है, इसमें कोई संदेह की बात नहीं है। यह सम्यक् दर्शन के बहिरंग कारण हैं। यदि तुम्हारी कषाय छह महीने से आगे जा रही है तो सम्यक्त्व पर प्रश्न चिन्ह खड़ा है कि सम्यक् दृष्टि हो कि नहीं इसलिये रोज टटोलते रहना चाहिये कि हमारा किसी से बैर तो नहीं।

खम्मामि सव्व जीवाणं।

सबको क्षमा कर देना चाहिये, क्षमा मांग लेना चाहिये। मैं तो दिन में तीन-तीन बार मांग लेता हूँ। क्षमा करने से किसी का कुछ हो चाहे न हो लेकिन अपने परिणाम तो निर्मल हो ही जाते हैं और कभी क्षमा मांगों चाहे न मांगो लेकिन आहार करने से पहले क्षमा मांग लेना चाहिये। सामायिक करने से पहले और आहार करने से पहले क्षमा जरूर मांग लेना चाहिये।

यदि क्षमा मांग लेंगे तो उनका भला हो या न हो उनके ऊपर है लेकिन मेरे भाव तो निर्मल हो ही जायेंगे तो हमारा सम्यक् दर्शन बना रहेगा।

प्रिय आत्मन् !

यदि जल में कचरा हो तो फिटकरी डाल देना तो जल शुद्ध हो जायेगा और हृदय में अपवित्रता हो तो प्रवचन डाल देना तो शुद्ध हो जायेगा। ध्यान देना– ज्यों ही कचरा नीचे बैठ गया तो समझ लेना कि उपशम सम्यक्त्व हो गया। यदि थोड़ा बैठ गया और थोड़ा हिल रहा है कचरा तो समझो फिटकरी डालना बेकार नहीं है। क्षयोपशम सम्यक् दर्शन हो गया। और यदि कचरा नीचे बैठ गया तो चतुराई का काम कर लेना कि धीरे से एक और गिलास लेना और निर्मल जल दूसरे गिलास में डाल देना और कचड़े को अलग कर देना तो वह कभी भी कचरा उसमें नहीं आयेगा इसका नाम है क्षायिक सम्यक् दर्शन।

ज्ञानी जीवो! उपशम सम्यक्त्व का काल अंतरमुहूर्त का है। क्षयोपशम सम्यक्त्व का उत्कृष्ट काल छ्यासठ सागर का है और क्षायिक सम्यक् दर्शन का काल अनंत काल तक नष्ट होने वाला नहीं है।

एक प्रवचन में यदि श्रद्धा जाग जाती है तो तुम्हारे लिये वह प्रवचन मोक्ष का कारण बन जाता है।

प्रवचनं मोक्ष कारणं।

प्रवचन तो मोक्ष का कारण है। चारों गतियों में सम्यक् दर्शन होता है। भव्य जीव को सम्यक् दर्शन होता है। इस युग में सम्यक् दर्शन होता है। इस काल में सम्यक् दर्शन होता है। दिन में सम्यक् दर्शन होता है। रात में सम्यक् दर्शन होता है। सुबह सम्यक् दर्शन होता है। दोपहर में सम्यक् दर्शन होता है। शाम को सम्यक् दर्शन होता है। जब सच्ची श्रद्धा जाग जाये तभी सम्यक् दर्शन होता है। सम्यक् दर्शन के लिये और कहीं नहीं जाना है बस निज घर में आना है।

श्रद्धानं सदैव कर्त्तव्यं!

* * * *

सम्यग्दर्शन के आठ अंगों में प्रथम निःशंकित अंग का स्वरूप

सकलमनेकांतात्मकमिदमुक्तं वस्तुजातमखिलज्ञैः।
किमु सत्यमसत्यं वा न जातु शंकेति कर्तव्या॥ 23॥

अन्वयार्थ - (इदं) यह (सकलं) सम्पूर्ण (वस्तुजातं) वस्तु समूह (अखिलज्ञैः) सर्वज्ञदेवने (अनेकातांत्मकं) अनेकांतस्वरूप (उक्तं) कहा है; (किमु) क्या (सत्यं) सत्य है (वा) अथवा (असत्यं) असत्य है (जातु) कभी (इति) इस प्रकार (शंका) शंका-संदेह (न) नहीं (कर्तव्या) करना चाहिए।

प्रिय आत्मन् !

माँ जिनवाणी, जगकल्याणी, अरिहंत भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य आचरित, उपाध्याय उपासित, सर्वसाधु साधित, जीव तत्त्व प्रबोधिनी, अजीव तत्त्व विवेचनी, सर्वास्रव निरोधनी, कर्म बंध विमोचनी, संवर पथ प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल धारिणी, पाप-ताप-संताप-हारिणी, विश्व कल्याणकारिणी, हे माँ जिनवाणी तेरी जय हो सदा विजय हो, तेरे विशाल पद में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन् !

गंगा की धार में, मलय की बयार में, सृष्टि के श्रृंगार में, सरगम के गान में, वीणा की तान में, देश के सम्मान में, भारत के संविधान में, एक ही स्वर गूंज रहा जय जिनवाणी जय महावीर। प्राणियों के प्राण में, दानियों के दान में, ज्ञानियों के ज्ञान में, ध्यानियों के ध्यान में, विरागियों के

विराग में, त्यागियों के त्याग में, भक्तों के अनुराग में, विद्या और विराग में एक ही स्वर गूंज रहा जय जिनवाणी जय महावीर।

प्रिय आत्मन् !

उभय नय के विरोध को दूर करने वाली इस जिनवाणी की महिमा ऐसी है कि जो भव्यजीव जिनवाणी का रसपान करते हैं वे अनादि कालीन मोह का वमन कर शाश्वत स्वस्थता को प्राप्त हो जाते हैं। यह जिनवाणी ही संजीवनी और परमौषधि है। यह जिनवाणी सर्वोषधि है। जो जीव के जन्म जरा और मृत्यु जैसे मोह का निवारण कर देती है।

प्रिय आत्मन् !

अनादि काल से इस जीव ने इस जिनवाणी को प्राप्त नहीं किया यदि एकबार भी जिनवाणी को प्राप्त कर लेता तो यह जीव नरक निगोद की यात्रा नहीं, सिद्ध लोक की यात्रा करता।

प्रिय आत्मन् !

माँ जिनवाणी के प्रसाद से तीन लोक की यात्रा पूर्ण हो जाती है। कौन श्रेष्ठ है? तीन लोक में भ्रमण वाला श्रेष्ठ है कि जिनवाणी का स्मरण करने वाला श्रेष्ठ है।

प्रिय आत्मन् !

एक कथानक आता है कि गणेश और कार्तिकेय दोनों अपने-अपने स्थान पर बैठे हैं और दोनों की श्रेष्ठता में कौन श्रेष्ठ है गणेश श्रेष्ठ है कि कार्तिकेय श्रेष्ठ है। जैन दर्शन में गणधर स्वामी को गणेश कहते हैं। कौन श्रेष्ठ है? ध्यान देना ज्ञानी जीवो! कथानक आता ही क्यों? माँ विराजमान थी। दोनों भाई विचार करते हैं गणेश जी सोचते हैं। कि मेरा वाहन तो चूहा है और कार्तिकेय विचार करते हैं कि मेरा वाहन तो मयूर है मैं उड़के जल्दी आऊँगा। मैं तीन लोक की परिक्रमा जल्दी करके आ जाऊँगा, इसलिये मैं ही बड़ा कहलाऊँगा और गणेश जी अपनी बुद्धि का उपयोग करते हैं, माँ की परिक्रमा लगाकर विजय पाते हैं। कथानक से यह सिद्ध होता है कि एक ओर माँ जिनवाणी हमारे सामने है एक ओर तीरथ की यात्रा है, यदि हम जिनवाणी की परिक्रमा कर लेते हैं, जिनवाणी का स्मरण कर लेते हैं। जिनवाणी को याद कर लेते हैं। जिनवाणी का पठन-पाठन करते हैं तो ध्यान रख लेना यह जिनवाणी माँ की परिक्रमा है और जिनवाणी माँ की परिक्रमा करने वाला तीन लोक की यात्रा एक क्षण में कर लेता है।

प्रिय आत्मन् !

माँ जिनवाणी हमें तीन लोक की यात्रा तो एक पल में करा देती है तथा तीन लोक के भ्रमण से भी बचा लेती है। कल हमने देखा 'श्रद्धानं सदैव कर्त्तव्यं' आज भी हमारा विषय वही है।

प्रिय आत्मन् !

सम्यक् दर्शन का विषय चल रहा है। सम्यक् दर्शन को चार अनुयोगों से जाना जाता है। प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग।

प्रथमानुयोग को नमस्कार हो। करणानुयोग को नमस्कार हो। चरणानुयोग को नमस्कार हो। द्रव्यानुयोग को नमस्कार हो। सम्यक् दर्शन का स्वरूप प्रथमानुयोग से समझिये प्रथमानुयोग का तात्पर्य है जिसमें महापुरुषों के चरित्र का वर्णन है, तीर्थंकर चौबीस होते हैं। परमेष्ठी पाँच होते हैं। चक्रवर्ती बारह होते है। कामदेव चौबीस होते हैं। इस तरह जो महापुरुषों का वर्णन करता है वह प्रथमानुयोग का विषय हैं और प्रथमानुयोग सुनकर के इनके सत्य स्वरूप का विचार और श्रद्धा करना यह प्रथमानुयोग का सम्यक् दर्शन है।

तीर्थंकर चौबीस हैं। तुम्हारी श्रद्धा पक्की है तो भविष्य में कभी किसी पच्चीसवें तीर्थंकर का नाम यदि सुनने में आ जायेगा और तुम्हारा सम्यक् दर्शन पक्का है तो तुम पच्चीसवें को स्वीकार नहीं करोगे।

ज्ञानी जीवो! प्रथमानुयोग का सम्यक् दर्शन महापुरुषों के चरित्र को सुनकर के जो श्रद्धा पैदा होती है वह प्रथमानुयोग का सम्यक् दर्शन है। करणानुयोग का सम्यक् दर्शन क्या है? दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृतियाँ, चारित्र मोहनीय की चार प्रकृतियाँ इनके उपशम से अथवा क्षय से अथवा क्षयोपशम से जो श्रद्धा गुण की निर्मल पर्याय प्रकट होती है वह करणानुयोग का सम्यक् दर्शन है।

ज्ञानी जीवो! चरणानुयोग का सम्यक् दर्शन क्या है?

तीन मूढ़ता रहित, छह अनायतन रहित, आठ मद रहित, आठ गुण सहित, जो देव शास्त्र गुरु पर श्रद्धा है वह हमारा चरणानुयोग का सम्यक्त्व है। सप्त व्यसन रहित जो आचरण है वह सम्यक्त्वा चरण है। अष्ट मूल गुण सहित जो आचरण है वह सम्यक्त्व आचरण है।

प्रिय आत्मन् !

द्रव्यानुयोग का सम्यक् दर्शन क्या है?

जीवादि सद्दहणं सम्मत्तं।

जीवादि द्रव्यों पर श्रद्धान होना यह सम्यक्त्व है। कैसा श्रद्धान होना तो आचार्य लिखते हैं।

भूयत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्यापावं च।
आमनसंवर णिज्जरबंधो मोक्खो य सम्मत्तं॥ 3॥

भूतार्थ रूप से, सत्यार्थ रूप से, जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष इन सात तत्त्वों पर श्रद्धान करना सम्यक् दर्शन है। अथवा

तत्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्।

तत्त्व और अर्थों के श्रद्धान को सम्यक् दर्शन कहते हैं। यह आपका द्रव्यानुयोग का सम्यक् दर्शन है। महाराज! चारों अनुयोगों में कौन सा सम्यक् दर्शन श्रेष्ठ है? चारों ही श्रेष्ठ है। प्रथमानुयोग बोधि समाधि का खजाना है। चरणानुयोग चारित्र का खजाना है। और द्रव्यानुयोग आत्म तत्त्व का निर्णय देता है। करणानुयोग परिणामों का कथन करता है। सब की विद्या अलग-अलग है।

प्रिय आत्मन् !

यदि किसी को आदर्श बनाकर जीवन चलाना चाहते हो तो प्रथमानुयोग अनिवार्य है। परिणामों को सम्हालना हो तो करणानुयोग अनिवार्य है। चारित्र को सम्हालना हो तो चरणानुयोग अनिवार्य है और आत्म तत्त्व पर यथार्थ श्रद्धा लाना हो तो द्रव्यानुयोग अनिवार्य है।

जैसे गाय के चार स्तन में से चारों स्तन का दूध अच्छा होता है उसी तरह से जिनवाणी के चार अनुयोग हैं चारों में एक समान ज्ञान है। यदि बछड़ा चाहे किसी भी स्तन का दुग्ध पान करे दूध समान होता है, उसी तरह चाहो तो प्रथमानुयोग का रसपान करो। चाहे करणानुयोग का रसपान करो, चाहे चरणानुयोग का रसपान करो, चाहे द्रव्यानुयोग का रसपान करो, चाहो तो चारों का करो, कौन मना करता है, ध्यान देना -

जैसे - भोजन में सभी प्रकार के व्यंजन होते हैं तो तुम्हारा भोजन में मन लगता है, लेकिन यहाँ पर आचार्य कहते हैं कि जिनको पूर्ण शुद्ध खाना है तो दाल अलग खा लेंगे और चावल अलग खा लेंगे लेकिन हम ऐसे जीव है कि षट्रस व्यंजन का भोजन हमें रुचिकर होता है।

आचार्य कहते हैं उसी तरह जिन्हें चारों अनुयोग प्रिय हैं वे चारों अनुयोगों का अध्ययन करें और जो इनसे ऊपर उठ चुके हैं वे फिर धीरे-धीरे आगे बढ़कर के अपने ध्यान मे लवलीन हो जाते हैं तो किसी भी एक अनुयोग का आश्रय लेते हैं। या एक सूत्र या अनुयोग का आश्रय लेते हैं या एक सूत्र का आश्रय लेते हैं। या एक शब्द का आश्रय लेते हैं। या एक अक्षर का आश्रय लेते ओम् का आश्रय लिया और आत्मा का कल्याण कर लेते हैं।

जैसे- आदिसागर जी अंकलीकर थे वह सात दिन में एक दिन जब आहार के लिये निकलते थे एक ही अन्न आहार में लेते थे। कोई भी एक पदार्थ आहार में लेंगे और उनका चलता था।

ज्ञानी जीवो! सबकी रुचि और सबकी प्रकृति भिन्न-भिन्न हुआ करती है सबकी पाचन शक्ति भिन्न-भिन्न होती है। उसी तरह कोई करणानुयोग को पचा सकता है। कोई प्रथमानुयोग पचा सकता है। चारों ही अनुयोगों से सम्यक्त्व उत्पन्न होता है।

आचार्य देव कहते हैं -

जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहा गया तत्त्व अत्यंत सूक्ष्म है। पानी की एक बूंद में असंख्यात जीव होते हैं इन्हें आंखों से देखो तो एक नहीं दिखता है और माइक्रोस्कोप से देखो तो साक्षात चलते दौड़ते उसमें लाखों जीव दिखते हैं।

जिस तरह पानी का गड्ढा भरा हो तो उसमें नाना प्रकार के जीव एवं नाना प्रकार की काई के जीव हो जाते है। उसी तरह जितने जीव बड़े गड्ढे में हैं, उतने ही पानी की एक बूंद में है। परन्तु इतने सूक्ष्म हैं कि हमारे ज्ञान में नहीं आते है। हेतु देने से जिनका हरण नहीं होता है, खण्डित नहीं होते हैं। पानी की बूंद में असंख्यात जीव होते हैं। उसको आज्ञा प्रमाण मानकर स्वीकार करना चाहिये यही सम्यक् दर्शन है। क्योंकि जिनेन्द्र भगवान अन्यथा कथन नहीं करते हैं।

ज्ञानी जीवो! सम्यक् दर्शन के दो भेद होते हैं, निर्सगज सम्यक् दर्शन भी होता है और अधिगमज सम्यक् दर्शन भी होता है। जो स्वभाव से श्रद्धा पैदा होती है उसे निर्सगज सम्यक् दर्शन कहते हैं और पर के उपदेश को पढ़कर सुनकर के जो श्रद्धा पैदा हाती है वह अधिगमज सम्यक् दर्शन है।

"तन्निसर्गादधिगमाद्वा।" तत्त्वार्थ सूत्र 1/3

वह सम्यक् दर्शन निर्सगज और अधिगमज के भेद से दो प्रकार है। और प्रवचन सुनते-सुनते जो शास्त्र श्रद्धा पैदा हो जाये तो समझ लेना कि उसी समय सम्यक् दर्शन हो गया। ज्ञानी जीवो हमें संसार की बाते नहीं सुनना है हमारे अहिंसा और सत्य के सिद्धान्त इतने पुराने और इतने महान है कि जिनको सुनने से सम्यग्दर्शन होता है। न चुटकुला सुनाना पड़ते हैं, न कोई शेर सुनाना पड़ता है, ना कोई शायरी सुनाना पड़ती है क्यों? क्योंकि हमें तो कुंद-कुंद की बातें ही सुनाने का समय नहीं मिलता है।

जिन गाथाओं को सुनकर के सम्यक्त्व पैदा हो, आस्था पैदा हो, वह सुनाओ। जानता हूँ कि गाथा का अर्थ तुम्हें पता नहीं है किन्तु यह तो पता है कि यह मेरे भगवान कुंद-कुंद की वाणी मात्र सुनने से कानों में पड़ जाती है तो भी आनंद आता है। अपने खजाने को देखकर किसको खुशी नहीं होती है। यह कुंद-कुंद की देशना जिसके कान में पड़ती है तो आत्मा का कल्याण होता है।

प्रिय आत्मन् !

निर्सगज सम्यक् दर्शन और अधिगमज सम्यक् दर्शन। दो बच्चे एक स्कूल में पड़ते हैं एक की बुद्धि स्फुरायमान है तो वह मात्र स्कूल में ही पड़ता है उसे कोचिंग की आवश्यकता नहीं है लेकिन स्कूल की शिक्षा की आवश्यकता तो है इसी तरह निर्सगज सम्यक् दर्शन के लिये पूर्वभव का प्रवचन और भीतर की श्रद्धा तो आवश्यक है किन्तु दूसरे के उपदेश को पाना आवश्यक नहीं है वह बिना ट्यूशन के ही परीक्षा में उत्तीर्णता हासिल कर लेता है। उसी तरह निर्सगज सम्यक् दृष्टि पूर्व भव के उपदेश को अथवा वर्तमान के स्वयं की भीतर की प्रेरणा को पाकर के जो श्रद्धा जाग जाती है उसका जागना निर्सगज सम्यक् दर्शन है। लेकिन एक छात्र की स्थिति ऐसी है कि थोड़ा कमजोर है तो पिताजी कहते हैं कि बेटा कोचिंग भी पढ़ और स्कूल भी जा उसी तरह से पूर्वभव के संस्कार तो है ही और पूर्व भव के संस्कार के साथ वर्तमान में गुरुओं का उपदेश जो हम सुनने जा रहे हैं।

गुरु उपदेश सुनना कोचिंग है और मंदिर जाना विद्यालय है और जो गुरु के प्रवचन में जा रहे हो यह तुम्हारी ट्यूशन है। अधिगमज सम्यक् दर्शन गुरु आदि के उपदेश से होता है। सम्यक् दर्शन के तीन भेद होते हैं। उपशम, क्षायिक, क्षयोपशम इसको हम कल बता चुके हैं सम्यक् दर्शन को जानने के लिये निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान ये छह उपाय हैं।

मैं सम्यक् दर्शन का कथन करता हूँ -निर्देश सम्यक् दर्शन का स्वामी कौन है? किसको उत्पन्न हो

सकता है? चारों गतियों के जीव सम्यक् दर्शन के स्वामी हैं। सम्यक् दर्शन के साधन दो प्रकार के हैं उत्पत्ति के निमित्त को साधन कहते हैं। अंतरंग साधन और बहिरंग साधन। कषायों का उपशम, क्षय, क्षयोपशम यह अंतरंग साधन है। गुरु के उपदेश को सुनने आये हो तो सम्यक् दर्शन को लेने आये हैं यह समझना।

आप बाजार जाते हैं सब्जी लेने गये हो, दाल लेने गये हो, चावल लेने गये हो लेकिन जब यहाँ पर आये हो तो सम्यक् दर्शन लेने आये हो, श्रद्धा लेने आये हो और जिनके पास है वे और लेने आते है और निर्मलीकरण करेंगे और संग्रह करेंगे और पवित्र, विशुद्ध श्रद्धा को पैदा करेंगे।

प्रिय आत्मन् !

सम्यक् दर्शन का आधार क्या है जैसे इस शास्त्र का आधार चौकी है। सम्यक् दर्शन का आधार क्या है? तो सम्यक् दर्शन का आधार आत्मा के असंख्यात प्रदेश हैं। आत्मा को छोड़कर कहीं सम्यक् दर्शन उत्पन्न नहीं होता। उपशम सम्यक् दर्शन अंतरमुर्हूत के लिये होता है, क्षयोपशम सम्यक् दर्शन उत्कृष्ट काल दो सौ छयासठ सागर है और क्षायिक सम्यक् दर्शन का काल अनंत काल है।

यदि श्रद्धा एक बार भी टूट जाती है तो उसको फिर से जोड़ने के लिये अन्तर्मुर्हूत से लेकर अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल भी लग सकता हैं।अन्य चीजें तो जुड़ जाती हैं यदि कोई कागज फट गया तो जुड़ जाता है, कपड़ा फट गया तो सिल जाता है, दीवार टूटती है तो जुड़ जाती है कोई दरार पड़ जाये तो जुड़ जाती है लेकिन श्रद्धा टूटती है तो एक भव भी लग सकता है और अनंत भव भी लग सकते हैं।

प्रिय आत्मन् !

सम्यक् दर्शन के आठ अंग होते हैं– नि:शंकित, नि:कांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना। इनमें दाया पैर जो है यह नि:शंकित अंग का प्रतीक है। जब हमें मार्ग में कोई शंका नहीं है तो हम अपने दायें कदम को आगे बढ़ा देते हैं। और शंका होती है तो पांव पीछे-पीछे जाते हैं। संदेह होता है तो पांव पीछे खिसकने लगते हैं और शंका नहीं होती है तो पांव आगे बढ़ने लगते हैं।

जब दायाँ पैर आगे बढ़ ही जाता है तो बायाँ पैर पीछे से बढ़ जाता है यदि कोई कांक्षा नहीं है तो बायाँ पैर अपने आप आ जाता है। यदि कांक्षा है तो पांव थमें हैं ज्ञानी जीवों! नि:कांक्षित अंग का प्रतीक बायाँ पैर है। आप शुद्धि कौन से हाथ से करते हैं? बाये हाथ से करते है। यह बायाँ हाथ जो

है निर्विचिकित्सा अंग का प्रतीक है। आप हाथ से अपनी शुद्धि करते हैं आपको ग्लानि भाव नहीं है, उसी तरह धर्मात्मा से ग्लानि नहीं होना यह निर्विचिकित्सा अंग है। उसका प्रतीक आपका बायाँ हाथ है।

आपकी पीठ अमूढदृष्टि अंग का प्रतीक है। कमर का भाग उपगूहन अंग का प्रतीक है। यदि कोई व्यक्ति गिरा हो तो उसको उठा लेना, स्थिर कर देना यह स्थितिकरण अंग का प्रतीक है। हृदय वात्सल्य अंग का प्रतीक है और मस्तिष्क प्रभावना अंग का प्रतीक है। यह आठ अंग हैं।

आज घर-घर में जो कलह है, बैर है, विवाद है, झगड़ा है, लड़ाई है, जो भी वैचारिक कुंठा है, वह मात्र एक शंका के कारण प्रवेश कर गयी है। ध्यान देना- शंका कालीरात की तरह हुआ करती है, शंका घुन के कीड़े की तरह हुआ करती है। जैसे अनाज के दाने में यदि घुन का कीड़ा लग जाता है, तो वह धीरे-धीरे भीतर बैठे अनाज को खोखला कर देता है और खा लिया करता है उसी तरह व्यक्ति के मस्तिष्क में यदि शंका प्रवेश कर जाती है तो उस व्यक्ति को खोखला कर देती है।

परिवार और समाज के विघटन का मूल कारण माना गया है शंका। यदि परिवार में शंका पैदा हो गयी तो परिवार नष्ट हो जायेगा, समाज में शंका पैदा हो गयी तो समाज नष्ट हो जाता है, ध्यान देना-मानव के मस्तिष्क को कमजोर करने वाला सबसे बड़ा कारण है तो उसका नाम है शंका। आपकी प्रतिष्ठा का कितना भी बज रहा हो डंका और पल भर में नष्ट कर देगी शंका।

आचार्य कहते हैं- धर्म के मार्ग में यदि आगे बढ़े हो तो शंका को रखके आगे मत बढ़ना क्योंकि शंका की डली गुबरीले के मुख में रखे हुये गोबर की तरह है यदि शंका रख के चला है और मकरंद का रसपान भी करेगा, मकरंद भी चूमेगा तो जैसे गुबरीले को मकरंद चूसने पर भी गोबर का स्वाद आता है, उसी तरह से जिसके मस्तिक में शंका का कीड़ा प्रवेश कर जाता है, उसके लिये कितने भी धर्म के रसायन पिलाये जायें, अमृत देशना भी मिले तब भी उसे धर्म का स्वाद नहीं आता है।

भौंरे को फूल पर स्वाद आता है लेकिन गुबरीले के मुख में जब तक वह गोबर की डली है तब तक स्वाद नहीं आता है इसलिये जैसे गुबरीला गोबर की डली निकालकर के उसी फूल को चूसता है तो आनंद आता है, उसी तरह हम अपने मन में जो शंका की डली रखे है, उसको यदि निकाल देते हैं तो हमारे लिये उसी फूल में से रस का आनंद आने लगता है। जीवन निकाल देना यह शंका कोई महान तत्व नहीं है, यह शंका विघटनकारी तत्व है, विध्वंसकारी तत्व है, यह शंका कोई मलहम नहीं है, कोई बाम नहीं है, यह शंका जो है एटम बम है।

यह बाम नहीं है यह बम है ध्यान देना– यह शंका जो है, जब भी पैदा हुयी है। इस शंका ने विध्वंश के सिवा और कुछ नहीं रचा है। शंका ने परिवार को विघटित किया है। शंकालु व्यक्तियों की बातों को सुन लेना भी बहुत बड़ा नुकसान है। कभी–कभी सत्य का निर्णय उसके पास नहीं होता है और ऐसे शंकालु व्यक्ति की बातों को जब हम सुन लेते हैं तो हमारा अहित हो जाता है।

ज्ञानी जीवों ! धोबी घर में चर्चा कर रहा था वह शंका की रात कितनी भयानक हुआ करती है कि धोबी तो घर में चर्चा कर रहा था कि ''मैं राम नहीं हूँ जो इतने समय तक सीता अशोक वाटिका में रखी हो और फिर से वापिस रख लूँ'' और राम उसी रात्रि समय में निकले हुये थे कि नगर में क्या चल रहा हैं और राम के कान में पड़ गया। धोबी ने अब जहाँ शंका हुयी और शंका में आकर के राम को यद्यपि शंका नहीं थी फिर भी उस शंका का निर्णय करने के लिये राम ने सीता को वन में भेज दिया।

ज्ञानी जीवों ! क्या हर व्यक्ति की शंका समाधान देना– अनिवार्य है। ओहो ! श्रीराम ने सीता को वन में छोड़ दिया, एक परिवार का विघटन हो गया। मात्र एक छोटी सी शंका को सुन लेने से परिवार का विघटन हो गया। ध्यान देना– पहले शंका हुयी थी कि राम ने भाई लक्ष्मण को पुकारा है तो सीता का हरण हुआ। पुनः धोबी के कहने पर शंका हुई तो राम द्वारा सीता का वनवास हुआ।

ध्यान देना– ज्ञानी जीवो ! इसलिये शंका नहीं होना चाहिये। आचार्य कहते हैं संसार में कहीं भी शंका रहे, अलग है लेकिन कम से कम देव, शास्त्र, गुरु के विषय में शंका नहीं होना चाहिये।

परिवार की शंका ओहो ज्ञानी जीवों! सुभौम चक्रवर्ती के जीवन में जब शंका आ गयी ध्यान देना– जिस महामंत्र ने लाखों को तारा है लेकिन उसी णमोकार के प्रभाव से सुभौम चक्रवर्ती नरक गया। क्यों गया ? क्योंकि उसे शंका उत्पन्न हो गयी थी व्यंतर ने अपनी विधि से नौका को पलटना और तूफानों को चलाने के बाद उसने कह दिया तुम णमोकार जप रहे हो इसलिये तूफान चल रहा है और णमोकार जपना बंद करो तो तूफान बंद हो जायेगा।

ज्ञानी जीवों ! वह समझ नहीं पाया बेचारा सुभौम चक्रवर्ती नहीं समझ पाया कि यह मेरा पूर्व जन्म का शत्रु है ध्यान देना– पूर्व भव का शत्रु था क्योंकि सुभौम चक्रवर्ती को गुस्से में जब रसोईया ने गरम खीर परोस दी तो चक्रवर्ती को खीर गरम लगी और उसने थाली यूं ली और फेंक करके रसोइया को मार दी और रसोइया का मरण हो गया।

प्रिय आत्मन् !

रसोइया ने बदला लिया, दूसरे भव में जब व्यंतर बना तो जाना कि मेरा मरण कैसे हुआ चक्रवत्री ने मुझे इस कारण मारा है उसे पता था कि चक्रवर्ती जिव्हा इंद्रिय का लंपटी है रसना इंद्रिय का लम्पटी है उसने तत्काल ऐसा अमृत फल तैयार किया ऐसा मधुर फल तैयार किया, उस फल को लेकर के चक्रवर्ती के द्वारे पहुंचा और चक्रवर्ती ने ज्यों ही फल को चखा क्या ऐसे फल और भी अन्यत्र मिलेंगे, चलिये महराज मैं आपको अपना बाग बगीचा दिखाता हूँ उसमें ऐसे ही फल लगे है। और चक्रवर्ती को ले गया समुद्र के दूसरे पार ले जाने को और ज्यों ही समुद्र के बीच में नौका पहुंची वह किसान तो व्यंतर था व्यंतर ने किसान का रूप धारण किया था और अपनी मंत्र विधि से व्यंतर ने तूफान का चलाना शुरु कर दिया।

ज्ञानी जीवों! कभी-कभी हमारे अहित कर्ता व्यंतर आदिक जो होते हैं, वे शत्रु रूप में बदला लेने हेतु हमे धर्म से छुड़ा देते हैं। अब सुभौम चक्रवर्ती ज्यों ही णमोकार पड़ता था तो व्यंतर की कोई शक्ति काम नहीं करती थी, वह नाव पलट नहीं पा रहा था क्योंकि यह णमोकार पड़ रहा था। णमोकार की शक्ति के आगे व्यंतर की शक्ति काम नहीं कर रही थी इसलिये उसने बुद्धि पूर्वक कहा तुम णमोकार जप रहे हो इसलिये तूफान चल रहा है, तुम णमोकार पढ़ना बंद करो और ज्योंही इसने णमोकार मंत्र पढ़ना बंद किया। व्यंतर ने तूफान बंद कर दिया, फिर भी मन में चलता रहा तो फिर उसने तूफान चलाया, देखो तुम णमोकार पढ़ रहे हो इसलिये तूफान चल रहा है, एक मिनट बंद करके देखों, अभी तूफान बंद होता है और ज्यों ही पढ़ना बंद किया वह तूफान बंद कर देता है।

ज्ञानी! कई जगह ऐसा होता है कि तुम धर्म करते हो इसलिये ऐसा होता है, तुम मंदिर जाते हो इसलिये ऐसा होता है ज्ञानी जीवों! उनकी बातों में कभी मत आ जाना क्योंकि सुभौम चक्रवर्ती बातों मे आ गया तुम एक काम करो इस णमोकार को इस जल पर लिख दो ओहो! अनादर करवा दिया ज्ञानी जीवों! जहाँ शंका पैदा हो गयी और श्रद्धा टूट गयी तो जो णमोकार मंत्र डूबने से बचा रहा था उसी णमोकार मंत्र का अनादर ही कर दिया तो सुभौम चक्रवर्ती का जीवन भी नहीं बचा और वह डूब भी गया कि ऐसा डूबा कि सीधे-सीधे सातवें नरक में चला गया।

ज्ञानी जीवों! ध्यान देना यह शंका का परिणाम है। शंका सम्यक् दर्शन की कमर लचका देती है। शंका दायां पैर तोड़ती है। व्यक्ति यदि आगे बढ़ना चाहे तो दायां पैर से आगे बढ़ता है लेकिन जब व्यक्ति के मन में शंका आती है तो उसका दायां पैर टूट जाता है, वह लंगड़ा हो जाता है

शंका जो है यह दायां पैर तोड़ती है। कांक्षा बायां पैर तोड़ती है, जहाँ शंका और कांक्षा पैदा हो गयी तो आप दोनों पैर से लंगड़े हो गये।

ग्लानि बायां हाथ तोड़ती है। अस्थितिकरण दायां हाथ तोड़ देती है अनुपगूहन कमर तोड़ देती है। अवात्सल्य हृदय तोड़ देती है और अप्रभावना व्यक्ति के मस्तिष्क को तोड़ती है। ध्यान देना ज्ञानी जीवो! यह आठ अंग यदि आठ अंगों के प्रतीक हैं, तो इन आठ अंगों का अभाव होना इन आठ अंगों के अभाव के समान है।

ज्ञानी जीवों! सम्यक् दर्शन में शंका नहीं होना चाहिये। देखो राम ने शंका की तो सीता को छोड़ना पड़ा। कभी शंका नहीं करना चाहिये। शंका करना हमारे मानव मन की चीज नहीं है हमारे जैनागम में बताया तुम्हें कुछ भी नहीं आता है तो मत जानो लेकिन श्रद्धा तो पक्की होना चाहिये। ज्ञान है या नहीं यह कोई बड़ी चीज नहीं है। चारित्र है या नहीं यह भी कोई बड़ी चीज नहीं है। सबसे पहली विशेषता है श्रद्धा सच्ची होना चाहिये, विश्वास सच्चा होना चाहिये। यदि श्रद्धा ही सच्ची नहीं है तो तुम्हारा आचरण मात्र दिखावा रह जायेगा।

आचार्य कहते हैं शुद्ध ज्ञान हो, और बहुत उत्कृष्ट आचरण हो, लेकिन श्रद्धा नहीं है तो कुछ भी नहीं है। आचार्य ने लिखा श्रद्धा मोक्ष महल की चाबी है। यदि तुम्हारे पास चाबी ही नहीं है तो ताला क्या खोलोगे। सम्पूर्ण गुणों के खजाने को खोलने की चाबी का नाम है श्रद्धा और श्रद्धा कैसी होना चाहिये? शंका से रहित श्रद्धा होना चाहिये और शंका बैठी है तो श्रद्धा क्या काम कर पायेगी।

ज्ञानी जीवों! इसलिये हमारे आचार्यों ने कहा कि सबसे पहले शंका न करें। आप शंका पहले से ही कर बैठे हैं। आप वैद्यजी के पास गये हाथ दिखाया है, हाथ दिखाने के बाद यह वैद्यजी सही दवा देंगे कि नहीं देंगे पहले ही शंका बैठी है। दवाई सही है कि नहीं है, तब भी शंका बैठी है और जब तुम्हारे पास श्रद्धा ही नहीं है तो फिर आगे का ज्ञान और चारित्र कार्यकारी नहीं हो सकता।

मैंने सुशील वैद्यजी से पूँछा आप दवाई की पुड़ियों पर नाम क्यों नहीं लिखते दवाई का, तो सुशील वैद्यजी बोले कि महाराज दवाई का नाम लिखने की आवश्यकता क्या है, यदि हमारे पास जो रोगी आया है, उसे मुझ पर विश्वास है तो दवा का नाम लिखने की आवश्यकता क्या है? यदि उसकी श्रद्धा है तो रोग ठीक हो जायेगा, श्रद्धा नहीं है तो ठीक नहीं होगा।

* * * *

निःकांक्षित अंग का लक्षण

इह जन्मनि विभवादीन्यमुत्र चक्रित्वकेशवत्वादीन्।
एकांतवाददूषितपरसमयानपि च नाकांक्षेत्॥ 24॥

अन्वयार्थ - (इह) इस (जन्मनि) जन्ममें (विभवादीन्) वैभव आदि सम्पदाओं को, (अमुत्र) परलोक में (चक्रित्वकेशवत्वादीन्) चक्रवर्ती नारायण आदि पदों की (च) और (एकांत-वाददूषितपरसमयान्अपि) एकांतवाद होने से सदोष दूसरे मतों को भी (न) नहीं (आकांक्षेत्) चाहे।

प्रिय आत्मन् !

माँ जिनवाणी, जगकल्याणी, अरिहंत भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य आचरित, उपाध्याय उपासित, सर्वसाधु साधित, जीव तत्त्व प्रबोधिनी, अजीव तत्त्व विवेचनी, सर्वास्रव निरोधनी, कर्म बंध विमोचनी, संवर पथ प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्व कल्याणकारिणी, हे माँ जिनवाणी तेरी जय हो सदा विजय हो, तेरे विशाल पद में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन् !

विपुलाचल पर्वत पर तीर्थंकर वर्धमान स्वामी की देशना निःसृत हो रही है और पंचशैल की पावन पहाड़ियों पर यह रिम-झिम फुहारे अपनी सावनता को दिखा रही हैं, जहाँ वर्धमान तीर्थंकर अपने उपदेश से पावनता प्रदान कर रहे हैं तो प्रकृति भी उस आनंद का पूरा-पूरा लाभ उठा रही है।

ओहो! जब निःस्वार्थ निष्कांक्षित धरती के देवता भव्य जीवों को उपदेश देने बरस रहे हैं, जब धरती के देवता दिगम्बर संत इस धरती को निष्काम देशना प्रदान कर रहे हैं तो आकाश में रहने वाले देवता भी प्रसन्न क्यों नहीं होंगे।

प्रिय आत्मन् !

हमारी खुशी में वह भी खुश हैं आप भी खुश हो जाओ। बादल बरस रहे हैं आकांक्षा कुछ भी नहीं है इन बादलों की आकांक्षा क्या है बरसने के बाद ? निष्काम है, निःकांक्षित है, बादलों का बरसना निष्काम है और संतों का उपदेश देना निष्काम है।

ज्ञानी जीवो ! आचार्य कह रहे हैं जीवनमें आकांक्षा दोष है। आज पुरुषार्थ-सिद्धियुपाय ग्रंथ में चौबीस वीं कारिका के माध्यम से निःकांक्षित अंग का स्वरूप देखेंगे जो एक बायें पैर के समान है। दायां पैर यदि चलने में मदद करता है तो बायां पैर खड़े होने में जरूर मदद करता है। यदि बायां पैर न हो तो व्यक्ति दायां पैर से चल भी नहीं सकता है इसलिये यदि एक पैर चल रहा है तो उसके चलने की विशेषता यह है कि दूसरा खड़ा हुआ है।

यदि एक पैर खड़ा नहीं है तो दूसरा चल भी नहीं सकता है। यदि छोटा भाई बड़े भाई की मदद न करे और बड़ा भाई आगे बढ़ रहा है तो कहीं न कहीं छोटे भाई का सहयोग है निःशंकित अंग के आगे बढ़ने में निष्कांक्षित अंग का सहारा एक स्तंभ की तरह हुआ करता है निशंकित अंग कहता है कि आगे बढ़ो और निःकाक्षित अंग कहता है सहारा के लिये खड़ा हूँ। एक-एक अंग आगे-आगे के अंगों का सहयोगी हुआ करता है।

वैद्य कहते हैं यदि दांत खराब हो जायेंगे तो आंख खराब हो जायेगी, कान खराब हो जायेगें। आचार्य कहते हैं यदि निशंकित नहीं रह पाओगे तो निःकाक्षित नहीं रह पाओगे। निशंकित भूमि पर निष्कांक्ष पना आता है।

प्रिय आत्मन् !

इस भव संबंधी पर भव संबंधी मैं धर्म कर रहा हूँ, मैं मंदिर आ रहा हूँ, मैं प्रभु की पूजा कर रहा हूँ, ओहो इतने समस्त महान अनुष्ठान करने के बाद भी आचार्य कहते हैं संसार के, शरीर के, भोगों के पदार्थों की अभिलाषा मत कर लेना ध्यान देना-ज्ञानी जीवो ! हम जो चाहते हैं वह चाहने से नहीं मिलता है। यदि सत्ता में पुण्य होता है, तो बिन चाहे भी मिल जाता है और पुण्य नहीं होता है तो मांगने-मांगने पर भी नहीं मिलता है। इसलिये हे जीव ! तू वीतराग दरबार में आकर के क्यों याचना करता है और मांगना ही है तो मांगो।

हे वरदाता! वरद प्रभुवर! इतना वर चाहूँ।
सदा अखण्डित हो रत्नत्रय, वह साधन पाऊँ।।

वह द्रव्योदय, वह क्षेत्रोदय, वह कालोदय हो।
जिनसे निर्मल रत्नत्रय हो, वह भावोदय हो।।

पूज्यपाद आचार्य शांति भक्ति में लिखते हैं– हे जिनेन्द्र देव आपकी कृपा से मुझे वह द्रव्य उत्पन्न हो जिनसे मेरा रत्नत्रय निर्मल हो, वह क्षेत्र उत्पन्न हो जिससे रत्नत्रय निर्मल हो, वह काल उत्पन्न हो जिससे रत्नत्रय निर्मल हो और वह भाव उत्पन्न हो जिनसे रत्नत्रय निर्मल हो।

ज्ञानी जीवो! भावना ऐसी भाओ कि भगवान बना दे। भावना इंसान को भगवान बना देती है। साधना पाषाण को भगवान बना देती है और विवेक के स्तर से नीचे उतरने पर वासना इंसान को हैवान बना देती है।

प्रिय आत्मन् !

आचार्य कहते हैं – कि जीवन जीना है, धर्म करना है किन्तु धर्म करते समय भी आकांक्षा पैदा मत करना क्योंकि आकांक्षा की लचीली आंखे न तो सोते समय बंद होती हैं न जागते समय बंद होती है। यह आकांक्षा की लचीली आंखे शमसान की मिट्टी के सिवा और कोई बंद नहीं कर सकता है।

ज्ञानी जीवो! ध्यान देना– यह धर्म का दूसरा दोष है शंका करना पहला दोष है तो कांक्षा करना दूसरा दोष है। वृक्ष के नीचे पहुंचने पर क्या छाया मांगने की आवश्यकता है? नहीं। वृक्ष के नीचे पहुंचने पर छाया स्वयं ही मिलती है उसी तरह से परमात्मा की आराधना से जो पुण्य संचित होता है उससे आपके कार्यसिद्ध होते हैं तो फिर आकांक्षा क्या करना।

एक लकड़हारा मुनि बन गया। उसने राज विभूति को देखा और आकांक्षा करके निदान बंध कर लिया कि मैं भी इसी तरह की विभूति का स्वामी बनूं। ज्ञानी जीवो! अगले भव में वह सुभौम चक्रवर्ती बन गया ध्यान देना– आकांक्षा तुम्हें चक्रवर्ती बना सकती है। निदान बंध तुम्हें चक्रवर्ती बना सकता है, नारायण बना सकता है लेकिन निदान तुम्हें भगवान नहीं बना सकता है।

यदि तुम चक्रवर्ती होने का निदान करते हो तो ध्यान रख लेना–तीर्थंकर की प्रकृति से पत्ता साफ, ज्ञानी जीवो! जितनी ऊँचाई तुम्हें मिल सकती थी मांगने पर तुम उतना मांग नहीं सकोगे।

ज्ञानी! तेरे माता–पिता के पास क्या–क्या है तुझे क्या पता है यदि तू अपने मुख से मांगेगा तो जो तुझे सामने दिखेगा वहीं मांगेगा लेकिन माँ का धन कहां–कहां गढ़ा हुआ है पिता ने कहां धन गाढ़ के रखा है जब तू गर्भ में आया था तभी तेरी माँ ने सोच लिया था इस बेटे के लिये यह धन देना है

लेकिन आज तक वह धन माँ ने तुझे दिखाया नहीं है जो तूने देखा है वह अल्प देखा है अब मांगेगा तो क्या मांगेगा ? जो देखा वहीं मांगेगा और माँ सोचेगी जब बेटा मांग ही रहा है बेटे के अंदर हिस्से की बात आ गयी तो जितना मांग रहा है उतना दे दो और माँ स्वेच्छा से देती तो बेटा जितना मेरा है सो तेरा है क्योंकि मुझे तो तेरे ही पास रहना है।

मिथ्यादृष्टि जीव जिनेन्द्र की आराधना करता है, स्वर्गों में भी देव मिथ्यादृष्टि आराधना करते हैं आचार्य कहते हैं।

सद्देदि पत्तेदि रोचदि, तहेव भासेदि।
धम्मं भोग णिमित्तं, णदु कम्कखय णिमित्तं।

स्वर्ग में मिथ्यादृष्टि देव जिनेन्द्र की आराधना कर रहा है, श्रद्धा कर रहा है, प्राप्त कर रहा है, रूचि कर रहा है, स्पर्श कर रहा है, लेकिन धर्म को भोग का साधन बना लिया है धर्म करेंगे तो इससे स्वर्ग मिल जायेगा। माताओं ! स्वर्ग पाने के लिये धर्म नहीं करना स्वर्ग में जाके तो धर्म करना लेकिन स्वर्ग को पाने के लिये धर्म नहीं करना क्योंकि आचार्य कहते हैं –

गुरु भक्ति सती मुक्ति छुदं किं वा न साधेयत्।
त्रिलोकी मूल्य रत्नेन दुर्लभा किं तुषोत्करः।।

आचार्य वादिराज स्वामी क्षत्रचूड़ा मणि ग्रंथ में लिखते हैं कि गुरु की भक्ति करने से, अरहंत की भक्ति करने से, सिद्ध की भक्ति करने से, आचार्य, उपाध्याय, साधु की भक्ति करने से मुक्ति प्राप्त होती है। फिर वह कौनसी छोटी वस्तु है जो प्राप्त न हो जिस रत्न के द्वारा तीन लोक की अमूल्य सम्पत्ति खरीदी जा सकती है क्या उस रत्न के द्वारा घास के तिनके नहीं खरीदे जा सकते।

ज्ञानी ! धर्म की महिमा इतनी है जो तुम चाहोगे भी नहीं, जो तुम सोच भी नहीं पाओगे, उससे उत्कृष्ट तुम्हें मिल सकता है। किन्तु हम ऐसे हैं कि अपने मन में आकांक्षा लेकर आते हैं, अभिलाषा लेकर मंदिर आते हैं, एक लालसा लेकर आते हैं, एक लालच लेकर आते हैं, कामना लेकर के आते हैं और कामना के कीड़े जब हमारे अंदर उत्पन्न हो जाया करते हैं तो वह मनुष्य धर्मायतन में ठहर नहीं पाता है।

आचार्य कहते हैं कि आकांक्षा का मच्छर, आकांक्षा का डांस आपको काटेगा तो आप धर्म में ठहर नहीं पाओगे इसलिये सबसे पहले धर्म के बगीचे में बैठने के पहले देख लो कि आकांक्षा का मच्छर तो नहीं है, कामना के कोई चीटा-चीटे तो नहीं है यदि कामना के कीड़े हैं तो वे तुम्हें ठहरने

नहीं देंगे इसलिये हे जीवों! ध्यान रखो– आज हम धर्म के बगीचे में ठहरे हैं प्रकृति का आनंद है धर्म का आनंद लेना है तो आकांक्षा नहीं होना चाहिये।

नहीं सुर संपदा चाहूं,
नहीं मैं राजपद चाहूं।
यही है कामना मेरी,
प्रभु तुमसा ही बन जाऊँ॥
मिले निर्वाण न जोलों,
रहो नयनों के पथगामी।
पुनः दर्शन पुनः दर्शन,
पुनः दर्शन मिले स्वामी॥

प्रिय आत्मन् !

देवों की सम्पदा पाना मेरी पूजा का लक्ष्य नहीं है। राज्य का पद पाना मेरी पूजा भक्ति का लक्ष्य नहीं है। मैं सौधर्मेन्द्र बनके पूजा करता रहूँ पर सौधर्मेन्द्र बनने के लिये नहीं, जिनेन्द्र बनने के लिये सौधर्मेन्द्र बनना। ओहो! इन्द्र बनने के लिये इन्द्र मत बनना जिनेन्द्र बनने के लिये इन्द्र बनोगे तो इन्द्र नहीं तुम जिनेन्द्र बन जाओगे। जिनेन्द्र बनने के लिये इन्द्र नहीं बना जाता है।

ज्ञानी जीवो! जिनेन्द्र की आराधना का एक क्षण भी, जिनेन्द्र भक्ति का एक परमाणु भी आपके लिये सौधर्मेन्द्र का पद प्रदान कर सकता है ऐसी असीम जिन बुद्धि है आचार्य कहते हैं दूसरों का वैभव देखकर के यह आकांक्षा मत करना कि हे धर्म तेरी आराधना से मुझे यह मिल जाये।

ज्ञानी जीवो! जितना तुम देखोगे, वह धर्म के फल में नश्वर है। नश्वर मत मांगना, नाशवान् मत मांगना। अनेक बार लोग मेरे पास आते हैं कहते हैं महाराज श्री! आज हमारा बर्थ डे है, आज आपका आचार्य दिवस है, आज जन्म दिवस है, आपके लिये क्या लाऊँ? मैं कह देता हूँ मुझे नाशवान नहीं चाहिये, मुझे नश्वर नहीं चाहिये। मुझे शाश्वत चाहिये और शाश्वत आपकी आत्मा है आपकी आत्मा के सिवा कोई शाश्वत नहीं है। आत्मा में धर्म का सृजन हो, उस आत्मा में रत्नत्रय का आरोपण हो, वही शाश्वत है।

प्रिय आत्मन् !

जिन धर्म-विनिर्मुक्तो मा भूवं चक्रवर्त्यपि।
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि जिन धर्मानुवासितः॥ 11॥ दर्शन पाठ

आचार्य कहते हैं मुझे चक्रवर्ती पद नहीं चाहिये, मुझे तो जिन धर्म चाहिये। आज व्यक्ति व्यापार के पीछे, पैसे के पीछे अपने धर्म को नष्ट कर देता है। ओहो! आचार्य कहते हैं इस लोक संबंधी वैभव और परलोक संबंधी वैभव, किसी भी संबंधी वैभव की आकांक्षा तुम्हें धर्म के मूल रहस्य से दूर कर देगी।

देवेन्द्र - चक्र - महिमान - ममेय - मानं।
राजेन्द्र - चक्र - मव - नीन्द्र -शिरोऽर्चनीयं॥
धर्मेन्द्र - चक्र - मधरी - कृत - सर्व - लोकं।
लब्ध्वा शिवं च जिन-भक्ति-रूपैतिभव्यः॥ 4॥

प्रिय आत्मन् !

आचार्य कहते हैं धर्म की आराधना से स्वयं देवेन्द्र बन जाते हैं। धर्म की आराधना से गणधर बन जाते हैं। धर्म की आराधना से मुनि बन जाते हैं। धर्म की आराधना से केवली बन जाते हैं। धर्म की आराधना से अरहंत बन जाते हैं। धर्म की आराधना से तीर्थंकर बन जाते हैं। जो धर्म की आराधना तुम्हें तीर्थंकर पद प्रदान कर सकती है, उस धर्म को पाकर के तू क्या कंकर पत्थर मांग रहा है। यदि तूने कुछ रुपये पैसे मांगे तो कंकर-पत्थर ही तो मांगे हैं। चेतन आत्मा कंकर-पत्थर को मांग रही है। तीर्थंकर के सामने खड़े होकर के कंकर-पत्थर नहीं मांगना।

ज्ञानी जीवो! वीतराग देव के सामने राग की उपासना। मांगते हुये देखते हैं ज्ञानी तू कितना भी मांग लेना, ध्यान देना- तीर्थंकर ने जब स्वयं मांग नहीं भरी तो बिचारे पारसनाथ, महावीर के पास पहुंच गया। वो कहते हैं मैंने किसी की मांग भरी ही नहीं है अब मैं तेरी मांग क्या भरूंगा। बासुपूज्य भगवान, मल्लिनाथ भगवान, नेमिनाथ भगवान, पारसनाथ भगवान, महावीर भगवान कहते हैं मैंने तो किसी की मांग भरी ही नहीं, मैं तो बिना मांग भरे ही इस पथ पर आ गया और जिनने मांग भरी हे वे चौरासी लाख वर्ष तक संसार में रहे और जिनने मांग नहीं भरी वे बहत्तर वर्ष के भीतर मोक्ष चले गये।

वह कहते हैं जब मैंने घर में था गृहस्थ था, तब मांग नहीं भरी, अब मैं वीतराग बनने के बाद मांग नहीं भरता, क्योंकि जो मांग भरने वाले नीचे बैठे हैं और मांग जिसने नहीं भरी वह सिद्ध लोक पर विराजे हैं। कोई मांग भरवाने वाला है, कोई मांग भरने वाला है किन्तु ध्यान रख लेना– आचार्य कहते हैं मांगना ही नहीं, मांग भरवाना भी नहीं और एक बार मांग भर देगा, तो जीवन भर मांग भरेगा लेकिन वह मांग कभी पूरी भर नहीं पायेगा इसलिये वीतराग देव कहते हैं कि मुझे मांग नहीं भरना है।

ज्ञानी ! मांग करना ही नहीं कि किसी को मांग भरना पड़े। ऐसी मांग नहीं करना रोज आप मांग करते हो, घर–घर में मांग करते हो, प्रभु के द्वार आकर के मांग मत करो और मांग करोगे तो मांग ही तो मिलेगी। देखो ज्ञानियो! हम साधु गण कैशलोंच करते हैं तो मांग नहीं करते है और आप लोग सब मांग करते हैं।

प्रिय आत्मन् !

धर्म के क्षेत्र में कोई याचना मत करना, जो चाहोगे मिल जायेगा। जिसने चाहा उसको मिला। क्या श्रीकृष्ण ने जो चाहा था मिला था कि नहीं मिला ? मिला। पूर्व भव में दिगम्बर संत की अवस्था में जो चाहा अगले भव में वह मिल गया। जिसने जो चाहा मिलेगा, लेकिन तुम अपनी चाह को मत मांगो। ध्यान देना– जो तुम्हें मिलना चाहिये था, तुम चाह कर लोगे वह मिल नहीं पायेगा। तुम्हें तो मोक्ष देना चाहते थे, लेकिन तुमने संसार मांग लिया। तुम्हें तो सिद्धालय देना चाहते थे लेकिन तुमने मात्र आलय मांग लिया। तुम्हें तो सिद्ध क्षेत्र देना चाहते थे लेकिन तुमने षट् खण्ड का चक्रवर्ती पद मांग लिया।

ज्ञानी जीवो! ऐसा कौन सा दुकानदार नहीं होगा जो सौ के नोट के बदले में दस का नोट दे–दे हर दुकानकार दे देगा। कभी–कभी बच्चे सौ का नोट पुराना है तो नया दस का नोट मांगने लगते है कि मुझे नया चाहिये। उसी तरह हम अज्ञानी जीव धर्म करके कुछ मांग लेते हैं।

प्रिय आत्मन् !

दान तो करना है पर निदान नहीं करना। धर्म करना आकांक्षा नहीं करना। आचार्य देव लिखते हैं।

यस्य मोक्षेऽपि नाकाङ्क्षा स मोक्षमधिगच्छति।

इत्युक्तत्वाद्धितान्वेषी, काङ्क्षा न क्वापि योजयेत्॥

हे इन्द्र पद को चाहने वालो जीवों, हित की खोज करने वाले जीवो, कहाँ खोये हो, जिनको मोक्ष की आकांक्षा होती है, वे मोक्ष को नहीं पाते हैं तो फिर संसार की आकांक्षा करने वाले मोक्ष को क्या पायेंगे। ज्ञानी जीवो! आचार्य कहते हैं कि मोक्ष की इच्छा भी मोक्ष में बाधक है ज्ञानी तो फिर पंचेन्द्रिय विषयों की इच्छा बाधक क्यों नहीं होगी। जिस मछली के लिये सूखी रेत ही तपाती हो, जिस मछली के लिये रेत का स्पर्श ही दुख देता हो, उस मछली के लिये अंगारे कितना दुख देंगे? उसी तरह भो ज्ञानी! ध्यान देना– आकांक्षा दुखदायी है। आकांक्षा दुख का पर्यायवाची है। मोह के उदय में जब राग पैदा होता है और उन राग के अंशों में आकांक्षा पैदा हुआ करती है, इच्छा मोह की परिणति है, इच्छा मोह का भाव है। जहाँ इच्छा है वहाँ दुख नियम से है क्यों? आकांक्षा अपेक्षा है, जहाँ अपेक्षा है, वहाँ नियम से दुख है।

यदि तुम आकांक्षा करना सीख गये हो तो दुख स्वयं उठाना सीख गये हो ध्यान देना– जीवो! आचार्य कहते हैं एकांतवाद से दूषित पर समयों को चाहना भी दोष है। तुम सम्यक् दृष्टि हो तुम्हें चाहिये कि वीतराग सर्वज्ञ प्रणीत आगम का अध्ययन करो। हम सोचते हैं जिस चाहे का लिखा हुआ शास्त्र पढ़ने लग जाते हैं। आचार्य कहते हैं पढ़ना तो दूर रहा इच्छा भी नहीं करना चाहिये ओहो! वह भी कांक्षा जिसमें एकांत–एकांत का कथन हो, अनेकांत की चर्चा न हो, स्याद्वाद की मुद्रा न लगी हो, देव–शास्त्र गुरु के द्वारा जिसका विधान न किया गया हो, तीर्थंकर मुद्रा से मुद्रित न हो, सर्वज्ञ के वचनों से प्रमाणित न हो, ऐसे शास्त्रों को पढ़ना आकांक्षा नाम का दोष है। जो सम्यक् दर्शन को मलीन करता है।

जैसे– सफेद दीवार पर यदि कोयला पोत दिया जाये तो वह सफेद दीवार काली हो जाया करती है, उसी तरह से वीतराग देव की जिनवाणी पढ़ने के बाद भी तुमने यदि एकांतवाद दूषित शास्त्रों का अध्ययन किया है तो समझ लेना कि तुमने शुक्ल लेश्या की दीवाल पर, सम्यक् ज्ञान की दीवाल पर फिर से मिथ्याज्ञान का लेप लगा लिया।

ज्ञानी जीवो! यदि सम्यक् ज्ञान को पाने के बाद तुम्हारे अंदर एकांतवाद समा गया है, एक पक्ष समा गया है तो फिर तीन सौ तिरेसठ में से एक सठ हम भी बन जायेंगे। इसलिये ध्यान रख लेना।

एकान्तवाद दूषित समस्त विषयादिक पोथक अप्रशस्त।

कपिलादि रचित श्रुत को अभ्यास सौहे कुबोध बहु देन त्रास॥

आचार्य कह रहे हैं ऐसे ज्ञान को भी नहीं चाहना, जो दुख को देने वाला है। धन को चाहने की बात तो दूर है, संसार के सुखों की चाह तो दूर है लेकिन तुम्हारे अंदर ज्ञान की भी अभिलाषा हो। ज्ञानी जीवो! कुछ लोग कहा करते हैं जो अच्छा लगेगा सो ग्रहण कर लेंगे और अच्छा नहीं लगेगा सो ग्रहण नहीं करेंगे।

ज्ञानी जीवो! यदि वैद्य पर विश्वास नहीं है तो यह मत सोच लेना कि दवाई अच्छी लगेगी यदि ग्रहण कर लेंगे तो अच्छी या बुरी तो तब पता पड़ेगी, जब रिएक्शन करती है तो तत्काल उपचार कराओ। महाराज क्या ज्ञान भी रिएक्शन कर सकता है? ज्ञान का रिएक्शन यह होता है, जब कोई व्यवहार और निश्चय दोनों नय का ज्ञाता नहीं है, एक ही नय का ज्ञाता है या जिसने गुरु मुख से भलीभांति शास्त्रों को नहीं पढ़ा है, नहीं समझा है, वह एक तरफ से बात को ग्रहण कर लेगा और आपको प्रदान कर देगा, तो उसके ज्ञान की बात आपको रिएक्शन कर जायेगी और हम गये थे स्वस्थ होने के लिये, हम गये थे ज्ञान पीने के लिये लेकिन और भी अस्वस्थ हो गये।

प्रिय आत्मन्!

पहले गुणस्थान से छठवें गुणस्थान की आत्मा को पर समय कहते हैं और सातवें से लेकर के सिद्ध भगवान को स्व समय कहते हैं। पुरुषार्थ सिद्धियुपाय में समय का अर्थ शास्त्र है और समयसार में समय का अर्थ आत्मा है। ज्ञान के लालच में आकर के जिस चाहे को गुरु मत बना लेना।

ज्ञानी जीवों! ध्यान देना– एक गृहस्थ को भी यदि गुरु बना लिया जाये तो वह भी ज्ञान और वैराग्य को ठंडा कर देता है। ज्ञान तो मिलता है लेकिन वैराग्य नहीं बढ़ता है। जबलपुर में इस भाव से आश्रम खोला था आचार्यवर ने कि जितने ब्रह्मचारी हों, वे सब योग्य महायोग्य विद्वान बनकर के मुनिराज बनें लेकिन गृहस्थ पंडित जब संस्कार देगा तो क्या संस्कार मिलेंगे? पढ़ायेगा कुर्सी पर बैठ के पढ़ायेगा। पढ़ायेगा तो पुस्तकों का आदर नहीं होगा। विनय नहीं होगा।

जब तक ज्ञान के साथ श्रद्धा और चारित्र जिसके पास तीनों चलें, उसी के पास ज्ञान हासिल करना चाहिये अन्यथा ज्ञान अकेला मिलेगा तो वह कल्याणकारी नहीं होगा। हम देखते हैं मैना के जीवन को, सीता के जीवन को, अंजना के जीवन को, अनंतमति के जीवन को इनने जो ज्ञान पाया है, धार्मिक आर्यिका माताओं के पास पाया है, यही कारण है इनके जीवन में आकांक्षायें पैदा नहीं हुयी।

अंजना, मैना, सीता, द्रोपदी इनके गुरु धार्मिक रहे। अनंत मति के जीवन को हम एक बार निहारने की कोशिश करते हैं। अनन्तमति पिताजी के साथ मुनिराज के पास गयीं। पिता ने कहा हे मुनिराज हम अष्टाह्निका पर्व के अवसर पर व्रत लेना चाहते हैं। मुनिराज ने आशीर्वाद दे दिया उनकी बेटी अनंतमति भी साथ में थी उसने कहा महाराज मैं भी व्रत लेना चाहती हूँ। मुनिराज ने कहा आशीर्वाद। वह कुमारी अनंतमति मुनिराज के पास जाकर के व्रत लेती है, पिताजी ने समझा यह बेटी खेल-खेल में व्रत ले रही है। मैंने लिया सो इस ने ले लिया, लेकिन पिताजी कुछ समय बाद शादी की तैयारियाँ कराने लगे तो बेटी ने कहा पिताजी यह सब क्या हो रहा है। पिताजी बोले बेटी तेरे विवाह की तैयारियाँ हो रही हैं। पिताजी विवाह कैसा।

पिताजी मैंने तो आपके सामने ही मुनिराज से व्रत लिया था। पिताजी बोले मैंने तो व्रत आठ दिन के लिये लिया था। पिताजी समय सीमा तो आपने बांधी थी, लेकिन मैंने तो समय सीमा बांधी नहीं थी और जिसकी समय सीमा नहीं होती है वह व्रत तो आजीवन हुआ करता है। बेटी अनंत मति का जीवन वहीं अनंत मति एक दिन झूले में झूल रही थी कुंडल मंडित विद्याधर हरके ले गया। जीवन में अनेक घटनायें आयी, लेकिन अनेक प्रलोभन एवं आकर्षण के स्थान मिलने पर भी उसने अपने जीवन में धर्म का परित्याग नहीं किया।

ज्ञानी जीवो! यदि कहीं भी आकांक्षा आ जाती है तो धर्म नष्ट हो जाता है। जहाँ भी आकांक्षा पैदा होती है, वहाँ जीवन संदेह में पड़ जाता है। आकांक्षा कितनी बड़ी हानि कर सकती है आचार्य कहते हैं।

कर्म-पर-वशे सान्ते, दु:खै-रत्नरितोदये।
पापबीजे सुखेऽनास्था, श्रद्धाना-काङ्क्षणा स्मृता॥

जो सुख कर्मों के आधीन है, जो सुख अंत से सहित है और जो सुख दु:ख से नि:सृत है ऐसे पाप के बीज रूप सुख में हमें जो संसार में सुख दिखाई दे रहा है, उनकी चार विशेषतायें है एक तो कर्म के आधीन है, फिर क्षणिक है, नश्वर है, नाशवान है, इसलिये अंत सहित ही उदय में ही तो कुरुप है और पाप का बीज है। हमें सुख को भोगने के पहले यह देखना चाहिये यह पाप का बीज है कि पुण्य का बीज है।

जो सुख हम भोग रहे वह सुख है कि सुखाभास है। यह पुण्य का बीज है कि पाप का फल है। इससे पुण्य पैदा होगा इससे पाप पैदा होगा। जो सुख मैं भोग रहा हूँ उस सुख के भोगने से पुण्य हो रहा है कि पाप हो रहा है? पाप हो रहा है।

आचार्य कह रहे हैं जैसे तलवार की धार पर यदि शहद लपेट दी जाये, तो शहद को चखने से मिठास का स्वाद तो आयेगा, लेकिन जीभ कटने का दुख भी होगा, उसी तरह से पाप के बीज रूप सुख में आस्था होना चाहिये लेकिन जो सुख पाप का कारण हो, वह भविष्य में पाप ही उत्पन्न करेगा। इसलिये सुख भोगने के पहले यह देखो कि यह पाप रूप है कि पुण्य रूप है।

ज्ञानी जीवो! पुण्य से पुण्य की उत्पत्ति होती है और पाप से पाप की उत्पत्ति होती है। इसलिये सुख भोगते समय दो बातें ध्यान रख लेना यह सुख पाप रूप है कि पुण्य रूप है। पाप के उदय में आया है कि पुण्य के उदय में आया है। पुण्य को पुण्य तरीके से भोगें और पाप को पुण्य तरीके से काट दें। पाप की जड़ों को तो चाणक्य से काटना सीखना चाहिये। जैसे चाणक्य ने कुश को काटा था और मट्ठा भर दिया था वे उत्पन्न ही नहीं हो पायी, उसी तरह से हे साधु! राग की जड़ों को ऐसा काटना चाहिये कि उसमें ज्ञान और वैराग्य का ऐसा मठा भर दो जैसे चाणक्य ने मठा भर दिया था, तो कुश पुनः उत्पन्न नहीं हो पाया। उसी तरह से तेरे पैरों में चुभने वाला चारित्र के मार्ग में चुभने वाला जो राग, द्वेष का काँटा है उसको उखाड़कर के तू ज्ञान और वैराग्य का ऐसा मठा भर दे कि पुनः वह राग-द्वेष-कषाय उग ही न पाये।

प्रिय आत्मन् !

आकांक्षा देखने में सुहावनी लगती है। ध्यान देना कुछ-कुछ फल ऐसे होते हैं जो देखने में इतने सुन्दर होते हैं यदि उसको खाया जाये तो मरण को प्राप्त कराता है। इसलिये ज्ञानी जीवो! ध्यान दे लेना आकांक्षा पैदा मत करो। धर्म करो लेकिन धर्म के साथ आकांक्षा नहीं। इस बात का निर्णय करके सुख भोगो आज के दिन मेरे द्वारा कोई पाप तो नहीं हुआ, आज के दिन पुण्य तो अपार उदय में है, जिनवाणी का प्रसाद मिल रहा है, पर ध्यान रखो आज के दिन मेरे जीवन में कोई पाप भविष्य में पैदा हो, ऐसा कार्य तो नहीं हुआ।

पुण्य के उदय में इतना विवेक रखना है कि पाप न हो जाये। क्योंकि चिकने रास्ते पर अत्यधिक एक्सीडेंट हुआ करते हैं। जब सड़क पक्की मिल जाया करती है, हाई वे मिल जाये, ध्यान रख लेना एक्सीडेंट खराब रास्तों पर नहीं होते हैं, एक्सीडेंट सीधे पक्के रास्ते पर होते हैं। इसलिये राग के चिकने रास्ते पर कहीं दुर्घटना न हो जाये, आपको पूरा ध्यान रखना है। पुण्य के महान क्षणों में इतना विवेक रखो कि पाप न हो लेकिन पुण्य के क्षणों में विवेक को साथ में रखो कि पाप न हो जाये।

तुम्हारे पास जो भी है पुण्य के प्रसाद से है, यह जैन कुल, यह जैन धर्म, यह वैभव, पुण्य का उदय है। यदि तू दुकान के चक्कर में रात्रि भोजन कर रहा है तो पुण्य के उदय में पाप कर रहा है।

ज्ञानी जीवो! पुण्य के उदय में पाप नहीं करना और पाप के उदय में भी पाप नहीं करना। पुण्य के उदय में पुण्य करना और पाप के उदय में पुण्य करना। इन चार बातों को समझ जाओगे तो चतुर्गति से मुक्त होने का पथ मिलेगा और अनंत चतुष्टय को प्राप्त हो जाओगे।

पाप के बीज रूप सुख में रखी हुयी आस्था पाप के रास्ते पर ले जाती है। जो सुख पाप का बीज है, नियम से वह सुख पाप के बीज को देने वाला है। सुख के तरूवर में दुख के फल न लगें। ऐसा न हो कि तुम कहीं आकांक्षा की कलम लेकर के आ जाओ और इस फल में लगा दो। आकांक्षा की कलम यदि जीवन रूपी पौधे में लग जायेगी, तो उसके फल नियम से दुखदायी होंगे।

प्रिय आत्मन् !

अपने जीवन रूपी पौधे में आकांक्षा की वह कलम नहीं लगाना है, जिसमें दुख रूपी पौधे उत्पन्न हों। अनंत मति ने अनंत कष्टों को सहा लेकिन आकांक्षा नहीं की। उसका परिणाम है कि उसने अपना कल्याण कर लिया है। जो जीव आकांक्षा नहीं पालते हैं, वे जीव सुख को पाते हैं। इसलिये निष्काम जीवन जीने की कोशिश करें। हम धर्म करें, धर्म से कुछ न चाहें। धर्म से धर्म ही चाहें।

जांचे सुरतरु देय सुख, चिंतत चिंता रेन।
बिन मांगे बिन चिन्तये, धर्म सकल सुख देन॥

पाप के बीज का रूप सुख में आस्था नहीं, कोई अभिलाषा नहीं, कोई आकांक्षा नहीं, कोई लालसा नहीं। जो पाप का बीज है, वह सुख मुझे नहीं चाहिये।

* * * *

निर्विचिकित्सा अंग का लक्षण

क्षुत्तृष्णाशीतोष्णप्रभृतिषु नानाविधेषु भावेषु।
द्रव्येषु पुरीषादिशु विचिकित्सा नैव करणीया॥ 25॥

अन्वयार्थ - (क्षुत्ष्णाशीतोष्णप्रभृतिषु) क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण इत्यादि (नानाविधेषु) अनेक प्रकार वाले (भावेषु) पदार्थों में (पुरीषादिषु) मल आदिक (द्रव्येषु) द्रव्यों में (विचिकित्सा) घृणा (नैव) नहीं (करणीया) करनी चाहिए।

घृणा मत करो (निर्विचिकित्सा)

प्रिय आत्मन् !

माँ जिनवाणी, जगकल्याणी, अरिहंत भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य आचरित, उपाध्याय उपासित, सर्वसाधु साधित, जीव तत्त्व प्रबोधिनी, अजीव तत्त्व विवेचनी, सर्वास्रव निरोधनी, कर्म बंध विमोचनी, संवर पथ प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्व कल्याणकारिणी, हे माँ जिनवाणी तेरी जय हो सदा विजय हो, तेरे विशाल पद में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन् !

ज्ञानियों के ज्ञान में, दानियों के दान में, प्राणियों के प्राण में, ध्यानियों के ध्यान में, सरगम की गान में, वीणा की तान में, सृष्टि के सम्मान में, भारत के संविधान में एक ही स्वर गूंजता है जय जिनवाणी जय महावीर। त्यागियों के त्याग में, विरागियों के विराग में, मालियों के बाग में, विद्या और विराग में, एक ही स्वर गूंजता है जय जिनवाणी जय महावीर।

प्रिय आत्मन् !

अंतरात्मा की अलौकिक यात्रा के पथिक, मुक्ति पथ के अभिलाषी आत्म प्रीति के सजग प्रेमी, चैतन्यता के परम प्रतीक, भेद–विज्ञान की कुशल नौका पर सवार सत्यार्थ दृष्टि के प्रेरणास्पद, मोक्ष–मार्ग के परम अभिलाषी, मुमुक्षु आत्माओं में सम्यक् दर्शन का तृतीय अंग आज हम देखने जा रहे हैं।

आचार्य देव कहते हैं मनुष्य सभी काम करता है। कुछ कार्य हम दूसरे से भी करा लेते हैं किन्तु एक काम तो आप ही करते हैं दायें हाथ का काम भले ही आप किसी से करा लें, लेकिन बायें हाथ का काम तो आपको ही करना पड़ता है। सम्यक् दर्शन का तीसरा अंग निर्विचिकित्सा है। वह कहता है ग्लानि मत करो, घृणा मत करो, जुगुप्सा मत करो, यदि घृणा करोगे तो अपने मल की सफाई कर पाओगे क्या ? नहीं। यदि मन की सफाई करना हो और मन को शुद्ध रखना हो तो फिर धर्मात्मा से ग्लानि मत करना।

महाराज ! जिनका शरीर मलिन है, जिनके शरीर पर मैल की परतें चढ़ी हुयी हैं, जिन्होंने वर्षों से नहाया नहीं है क्या उनको देखकर भी ? हां उनको देखकर भी। जिस चक्रवर्ती का शरीर कुष्ठ रोग से ग्रसित है, जिससे दुर्गंधित पदार्थ झर रहा है, उसको देखकर भी। जिन वादिराज के शरीर में कोढ़ उत्पन्न हुआ है, क्या उनको देखकर भी ग्लानि न करें ? हां उनको देखकर भी ग्लानि मत करो। महाराज जिनके शरीर से इतनी दुर्गंध निकल रही हो कि शरीर से निकलने वाली दुर्गंध से पूरे गांव के गांव खाली हो जाते हों, गांव के प्राणी गांव छोड़ देते हों, दुर्गंध को सूंघ न सकते हों, उनको देखकर भी ग्लानि न करें ? हाँ उनको देखकर भी ग्लानि न करो। महाराज किसी को किसी भी तरह की बीमारी है, उसको देखकर भी ग्लानि मत करो। ग्लानिमत करना किसी शैतान की तस्वीर से भी।

ज्ञानी जीवो ! तुम किससे ग्लानि कर रहे हो यहाँ, तो कहते हैं शैतान से भी ग्लानि मत करो।

प्रिय आत्मन् !

घृणा पाप से करो, पापी से नहीं, क्योंकि पापी ही तो कभी पाप को छोड़कर परमात्मा बन जाया करता है। आकाश मार्ग से गमन कर रहे मुनियों ने देखा कि एक पापी शेर हिरण के पीछे दौड़ रहा है उन्हें घृणा तब तक थी, जब तक पाप था और पाप छूटा घृणा समाप्त हो गयी।

प्रिय आत्मन् !

आचार्य कहते हैं साधु का चित्त क्षुधा, तृष्णा, शीत, ऊष्ण आदि प्रकार के परिषहों से व्याकुल है। कोई कहता है अब ठंडी लग रही है तो स्वभाविक है कि तन को वेदना होगी। तृष्णा में तृषा है। प्यास है, क्षुधा है, भूख है, उष्णता है, गर्मी है तो उससे व्याकुल होगा यह नाना प्रकार के परिणाम करता है। हे – साधु आत्म मुक्ति के पथ पर चल रहे हो इस मुक्ति के मार्ग पर जीव असहाय हुआ करता है, जिस दिन दीक्षा होती है, देखने वाले एक लाख हुआ करते हैं, लेकिन राह में चलने वाला एक हुआ करता है।

मैं सत्य कह रहा हूँ आज भारत देश के महाराष्ट्र प्रान्त के पवित्र तीर्थधाम नागपुर के समीपस्थ अतिशय क्षेत्र श्री रामटेक में दीक्षा होने जा रही हैं देखने वाले एक लाख होंगे, लेकिन साथ में चलने वाला एक होगा वह स्वयं का आत्मा होगा। ध्यान देना– देखने वालों पर विश्वास मत कर लेना कि देखने वाले तुम्हारा साथ देंगे। कहने वाले तुम्हारा साथ देंगे। देखने वाले मात्र देखने ही आते हैं और देखने वाले होने के पहले चले जाते हैं।

ज्ञानी जीवो! जो देख रहे हैं। हे देखने वालो! आपके लिये कहा है जिस तरह दिगम्बर मुनि की दीक्षा देखने तू जा रहा है सनत कुमार चक्रवर्ती की दीक्षा देखने तो बहुत पहुंचे लेकिन जिस दिन सनत कुमार चक्रवर्ती को कुष्ठ रोग हो गया तो उसको देखने कोई नहीं पहुंचा।

ध्यान देना– जिस तरह एक शादी की अनुमोदना में होने वाले जीवन भर के पापों का संचय होता है, उसी तरह से दीक्षा में जीवन काल में होने वाले समस्त पुण्यों का संचय हुआ करता है। इसलिये कहते है यदि संसार में बंधना हो तो शादियों में पहुंचना और मोक्ष मार्ग पर बढ़ना हो तो दीक्षाओं में पहुंचना। जब तू आज किसी को दिगम्बर मुनि बनता देखता है तो प्रफुल्ल चित्त हो जाता है, तो कल किसी को देखकर घृणा मत कर लेना। ग्लानि मत कर लेना।

प्रिय आत्मन् !

इस मिट्टी की काया को देखकर के प्रेम करने वाला तो सारा संसार है लेकिन इस पुद्गल की काया में बसा आत्मराम जो रत्नत्रयधारी चेतन आत्मा है लेकिन इस चेतन आत्मा में विराजे अरस, अरूप, अगंध, अमूर्त, अविनाशी चैतन्य आत्मा को देखकर के प्रेम करने वाला सम्यक् दृष्टि हुआ करता है।

ध्यान देना - ज्ञानी जीवो! रूप, रूपसी, रूपैया इन तीन को देखने वाला सारा संसार है। लेकिन अरस, अरूप, अगंध, अंतरात्मा को देखने वाला सम्यक् दृष्टि हुआ करता है। पुद्गल के पिण्ड को देखकर ही तूने प्रेम किया है तभी तेरी पुद्गल बुद्धि है, तेरी मिट्टी बुद्धि है, तभी तेरी आंखें चेतन की नहीं है।

आचार्य कहते हैं मिट्टी की यह आंखें मिट्टी को देख रही हैं। प्रभु की दो आंखें प्रभु को न देख सकी तो मिट्टी की है वो आंखें जो मिट्टी में जम गयी। ज्ञानी जीवो! प्रभु की दी हुई आंखें प्रभु को न देख सकी, तो मिट्टी की आंखें मिट्टी में जा मिली। रूप को नहीं, अरूप को देखना है। स्वरूप को देखना है। इस जीव ने बहुरूप बनाये हैं लेकिन एक बार स्वरूप को प्राप्त नहीं किया है। अधिकांशतः हम संसारी जीव रूप-रूप को ही देखते हैं।

आचार्य कहते हैं रूप को नहीं निहारो स्वरूप को निहारो। अरे काली गाय में भी सफेद दूध हुआ करता है। ज्ञानी जीवो! तुम कहाँ घृणा कर रहे हो, ध्यान देना-काली मिट्टी जितनी गुणकारी होती है उतनी सफेद मिट्टी नहीं हुआ करती है। तुम कहाँ रूप को निहार रहे हो, इसलिये आचार्य ने कहा है, जो बीस प्रकृतियाँ है पुद्गल की स्पर्श, रस, गंध और वर्ण यह शुभ रूप भी हुआ करती है और अशुभ रूप भी हुआ करती है। जब पुण्य का उदय होता है तो शुभ रूप हो जाती हैं और पाप का उदय होता है तो यही अशुभ रूप हो जाती हैं।

प्रिय आत्मन् !

स्थान-स्थान की महिमा है। कालापन सिर में हो तो शोभा देता है और दांतो पर आ जाये तो अशोभा देता है। ध्यान देना बाल काले हैं सत्य है, आपके यौवन के प्रतीक हैं और नख काले हो जाये तो आपके अंत के प्रतीक हैं।

प्रिय आत्मन् !

सफेद भी अच्छा होता है, काला भी अच्छा होता है और पुण्य कर्म के उदय में सब अच्छा होता है और पाप कर्म के उदय में सब रंग बुरे होते हैं। सनत कुमार चक्रवर्ती को कुष्ठ रोग सताता रहा घृणा नहीं की। यदि हम धर्मात्मा से घृणा करेंगे तो धर्म से करेंगे। क्योंकि बिना धर्मात्मा के धर्म नहीं होता हैं। यदि...

ज्ञानी! दूध पीना है? पीना है। दूध तो पीना है, लेकिन दूध के बर्तन से घृणा करोगे तो दूध पीने को मिलेगा क्या? नहीं मिलेगा। जैसे-बिना पात्र के दूध नहीं मिलता है, वैसे बिना धर्मात्मा के धर्म नहीं मिलता है। आचार्य कहते हैं जो रत्नत्रय धारी धर्मात्मा से घृणा करता है, नियम से वह रत्नत्रय से घृणा करता है। जिसे रत्नत्रय धारी में रुचि नहीं है, उसे रत्नत्रय में रुचि नहीं है।

जिसको जिसमें रुचि होती है वह उस विषय (Subject) से प्रेम करता है। जिसे गणित में रुचि है तो उसको गणित के सभी टीचर अच्छे लगते हैं और जिसको साइन्स में रुची है, उसको साइन्स के टीचर रुचते हैं। जिसको इंग्लिश में रुची है, उसको इंग्लिश के टीचर पसंद आते हैं। जिसको संस्कृत रुचती है, उसको संस्कृत का संस्कृतभाषी अच्छा लगता है। जिसको वेद रुचता है, वह वेद को स्वीकार करता है।

ज्ञानी जीवो! आपके भीतर जो रुचि है वह आपको रुचेगी। यदि तुम्हें रत्नत्रय में रुचि है, सम्यक् दर्शन में रुचि है, सम्यक् ज्ञान में रुचि है, सम्यक् चारित्र में रुचि है, वहाँ नियम से उस रत्नत्रय धारी को चाहेंगे, प्रेम करेंगे, उसको पास में बिठायेंगे। यदि लगे, यह तो वृद्ध है ज्ञानी जीवो! रत्नत्रय बूढ़ा नहीं होता है। आत्मा बूढ़ा नहीं होता है।

यदि तुम्हें धर्म से प्रेम है तो पहले धर्मात्मा से प्रेम करना पड़ेगा क्योंकि पहले साधु मंगल होता है, बाद में धर्म मंगल होता है। जैसे अग्नि पर पहले पात्र रखते हो, बाद में सामग्री रखते हो, उसी तरह साधु तो धर्म का पात्र है, धर्मात्मा तो धर्म का पात्र है। इस शरीर में आत्मा और आत्मा में धर्म भरा पड़ा है। जैसे- लोटे में दूध भरा है वैसे ही इस शरीरस्थ आत्मा में धर्म भरा है इसलिये जब तक लोटे में दूध है तब तक लौटे की कीमत है उसी तरह जब तक इस शरीर में आत्मा है और आत्मा में धर्म है, तब तक इसकी कीमत हुआ करती है।

ओहो ज्ञानी! सौ रुपये किलो की मिठाई दो रुपये के पत्तल में तू रखे है और फिर भी पत्तल का सत्कार कर रहा है। मिठाई का सम्मान करने के पहले पत्तल का सम्मान करना पड़ता है। यदि रसगुल्ला खाना है तो जिस दोने में रसगुल्ला रखे हैं उस दोने का सत्कार करना है। यदि दोने को सम्मान के साथ नहीं ले पाये तो दोना लुड़क जायेगा और रसगुल्ला हाथ से चला जायेगा। जिस तरह रसगुल्ला खाने के लिये तू दोने को सम्मान के साथ लेता है और मिठाई को खाने के लिये पत्तल को सम्मान से लेता है, उसी तरह से धर्म को पाने के लिये धर्मात्मा को सम्मान के साथ लेना चाहिए।

प्रिय आत्मन् !

मिठाई तो बहुत अच्छी है, यदि दोने से घृणा कर ली ज्ञानी तो मिठाई तुझे हाथ लगने वाली नहीं है। धर्मात्मा के सम्मान के बिना धर्म का सम्मान नहीं होता है, इसलिये जिसने धर्मात्मा का तिरस्कार किया है, उसने धर्म का तिरस्कार किया है। क्योंकि थाली का तिरस्कार करने वाला भोजन नहीं पाता है। थाली में कितना भोजन है यह महत्वपूर्ण नहीं है लेकिन पहले थाली का सम्मान करो। जब पंगत (पंक्ति- भोज) होती है और खाली थाली भी रख दी जाती है, तो उसका भी सम्मान करते है क्योंकि थाली में भले ही प्रथम बार नमक परोसा जा रहा है लेकिन जब भी परोसा जायेगा दूसरी बार में मिर्ची परोस दी, तीसरी बार में खटाई परोसने के बाद घबराओ मत नमक, मिर्ची, खटाई परोसने के बाद कोई ऐसा भी आयेगा जो तेरी थाली में खीर, पूड़ी, हलुवा, सब कुछ परोसेगा लेकिन पहले जब तुझे नमक परोसा जा रहा था, तभी तूने थाली का तिरस्कार कर दिया तो बोलो ज्ञानी ! तेरे भविष्य में क्या बचेगा।

ज्ञानी ! ध्यान देना – वर्तमान को ठुकराने पर भविष्य ठुकराया जाता है। यदि तुम्हें धर्म का रसगुल्ला खाना है, तो धर्मात्मा रूपी दोने को स्वीकार करना पड़ेगा।

प्रिय आत्मन् !

धर्मात्मा धर्म के भोजन की थाली है। धर्मात्मा का सम्मान धर्म का सम्मान है। धर्मात्मा के बिना धर्म नहीं होता है इसलिये धर्मात्मा को देखकर के अपना मुख मत मोड़ना और एक पल को देखकर के त्रिकाल का निर्णय मत करना, क्योंकि पहले पल में नमक परोसा है और तू यही मान ले कि यह व्यक्ति शुरु से नमक ही परोसता रहेगा ज्ञानी जीवो ! नमक मिर्ची का तात्पर्य यह था कि पहले सब व्यक्ति बैठ जायें।

सभा में सबको एक साथ बिठाने के लिये मंगलाचरण, शास्त्र भेंट, यह नाना कार्यक्रम ऐसे होते हैं जैसे पंगत की थाली में पहले नमक, मिर्ची, खटाई परोसी जाती है उसी तरह प्रारम्भ में नमक, मिर्ची, खटाई परोसना अनिवार्य है। जैसे तेरे भोजन का राजा नमक है, उसी तरह सभा का राजा मंगलाचरण हुआ करता है।

प्रिय आत्मन् !

नव मल द्वार बहे घिनकारी.........

यह शरीर अपवित्र है। तीन लोक में जितनी अपवित्रता है, वह सम्पूर्ण शरीर में दी है। जहाँ–जहाँ जो–जो गंदगी देखते हो उससे ज्यादा गंदगी आपके शरीर में है। लेकिन ध्यान रख लेना–इस शरीर में मल मूत्र विष्टा सब भरा रहेगा, फिर भी केवलज्ञान हो सकता है, लेकिन कषाय का एक कण रहेगा तो केवलज्ञान तो क्या सम्यक् ज्ञान भी होने वाला नहीं है।

ध्यान देना–शरीर में मल है, मूत्र है फिर भी तुझे केवलज्ञान में बाधा नहीं है, लेकिन घृणा का मल रहेगा, ग्लानि का मल रहेगा तो तेरा सम्यक् दर्शन भी निर्मल नहीं होगा। यदि किसी दिगम्बर मुनि को देखकर के हमारा मन मुरझा जाता है तो समझ लेना कि तुझे रत्नत्रय से प्रेम नहीं है।

मैं सच कह रहा हूँ वाणी वाले साधुओं का सम्मान तो सब कर लेते हैं, प्रवचन वाले साधुओं का सम्मान तो सब कर लेते हैं, लेकिन जिन्हें प्रवचन नहीं आता, उनका भी सम्मान करना सीखो क्योंकि उनके पास भी तो सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र है। काश जिन्हें बारह साल तक णमोकार मंत्र याद नहीं हुआ था वे मुनिराज आज होते तो आप इस युग के जीव कहते इन्हें बारह साल तक णमोकार मंत्र याद नहीं हुआ, इनका गुरु कैसा है। ऐसे अज्ञानी के लिये मुनि बना दिया, इस तरह का विचार करते।

ज्ञानी जीवो ! अकेले ज्ञान में कल्याण नहीं होता है। कल्याण सद् भावना से हुआ करता है। जिन्हें कल्याण करना है, वे पांच समिति तीन गुप्ति के ज्ञान से कल्याण कर लेते हैं और जिन्हें कल्याण नहीं करना है तो ग्यारह अंग का ज्ञान भी बना रहेगा तो भी जाकर के निगोद में चले जाते हैं। ज्ञान के लिये रटना आवश्यक नहीं है। रटना तो वचन ज्ञान कहलाता है और भीतर में जो चल रहा है वह भाव ज्ञान कहलाता है।

यदि जिनशासन को प्रकट करना हो तो रटना होगा, भगवान महावीर स्वामी की वाग डोर सम्हालना है, तीर्थंकर भगवान के समोशरण को वर्धमान करना है तो व्यवहार और निश्चय नय दोनों नयों का ज्ञाता बनना अनिवार्य है। यदि चारित्र कमजोर होगा तो तेरा ही बुरा होगा और किसी का बुरा नहीं होगा। यदि ज्ञान कमजोर हुआ तो तू लाखों का बुरा कर देगा। क्यों ? तेरे प्रवचन में जितने आयेंगे यदि तूने ज्ञान का अनर्थ कर दिया तो लाखों का बुरा हो गया। एक अज शब्द का अर्थ बुरा करने पर आज विश्व में कितने अज काटे जा रहे हैं, एक शब्द के अर्थ का अनर्थ करने पर इतना हो सकता है। इसलिये।

ज्ञानी जीवो! कभी ज्ञान को मलिन मत करना। इतना उज्ज्वल ज्ञान प्रकट करो, इतना निर्मल ज्ञान प्रकट करो एक-एक शब्द का अर्थ भली भांति शुरु से सीखो आगम में क्या लिखा है और गुरु उसका क्या अर्थ निकालते हैं, वह भी भलीभांति समझने का प्रयास करो। घृणा मत करो धर्म से, धर्मात्मा से घृणा मत करो। निर्ग्रंथ योगी नग्न रहते हैं। कौन नग्न नहीं रहता, सभी जन्म लेते हैं सभी नग्न रहते हैं, फिर घृणा किस बात की। यथाजात बालक समान जिनकी मुद्रा है, जिनके मन को विकार छू नहीं पाते हैं जिनके लिये निर्विकार बालक की तरह चर्या कही है, ऐसे दिगम्बर योगीश्वरों के लिये कभी घृणा का विषय नहीं बनाना।

प्रिय आत्मन् !

ग्लानि का विषय मत बनाना अपने जीवन में। हो सकता है कोई एक दुर्गुण भी दिखाई दे क्योंकि मुझे मालूम है कि हाथी की आंखें बड़ी-बड़ी हुआ करती है, उसी तरह कई व्यक्तियों की आंखे इतनी बड़ी-बड़ी होती है कि दूसरे के दोष देखने के लिये हर समय खुली रहती है और अपने अंदर चलनी के समान अनेकों दोषों रूपी छिद्र हैं, फिर भी एक दोष दिखाई नहीं देता।

यदि देखना हो तो अपने भीतर के दुर्गुण को देख लेना और साधु संतों के गुणों में प्रीति करना, क्योंकि वे गुण पाने के लिये साधु बने हैं। वैद्य की अधिकांशतः गोली काली हुआ करती है लेकिन गुणकारी होती है, उसी तरह साधु गोरा हो, या काला है, साधु छोटा है या बड़ा है, साधु कैसा है, उसके रूप को, रंग को, कद को देखने का प्रयास मत करो।

मैं तो इतना भी कहता हूँ कि आज संतवाद से घृणा हो रही है। पंथ वाद से घृणा हो रही है कौन किस पंथ का है, कौन किस परम्परा का है ज्ञानी जीवो! ध्यान देना- यह निर्विचिकित्सा अंग कहता है गुणों में प्रीति होना चाहिये, नाम में प्रीति मत कर लेना। क्वालिटी देखने का प्रयास करना चाहिये। मात्र कम्पनी देखने का नहीं।

प्रिय आत्मन् !

जो योग्य व्यक्ति होते हैं, वे क्वालिटी देखते है, वे गुणवत्ता देखा करते हैं। आचार्य कहते हैं गुणों में प्रीति होना निर्विचिकित्सा है, शरीर में प्रेम होना नहीं, रूप में प्रेम होना नहीं। ध्यान देना- ज्ञानी जीवों! कोई गाने में प्रेम कर बैठा, कोई रूप में प्रेम कर बैठा। ओहो! ज्ञानी! वह रक्ता रानी अपने ही घुड़सवार से प्रेम कर बैठी और अपने राजा को धक्का दे बैठी।

कोई शब्द में प्रेम करता है, इसलिये तुम यह मत सोच लेना कि विभव सागर अच्छा बोलते हैं और जो इस पर ही दीवाने हैं कि विभवसागर अच्छा बोलते हैं तो ज्ञानी जीवों उनकी दृष्टि में अभी अहिंसा की परिभाषा नहीं है। क्योंकि प्रवचन के सम्राट वे क्षमा सागर जी महाराज जब तक प्रवचन करते रहे तब तक देश की जनता चातुर्मास के लिये दस–दस बसें लेकर जाया करती थी। क्षमा सागर जी महाराज के लिये मैंने वह भी क्षण देखे हैं, जब जयपुर से दस–दस बसें आती थी चातुर्मास कराने के लिये और वाणी चली गयी तो क्या दर्शन चला गया, क्या चारित्र चला गया बोलो ज्ञानियों रत्नत्रय में से क्या गया ? मात्र पुद्गल चला गया पुद्गल की सत्य वर्गणायें भी चली गयी और आज उनमें से एक भी नहीं पूछ रहा। लेकिन जो रत्नत्रय की कीमत करता है वह तो जानता है जब प्रवचन करते थे तब भी ज्ञान था, तब भी दर्शन था, तब भी चारित्र था और प्रवचन नहीं करते हैं तो भी तो वही ज्ञान है, तब भी तो वही दर्शन है, तब भी तो वही चारित्र है।

सच है यह इस युग का प्रमाण है कि जब वही वस्तु शोरूम में रख दी जाती है तो हजार की बिक जाती है और शोरूम के बाहर सौ रुपये की कोई नहीं खरीदता है। जब तक वाणी थी तो शोरूम में रखा रत्नत्रय था सो तुमने खूब खरीदा, जब शो रूम के बाहर चीज आ गयी तो अब कोई नहीं खरीद रहा।

ज्ञानी जीवो! वाणी नहीं है तो क्या हुआ, रत्नत्रय तो वही है लेकिन आज के व्यक्ति नहीं चाहते उन्हें, क्यों नहीं चाहते क्योंकि निर्विचिकित्सा अंग का स्वरूप ही नहीं मालूम है उन्हें! दिगम्बर साधु की उपासना सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र की पूजा है।

प्रिय आत्मन् !

आचार्य कहते हैं ग्लानि नहीं करना चाहिये। ज्ञानी और ग्लानि दो शब्द एक साथ हो ही नहीं सकते हैं। जो घृणा नहीं कर सकता वही तो धर्म की स्थापना कर सकता है। इसलिये धर्म को पाना है तो धर्मात्मा से ग्लानि मत करना। यह निर्विचिकित्सा अंग है।

****

अमूढ़दृष्टि अंग का लक्षण

लोके शास्त्राभासे समयाभासे च देवताभासे।
नित्यमपि तत्वरूचिना कर्त्तव्यममूढ़दृष्टित्वम्॥ 26॥

अन्वयार्थ- (लोके) लोक में (शास्त्राभासे) शास्त्राभास में- जो शास्त्र तो न हो परन्तु शास्त्र सरीखे मालूम होते हों उसमें (समयाभासे) धर्मसभा में (च) और (देवताभासे) देवताभास में (नित्यं) सदा (अपि) ही (तत्त्वरूचिना) तत्त्वों में रुचि रखने वाले पुरूष को (अमूढ़-दृष्टित्वं) मूढ़तारहित श्रद्धान (कर्त्तव्यं) करना चाहिए।

प्रिय आत्मन् !

माँ जिनवाणी, जगकल्याणी, अरिहंत भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य आचरित, उपाध्याय उपासित, सर्वसाधु साधित, जीव तत्त्व प्रबोधिनी, अजीव तत्त्व विवेचनी, सर्वास्रव निरोधनी, कर्म बंध विमोचनी, संवर पथ प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्व कल्याणकारिणी, हे माँ जिनवाणी तेरी जय हो सदा विजय हो, तेरे विशाल पद में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन् !

आचार्य लिखते हैं श्रद्धा करने के पहले यह देख लेना कि मेरी श्रद्धा कहाँ जा रही है क्योंकि इस लोक में लोकाभास भी है, देवताभास भी है, आगमाभास भी है, धर्माभास भी है, ज्ञानी जीवो! यदि आंखों में कभी पीलिया हो जाया करता है तो फिर हम जो भी देखते हैं वह सब पीला-पीला नजर आता है। इसी तरह यदि श्रद्धा को पीलिया हो गया है, विश्वास को पीलिया हो गया है, प्रतीति को पीलिया हो गया है, आस्था को मोतियाबिंद हो गया है- तो

ज्ञानी जीवो! सत्य का दर्शन नहीं हो पायेगा, असत्य भी सत्य नजर आयेगा। आचार्य अमृतचन्द्र की देशना आज हमें उपदेश दे रही है।

प्रिय आत्मन् !

लोक में नाना प्रकार के जीव हैं। नाना प्रकार की बुद्धि हैं। नाना प्रकार के व्याख्याता है। नाना प्रकार के उपदेश्टा हैं। उपदेशक हैं।

पर उपदेश कुशल बहु तेरे,

जे आचरण ते नर न घनेरे।

ओहो! ज्ञानी जीवो! पर को उपदेश देने में कुशल तो सारा संसार हुआ करता है लेकिन निज में आचरण करने में रिक्त रहते हैं। लोक में भिन्न-भिन्न प्रकार के शास्त्र हैं, भिन्न-भिन्न प्रकार के लेखक आचार्य वे कहते हैं –

रागद्वेष मोह आक्रान्त, वचनाज्जातं तत्आगमाभासं।

प्रवचन सुनने के पहले वक्ता की प्रमाणिकता की खोज कर लेना। जैसे भोजन करने के पहले तू उसकी शुद्धता का प्रमाण ले लेता है, उसी तरह प्रवचन सुनने के पहले, बोलने वाले वक्ता की शुद्धता का प्रमाण ले लेना। आचार्य कहते हैं यदि वक्ता प्रमाणित होगा तो उसका वचन भी प्रमाणित होगा। इसलिये किसी ने तो यह तक कह दिया कि भोजन अपनी माँ से करना और प्रवचन अपनी जिनवाणी माँ का सुनना।

ज्ञानी जीवो! आज दोनों स्थिति बिगड़ गयी हैं कि पहले का व्यक्ति घर में भोजन किया करता था और घूमने बाहर जाया करता था आज का व्यक्ति भोजन बाहर करने लगा है और घूमने अंदर जाने लगा है।

ज्ञानी जीवों! पहले व्यक्ति जिनवाणी को पढ़ता था और चौराहे-चौराहे पर चर्चा करता था जिनवाणी की। आज चौराहे-चौराहे पर न्यूज पेपर लेकर पढ़ता है और मंदिर में आकर के न्यूज पेपर की चर्चा करता है।

ज्ञानी जीवो! कभी-कभी तो मुझसे भी लोग कहते हैं महाराज तुम भी न्यूज पेपर पढ़ा करो मैंने कहा तुम न्यूज पेपर पढ़ते हो, संसार की सामग्री को पढ़ते हो, फिर इधर मंदिर में आकर परोसते

हो। मैं भी पढूंगा तो परोसूंगा क्या ? भोजन जैसा बनाऊँगा, वैसा ही तो परोसूंगा। जैसा भोजन बनेगा वैसा ही तो परोसने में आयेगा इसलिये भोजन अपनी माँ से करना चाहिये और प्रवचन अपनी जिनवाणी माँ से सुनना चाहिये।

ध्यान देना, साथ रहो भाई के, चाहे बैर हो। ओहो! प्यार करो पिता से। आचार्य उपाध्याय साधु आपके भाई हैं, इनका साथ करो –

Arihant is my father

Jinvani is my mother

Om my brother

अरहंत भगवान पिता है, जिनवाणी माँ है और आचार्य, उपाध्याय, साधु यह भाई हैं। अरहंतो से प्यार करो अर्थात् अरहंतो की आराधना करो, जिनवाणी माँ से भोजन करो, तात्पर्य अध्ययन करो, स्वाध्याय करो, ज्ञान ही भोजन है और आचार्य, उपाध्याय, साधु भाई हैं, इनके साथ रहो अर्थात् इनकी संगति करो।

प्रिय आत्मन् !

लोक में नाना प्रकार के शास्त्र हैं। शास्त्र भी शस्त्र हो जाया करते हैं। आचार्य कहते हैं जिसमें नय का कथन नहीं है वे नय विहीन शास्त्र हैं ओहो ! विजय किसी की भी हो, लेकिन युद्ध तो हो ही जाता है।

किन्तु जहाँ नय हुआ करता है, वहाँ बिना युद्ध के विजय हो जाया करती है। जिनवाणी माँ कहती है कि मैं किसी भी बेटों में युद्ध नहीं कराना चाहती मैं दोनों बेटों को इतना शांत कर लेती हूँ कि दोनों बेटे बड़े प्रेम से रहें और कोई युद्ध की सम्भावना न हो। मैं नहीं चाहती कि कहीं कौरव में युद्ध चले कि पांडव में युद्ध चले, मैं तो दोनों को शांत कर लेती हूँ।

ज्ञानी जीवो ! ध्यान देना जो जैसा है नहीं, वैसा प्रतीत होना आभास कहलाता है। चांदी को देखा और शीप का आभास हो रहा है, सीप को देखा चांदी का आभास हो रहा है यह है। नहीं मात्र आभास है। ठंडी के मौसम में तालाब के ऊपर कौहरा छाया हुआ है और तू धुयें का आभास कर रहा है, अग्नि का निर्णय कर रहा है यह प्रतिभास नहीं आभास है। आभास असत्य हुआ करता है, प्रतिभास सत्य हुआ करता है।

आचार्य कहते हैं हम जिस शास्त्र को पढ़ रहे हैं वह शास्त्र है कि शास्त्राभास है ओहो! महाराज हम शास्त्र पढ़ते ही कहाँ हैं। एक व्यक्ति बरसात के दिनों में उपन्यास बेचने के लिये निकला कई दिनों से पानी बरस रहा था। गाड़ियों का मार्ग अवरोध था, उसने सोचा पेट पालने के लिये हो सकता है किसी सेठ के पास जायें, उपन्यास ले लें। उसने कहा सेठजी उपन्यास ले लीजिये, तो सेठजी ने कहा कि इस अलमारी के ऊपर रखा हुआ है। वह कहता है सेठजी उपन्यास नहीं हो सकता है वह उपन्यास नहीं होगा। उसने कहा देखो न कितनी पुस्तकें रखी हुई हैं सेठजी उसमें उपन्यास एक भी नहीं है। आपने कैसे जान लिया कि उपन्यास नहीं है सेठजी। देखो न कितनी धूल चढ़ी हुयी है तात्पर्य उसका कहना था कि सेठ आप अपने शास्त्रों का अध्ययन करते ही नहीं है कि कभी-कभी धूल भी चढ़ आती है। कभी-कभी फफूड़ा भी आ जाता है।

ज्ञानी जीवो! हमारे पूर्वाचार्यों ने जितने परिश्रम करके शास्त्रों को सुरक्षित रखा है। जितने परिश्रम करके शास्त्रों को लिखा है। लोहे की सुईयों से ताड़ के पत्रों पर लिखा है। आज एक पेज लिखने में जितना श्रम होता है, तब एक लाइन लिखने में उतना श्रम होता था, जैसे कड़ाई करते समय लगता है। समय ज्यादा लग जाता है और स्थान थोड़ा होता है, मालूम चला कपड़ा चालीस रुपये मीटर का है और कड़ाई दो सौ रुपये मीटर की लग रही है।

हमारे आचार्यों ने बहुत परिश्रम किया है। ज्ञानी जीवो! अपने पास इतना है-इतना है यदि प्रतिदिन एक शास्त्र पढ़ना प्रारम्भ करें तो जीवन काल में सम्पूर्ण जिनवाणी को नहीं पढ़ पाओगे इतने शास्त्र हैं। मैं तो यह कहता हूँ आपके लिये अपनी दृष्टि में निर्मलता लाना हो, अपनी दृष्टि में से पीलिया को निकालना हो, अपनी दृष्टि के मोतिया बिंद को अलग करना हो तो माँ जिनवाणी के समस्त शास्त्रों को पढ़ो।

निरन्तर शास्त्राभ्यास होना चाहिये और शास्त्राभ्यास जितना गहरा होगा, आचार्य कहते हैं तुम्हारे अंदर मूढ़ता का प्रवेश नहीं हो पायेगा, अन्यथा जिसने जो कह दिया हम उसी को स्वीकर कर लेते हैं। लौकिक मान्यतायें भी हम मैं प्रवेश कर जाती हैं। दैविक मान्यतायें हम में प्रवेश कर जाती हैं और न जाने जिनका विधान वीतराग सर्वज्ञ आगम में नहीं है, ऐसी प्रवृतियाँ ऐसी मान्यतायें प्रवेश कर जाती हैं।

ज्ञानी जीवो! हम मनुष्य हैं मनुष्य एक मननशील प्राणी है। चिंतन शील प्राणी है। विचार शील प्राणी हैं। हमारे पास कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का विवेक है। हमारे पास ग्रहण और त्याग का विवेक

हैं। हमारे पास सेव्य और असेव्य का विवेक है। तो हमें चाहिये कि वह विवेक जिनवाणी से प्राप्त होता है तो हम जिनवाणी को सीखें, जिनवाणी को पढ़ें।

प्रिय आत्मन् !

यदि तेरे पिता का संदेश आता है तो तत्काल खोल लेता है। तत्काल पढ़ लेता है लेकिन तेरे परम पिता अरहंत भगवान के पत्र ओहो! कहाँ रखे हैं तुझे पता भी नहीं है। ध्यान देना - ज्ञानी जीवो! मैं अपना कुछ भी नहीं सुना रहा हूँ। तुम्हारे परम पिता ने जो तुम्हारे पिता को चिट्ठी लिखी थी- पढ़ने का तुम्हें समय नहीं है। मैं नहीं कह सकता कि चिट्ठी पढ़ने का समय नहीं है।

बेटा तूं कितना भी व्यस्त हो, यदि तुझे पिता से प्यार होगा, तुझे माँ से प्यार है तो तू कितना भी बिजी होगा लेकिन इतना समय तो निकाल ही लेगा कि एक महीने के बाद पिता की चिट्ठी आयी है, तो कम से कम एक बार पढ़ तो लें, मैंने अनुभव किया है।

जब मैं विद्यालय में पढ़ता था तो छह महीने के बाद कोई पत्र बगैरह आ जाता था, कितना इंतजार करते थे बच्चे कि कोई घर से पत्र आ जाये। कोई रक्षा बंधन का त्यौहार है कोई संदेश आ जाये सभी के संदेश आते थे, तो सब इंतजार करते थे। उसी तरह हमें प्रतीक्षा करना चाहिये और यह संदेश यह पत्र स्याद्वाद मुद्रा से मुद्रित तीर्थंकर के समोशरण से प्रकाशित दिव्य-ध्वनि से मुखरित गणधर स्वामी द्वारा गुंथित ये महान शास्त्र है, जिन शास्त्रों में और कुछ नहीं है तेरे परम पिता अरहंत देव की प्रेरणायें है। इसलिये और किसी की सुन सको या न सुन सको लेकिन एक बार अपने परम पिता की जरूर सुन लेना।

प्रिय आत्मन् !

आचार्य कहते हैं तुम एक पत्र लिखते हो, वह पत्र मात्र एक पुत्र के लिये काम आता है। जब तुम एक संदेश भेजते हो तो मात्र पुत्र को ही काम आयेगा लेकिन जिनवाणी माँ कहती है ओहो! इस माँ ने संदेश भेजा एक के लिये काम आया और जिनवाणी माँ ने संदेश भेजा, तीन लोक तीन काल में जितने पुत्र होंगे, जितने जिनवाणी के सपूत होंगे, सबके काम आयेगा यह संदेश। कैसा संदेश है? कैसा उपदेश है। ऐसा संदेश, ऐसा उपदेश दो कि वह उपदेश भूतकाल, भविष्य काल, वर्तमान काल, उर्ध्व लोक, मध्य लोक और अधो लोक तीन लोक और तीन काल के प्राणियों का हित उपदेश करने वाला हो।

प्रिय आत्मन् !

हम दिनभर में जितना बोलते हैं उसमें से कितना Delete करना होता है ज्ञानी जीवो ! ध्यान देना– आप प्रवचन सुन रहे कितना Delete कर सकते हैं मैं तो राइट पूरा कर रहा हूँ। सुन तो पूरा रहे हैं और Save कितना कर रहे हैं।

हमारे आचार्यों ने कहा जो ज्ञान हमारे पास है वह कुछ समय बाद चला जायेगा इसलिये हमारे आचार्यों ने अपने ज्ञान को शास्त्रों में Save करके रख दिया है। आप मोबाइल में Save करते हो, आप कम्प्यूटर में Save करते हो, लेकिन हमारे आचार्यों ने शास्त्रों में Save करके रख दिया। क्या Save करके रख दिया ? ज्ञान Save करके रख दिया। संदेश Save करके रख दिया। यह वह अमर संदेश है, जो अमरता को देने वाला है। यह पत्र सुपात्र के हाथ में आ जाता है तो कल्याण हो जाता है। शास्त्र तो पढ़ना पर शास्त्राभास नहीं पढ़ना। क्योंकि शास्त्राभास पढ़ लोगे तो जीवन में जो जैसा नहीं, वैसा मान लेना आभास है।

धर्म को तो जानना किन्तु हिंसा को धर्म मत मान लेना। देवता को जानना किन्तु ध्यान रखना हर देवता में वीतरागता, सर्वज्ञता, हितोपदेशता का अन्वेषण भी कर लेना।

णाणा जीवा णाणा कम्मा।

ज्ञानी जीवो ! नाना जीव हैं, नाना कर्म हैं। स्थिति बड़ी विचित्र हुआ करती है। एक व्यक्ति के अंदर भाव जागा कि मुझे देवता का दर्शन करना है देवता के दर्शन की अभिलाषा में ? नगर में एक पंडित आया बोला तुझे देवता के दर्शन करना है मैं तुझे देवता के दर्शन करा सकता हूँ चलो मेरे साथ वह एकांत कमरे में ले गया उसने उसकी नाक काट दी और कह दिया देखो अब तुम किसी से कहोगे तो सब लोग तुझे नकटा कहेंगे इसलिये सबसे यही कहना कि मुझे देवता का दर्शन हो गया।

जिसकी नाक कटती है, उसको देवता का दर्शन होता है ज्ञानी जीवो ! सब लोगों ने पूंछा क्या आपके लिये देवता का दर्शन हो गया ? बोला हाँ ! मुझे देवता का दर्शन हो गया, मैं उस कमरे में गया था, उस कमरे में मुझे देवता का दर्शन हो गया। ज्ञानी ! जब एक की नाक कट जाती है, तो जिसकी नाक कट जाती है, वह दूसरे की नाक कटाने की कोशिश करता है। इस चक्कर में पूरे गांव की नाक कट गयी। यह आभास था।

आचार्य कहते हैं हर किसी पर विश्वास मत कर लेना सत्य की खोज करना। सत्य शास्त्र, सत्य देव, सत्य धर्म तीनों सत्य हैं। पानी पीने के पहले पानी की सत्यता का प्रमाण कर लेते हैं।

भोजन के पहले खाद्य पदार्थ की सत्यता की खोज कर लेते हैं तो फिर देव, धर्म और शास्त्र के विषय में भी सत्यता का प्रमाण होना चाहिये। यदि तुम्हारे अंदर तत्त्व की रूची है तो किसी भी तरह की मूढ़ता न आ जाये अन्यथा गंगा गये तो गंगादास और जमना गये तो जमना दास।

सत्य की खोज में रास्ते से चले जा रहे ओहो ज्ञानियो! राजा की सवारी रास्ते से निकली और आगे देखा एक जगह मल पड़ा हुआ था, तत्काल आगे चलने वालों के हाथ में जो गुलाल थी वह गुलाल मल पर डाल दी, जब एक ने डाली तो पीछे चलने वाले सब के सब गुलाल डालते गये और गुलाल का बहुत बड़ा ढेर लग गया। पीछे से राजा आया, जब राजा ने देखा कि सब डाल रहे हैं तो राजा ने भी गुलाल डाली। राजा ने डाली तो पूरे गांव वालों ने गुलाल डाली। प्रतिष्ठा होने लगी, पूजा होने लगी अब तो क्या है। अगरबत्ती, नारियल, श्रीफल चढ़ने लगे। क्या महत्त्व की खोज में गये कि क्या था? जब बहुत बड़ा ढेर लग गया तो रास्ते का मार्ग अवरूद्ध हो गया राजमार्ग अवरूद्ध हो गया तो राजा ने कहा भाई एक काम करो कि उसके लिए एक अच्छा स्थान बनवाकर उसको स्थापित करवा दो। क्यों? होगा कोई देवता, तो हटाते-हटाते अंत क्या निकला? गंदगी निकली। इसलिये।

ध्यान रखना अपने यहाँ मल देवता की पूजा नहीं होती है। अपने यहाँ निर्मल देवता की पूजा होती है। निर्दोष देवता की पूजा होती है। सम्यक् दृष्टि ज्ञानी आत्म तत्त्व का निर्णय करता है तीर फेंकने के पहले निशाने को साधता है। सम्यक् दृष्टि कदम बढ़ाने के पहले तत्त्व का निर्णय करता है, शास्त्र पढ़ने के पहले शास्त्र का निर्णय करता हैं। गुरु चुनने के पहले गुरु का निर्णय करता है।

पानी पीजे छानकर, गुरु कीजे जानकर।

धर्म करने के पहले धर्म का निर्णय करता है। देव चुनने के पहले देव का भी निर्णय कर लेता है। हम दूसरों को सिखाते हैं, हम दूसरों को पढ़ाते हैं लेकिन कम से कम तीन के बारे में तो डिसीजन पक्का होना चाहिये। देव, शास्त्र, गुरु और धर्म इन चारों के विषय में सम्यक् डिसीजन (निर्णय)होना चाहिये। स्वयं के अंदर से निकला हुआ आत्म निर्णय होना चाहिये।

आचार्य कहते हैं भूखा रह लेना अच्छा है लेकिन तृषा सताये या क्षुधा सताये, तो विष खा लेना अच्छा नहीं होता है। उसी तरह से अपने जीवन में हर किसी को अपनाना अच्छा नहीं होता है। सच्चाई को खोजो और सच्चाई को अपनाओ यही जीवन का ध्येय बनाओ।

प्रिय आत्मन् !

आचार्य कहते हैं पर्यायों में मूढ़ नहीं होना फिर पर में क्यों मूढ़ हो रहे हो तुम जैसा बनना चाहते हो तुम्हारा लक्ष्य वीतराग बनना है तो जीवन में वीतरागी को चुनो। तुम्हारा सर्वज्ञ बनना लक्ष्य है तो सर्वज्ञ को चुनो और लक्ष्य तुम्हारा हितोपदेशी बनना हैं तो हितोपदेशी को चुनो। यही जीवन का ध्येय बनाओ। फिर कोई कितना भी कह दे कि तीर्थंकर पच्चीस है तो रेवती रानी कहेगी कि हो ही नहीं सकते। चमत्कारों में वह आ जाता है जिसको तत्त्व का ज्ञान नहीं होता।

जो राग–द्वेष–मोह से रहित हैं वह वीतराग देव चमत्कार नहीं करेगा जो राग–द्वेष–मोह से रहित साधु है वह चमत्कार कर नहीं सकता है। क्योंकि साधु चमत्कार करेगा तो रागी, द्वेषी, मोही हो जायेगा तो साधु चमत्कार कर नहीं सकता, वीतराग चमत्कार कर नहीं सकते। चमत्कार करना व्यंतरों का काम है जिनने पहले पूर्व भव में मंदिर बनाये वे मंदिर को अच्छे से नहीं बना पाये और मंदिर में राग बना रहा यह मेरा मंदिर, मैं सेठ यह मेरा मंदिर, अपना–अपना मंदिर करते–करते उसी मंदिर में जाकर व्यंतर हो गये। मैं सत्य कह रहा हूँ इस सत्यता का प्रमाण भी है।

जिन जीवों ने ऐसे मंदिर बनाये हैं बड़ी–बड़ी धर्मशाला बनवाई है और वे जाकर के उसी मंदिर में व्यंतर बनकर बैठे हैं। भारत वर्ष में तेरह हजार मंदिर है। लेकिन तेरह हजार जैन मंदिरों में से एक मंदिर में भी यह नहीं लिखा कि वीतरागी मंदिर एक क्षेत्र पर यह नहीं लिखा कि वीतराग क्षेत्र। यह तो लिखा होगा अतिशय क्षेत्र ओहो! यह भी लिखा होगा अतिशयकारी बाबा लेकिन यह नहीं लिखा होगा कि हितोपदेशी देव। यह तो हर जगह लिखा मिल जायेगा चमत्कारी बाबा यह प्रतिमा चमत्कारी है।

ज्ञानी जीवो! ध्यान देना चमत्कार प्रतिमा में नहीं होता है यदि प्रतिमा में चमत्कार है तो जितने दर्शन है सबके जीवन में चमत्कार होना चाहिये। जब माइक चल रहा है तो सब के पास आवाज पहुंच रही है इसी तरह से यदि प्रतिमा में चमत्कार है तो फिर सबके जीवन में चमत्कार होना चाहिये। क्योंकि भगवान में न राग है, न द्वेष है तो सबके लिये एक सा क्यों चमत्कार नहीं।

मूर्खता नहीं रखना अन्यथा तुम दुकान में दिनभर में सौ जनों को मूर्ख बना के आये और इधर आये सो स्वयं मूर्ख बन गये। अमूढ़दृष्टि कहता है कि कहीं मूर्ख नहीं बन जाना क्या? चमत्कार के नाम पर मूर्ख नहीं बन जाना। अतिशय के नाम पर मूर्ख नहीं बन जाना। बेटा पुष्पदंत तुम रेवती रानी को आशीर्वाद बोल देना।

ज्ञानी जीवो! वह क्षुल्लक पुष्पदंत विचार करता है कि मेरे गुरु ने रेवती रानी को तो आशीर्वाद बोला है और किसी को आशीर्वाद क्यों नहीं बोला मैं आज परीक्षा करना चाहूंगा मेरे गुरु ने मात्र एक स्त्री का नाम लिया रेवती रानी का नाम लिया आखिर क्या कारण है कि रेवती रानी को ही आशीर्वाद क्यों बोला उसने कहा मैं रेवती रानी की सत्य की खोज करना चाहता हूँ। उसने सबसे पहले कहीं एक चमत्कार दिखाया। एक दिशा में सारा गांव चमत्कार देखने गया लेकिन रेवती रानी चमत्कार देखने नहीं गयी। दूसरे दिन दूसरी दिशा में चमत्कार दिखाया लेकिन नहीं गयी। तीसरे दिन तीसरी दिशा में चमत्कार दिखाया लेकिन नहीं गयी। चौथे दिन चौथी दिशा में दिखाया। पांचवे दिन बीच नगर में आकर के पच्चीस वें तीर्थंकर का भी समोशरण लगा लिया। रेवती रानी कहती है तीर्थंकर चौबीस होते थे सो हो गये, पच्चीसवां तीर्थंकर होता ही नहीं है इसलिये चमत्कार दिखाने वाला झूठा है।

यह चमत्कार दिखाने वाला पाखंडी है यह कपटी है और छली है ज्ञानी जीवो! ध्यान दो-रेवती रानी ने नमस्कार नहीं किया। गयी भी नहीं इस सत्य की ओर जाइये हाँ ऐसा तो नहीं है कि हम कहीं मूर्ख बन जाये और कहीं जीवन में परिश्रम से कमाई हुयी पूँजी को जहाँ चाहे नष्ट न कर दें।

ज्ञानी जीवों! ध्यान देना- स्व विवेक का परिचय दो आचार्य कहते हैं।

कापथे पथि दुःखानां, कापथस्थेऽप्य सम्मतिः।

असम्पृक्ति रनुत्कीर्तिरमूढा दृष्टिरुच्यते॥ 14॥

खोटे मार्ग में, खोटे धर्म में दुखों से दुखित होकर के मन से अनुमति नहीं देना ओहो! वहाँ चमत्कार है तुम चले जाओ ज्ञानी जीवो! ध्यान रखना जो होना है सो तेरे पुण्य पाप से होना है। न उसमें कोई देवी कुछ कर सकती है, न कोई देवता कुछ कर सकता है और फिर यदि जो कुछ कर सकते हैं तो फिर वे स्वयं अपना भला क्यों नहीं कर लेते हैं इसलिये सबसे बड़ी बात समझ लेना कि तुम झूठी अफवाहों से बचना।

आत्मा का पतन न हो जाये, स्वभाव में नहीं ठहर पाओगे यदि कहीं भी मूर्खता आ जायेगी। ज्ञानी जीवो! कैसी-कैसी मूर्खता प्रवेश कर जाती है जीव के अंदर। अमूढ़ दृष्टि को कौन सा भाग बताया है रीढ़ की हड्डी बतायी है, पीठ बतायी है। मूर्खता का प्रवेश तो नहीं है किंचित् मात्र भी

अमूढ़ तो नहीं है हमारे अंदर में धृति होना चाहिये, बुद्धि होना चाहिये। किन्तु किंचित् मात्र भी मूर्खता नहीं क्योंकि हम अरहंत पुत्र है। हम जिनवाणी माँ के सुत हैं। सरस्वती के सपूत हैं। हम निर्ग्रंथ के उपासक हैं महावीर के आराधक हैं। वीतरागता के आराधक हैं।

ध्यान देना- ज्ञानी जीवो! श्रद्धा का न होना सम्यक् दर्शन नहीं है अमूढ़दृष्टि है क्योंकि वीतराग की आराधना करना भी और वीतरागता की तो जितनी प्रतिमा थी किसी का भी दर्शन कर सकते थे। एक के दर्शन के पीछे व्यक्ति झगड़ रहा है। मुझे तो विभवसागर का दर्शन करना है ज्ञानी तू विभवसागर का दर्शन तो कर लेकिन आचरण सागर बैठा है तो उसको पैर से ठोकर तो मत मार। अन्यथा एक का तिरस्कार कर बैठना है एक का दर्शन करने के लिये।

ज्ञानी इसे सम्यक् दर्शन कहेंगे कि अमूढ़दृष्टि कहेंगे? अमूढ़दृष्टि। अधिकांशत: यह होता है पक्का मैंने यह देखा है जब कभी अधिक-भीड़ हो तो व्यक्ति दर्शन के लिये ऐसा दौड़ता है कि एक के तो पांव पकड़ता है और एक को पांव मारता है। भले ही पांव पकड़ने वाला क्यों न गिर जाये।

प्रिय आत्मन् !

हमारी श्रद्धा में अंध भक्ति नहीं होना चाहिये। अमूढ़दृष्टि पना नहीं होना चाहिये। भक्ति तो हो, श्रद्धा तो हो, आस्था तो हो। ज्ञानी जीवो! पंचम काल में अंध भक्ति हो रही है।

जैसे कांच का गिलास जरा से में टूट जाता है ऐसे ही आज की श्रद्धा जरा से में टूट जाती है। गुरु जी ने जरा सा कठोर बोल दिया अब हमारी श्रद्धा नहीं रही। अरे! महाराज चोके में नहीं आ पाये हमारी श्रद्धा नहीं रही। ज्ञानी यदि तेरी श्रद्धा नहीं रही तो महाराज का क्या चला गया। रत्न तो तेरा ही गया है।

ज्ञानी जीवो! कभी श्रद्धा को खण्डित मत करना अपनी श्रद्धा को तोड़ना और किसी की श्रद्धा को तोड़ना एक हजार मंदिर के तोड़ने के बराबर पाप लगता है। जिसकी श्रद्धा है वह कुछ भी दान न दे, कभी भी भक्ति न करें। तो भी जीवन में उसे इतना पुण्य लगता है कि एक हजार मंदिर बनवाने वाले को जीवन में जितना पुण्य लगेगा उतना पुण्य मात्र तीन कम नौ कोटि मुनिराजों पर श्रद्धा रखने से मिलता है।

प्रिय आत्मन् !

पूजा भले ही एक की करो लेकिन श्रद्धा में नौ कोटि मुनिराज होना चाहिए। जो भाव दीक्षा के समय हुआ करते हैं तीन कम नौ कोटि मुनिराजों की जय बोलने का भाव वही भाव यदि जीवन भर बना रहे तो वह जीव नियम से दो-तीन भव के अंदर मोक्ष को चला जायेगा।

जो भाव दीक्षा के दिन होते हैं, जो भाव दीक्षा के समय होते हैं वह भाव यदि रिवीजन होते रहे आचार्य कहते हैं वही भाव हमारे बार-बार आते रहे तो तुम नियम से दो तीन भव में मोक्ष चले जाओगे। लेकिन जो दीक्षा के समय भाव होते हैं जिन भावों के साथ साधक दीक्षा ग्रहण करता है वे भाव कहाँ विलीन हो जाते हैं।

प्रिय आत्मन् !

जीवन में मूढ़ता नहीं लाना। सत्य की उपासना करना। हम मात्र नाम के उपासक नहीं है। हम गुणों के उपासक हैं, हम गुणों के आराधक हैं, हमारे जीवन में निरंतर गुणों पर दृष्टि जायेगी और इन्हीं गुणों की आराधना हम जो करेंगे वह मूर्खता से रहित आराधना होगी। यह अशोकनगर की धरती अमूढ़दृष्टि लोगों (जीवों) की धरती है। यहाँ पर विचार करने वाले जीव हैं, चिंतन शील जीव हैं और यह गुणों में प्रीति रखते हैं इन्हीं गुणों में प्रीति रखने वालों के उज्ज्वल भाव हुआ करते हैं और ऐसे उज्जवल भाव जब समाज में हुआ करते हैं और प्रीति रखने वालों के उज्ज्वल भाव हुआ करते हैं और ऐसे उज्ज्वल भाव जब समाज में जन्म लेते हैं तो कोई न कोई समाज में नये आयाम नये-नये अनुष्ठान होते रहते हैं।

संतों का समाज में आना, साधुओं का समाज में आना अवश्य ही समाज कल्याण की मंगल बेला की सूचना है।

****

उपगूहन अंग का लक्षण

धर्मोऽभिवर्धनीयः सदात्मनो, मार्दवादिभावनया।

परदोषनिगूहनमपि विधेयमुपबृंहणगुणार्थम् ॥ 27 ॥

अन्यवार्थ- (उपबृंहणगुणार्थ) उपबृंहणगुण के लिए अर्थात् उपगूहन अंगकी रक्षा के लिए (मार्दवादिभावनया) मादर्व, आर्जव, क्षमा, सत्य आदि भावनाओं के द्वारा (सदा) निरंतर (आत्मनः) आत्मा का (धर्मः) धर्म (अभिवर्धनीयः) बढ़ाना चाहिए (परदोषनिगूहनं अपि) दूसरे के दोषों का आच्छादन भी (विधेयं) करना चाहिए।

प्रिय आत्मन् !

मिथ्यात्व रूपी अंधकार को नष्ट करने के लिये, सम्यक् ज्ञान का प्रज्वलित दीपक है जिनवाणी माँ। स्व और पर की पहचान करने वाली ज्ञात्री शक्ति है जिनवाणी माँ। अंगुली पकड़ो या हाथ पकड़ के चलाने वाली है जिनवाणी माँ। मुक्ति मार्ग के पथ को प्रशस्त करने वाली है जिनवाणी माँ। संसार भोग में पड़े हुये जीवों को तत्त्व ज्ञान के बल से निकालने वाली है जिनावाणी माँ। संसार सागर में डूबते हुये प्राणियों को धर्म की नौका में बिठालने वाली है जिनवाणी माँ। ऐसी जिनवाणी माँ सदा जयवंत हो। जिस जिनवाणी माँ की आराधना से जीव आत्म ज्ञानी हो जाता है। तत्त्व ज्ञानी हो जाता है। सम्यक् ज्ञानी हो जाता है और अंत में जाकर सदा-सदा के लिये केवलज्ञानी हो जाता है।

प्रिय आत्मन्!

जिनवाणी माँ का अभ्यास करने से जीव ज्ञानी होता है। निरंतर अभ्यास करने से आत्म

ज्ञानी होता है। आगम का अभ्यास करने से आगम ज्ञानी होता है। तत्त्व का अभ्यास करने से तत्त्वज्ञानी होता है। और भेद विज्ञानी होकर के आत्मध्यानी होने से भेद विज्ञानी होता है। और शुक्ल ध्यानी होने से भेद विज्ञानी होता है ऐसी जिनवाणी माँ जयवंत हो।

प्रिय आत्मन्!

श्रद्धा, विवेक और क्रिया की मूर्ति का नाम श्रावक है। श्रद्धा की प्रतिमा, विवेक का बिंब, और क्रिया का प्रवर्तन जिसके जीवन में हुआ करता है वह श्रावक होता है। श्रावक का सर्वप्रथम गुण श्रद्धा! श्रद्धा गुण के आठ आयाम हैं उसमें आज पंचम आयाम है उपगूहन जो महत्त्व मानव शरीर में कमर का है वहीं महत्त्व इस अंग का है।

जैसे कमर के भाग को मनुष्य ढककर के रखता है उसी तरह से यदि किसी धर्मात्मा में अज्ञानता वश, प्रमाद वश, शक्ति हीनता वश यदि कोई दोष उत्पन्न हो जाये तो धर्मात्मा के उस दोष को जगत में प्रचारित मत करना। ज्ञानी जीवो! अपने घर कोई बालक यदि कदाचित् कोई गलती कर देता हैं तो हम उसे बाजार में जाकर ढिंढौरा नहीं पीटते है। और कोई पिता ऐसी गलती करता है तो पिता की गलती पुत्र से बड़ी होती है।

माना कि आपके बेटे ने बीड़ी पीना शुरू कर दिया है अब आप यदि उसे प्रेम से समझाते हैं तो बेटा समझ जायेगा और संभल जायेगा। समझाना ही संभालना है जब समझ जायेगा तो संभल जायेगा। इसलिए तुम सम्भालो मत, समझाओ यदि समझाने पर समझ गया तो समझो वह संभल गया। आचार्य कहते है।

''भट्ट संस्कारी सिस्स सभालट्टं।

जो भ्रष्ट संस्कारी है अर्थात जिसको भूलने की आदत है ऐसे शिष्यों को संभालने के लिये पुनः - पुनः उपदेश दिया जाता है। जो याद होने पर फिर भूल जाते हैं। ऐसे भ्रष्ट संस्कारी जो शिष्य हैं उनको संभालने के लिये उपदेश दिया जाता है।

ज्ञानी जीवो! अब यदि आपका बालक बीड़ी भी पीता है तो आप उसे घर में ही समझाते हैं क्योंकि जानते हैं बताशे में रख कर दी गई दवाई बहुत आसानी से बालक ले लेता है उसी तरह प्रेम से दी गई शिक्षा युगों तक जीवंत हुआ करती है।

प्रिय आत्मन्!

वात्सल्य पूर्वक दी गई शिक्षा जीवन भर रहा करती है इसलिये आचार्य कहते हैं धर्म को बढ़ाना हो तो धर्मात्माओं को बढ़ाओ और धर्मात्मा को बढ़ाना हो तो धर्म को बढ़ाओ। धर्म को बढ़ाये बिना धर्मात्मा नहीं बढ़ेगे और धर्मात्माओं को बढ़ायें बिना धर्म नहीं बढ़ेगा। ज्ञानी तुम कहते हो धन से धर्म बढ़ता है। धर्मात्मा कितने जुड़े है आपसे यह महत्वपूर्ण बात है और धर्मात्मा जो जुड़े है वे कितने धर्म से जुड़े है।

धर्म से जुड़ना महावीर से जुड़ना है धर्म से जोड़ना पारसनाथ से जोड़ना है। इस सभा से जोड़ना विभवसागर से जोड़ना नहीं है सीधा भगवान से जोड़ना है। ज्ञानी विभवसागर नाम एक पर्याय का नाम है। लेकिन रत्नत्रय का उपदृष्टा यहाँ पर आया है भगवान महावीर के संदेशो को सुनाने वाल दूत यहाँ पर आया है। वह धर्म का दूत भगवान महावीर का प्रतिनिधित्व करने आया है।

प्रिय आत्मन्!

व्यक्ति सीधा परमात्मा से नहीं जुड़ पाता है इसलिये पहला आयाम है **(गुरू से जोड़ो प्रभु से जुड़ जायेंगे)**।

गुरू मिले तो प्रभु मिलेंगे।

ज्ञानी जीवो! आचार्य कह रहे हैं। दोष को छिपाना भी नहीं है और दोष को प्रकटाना भी नहीं करना है। अपने दोष को छिपाना नहीं परंतु ध्यान रख लेना - हर किसी को बताना नहीं। जिन पर विश्वास है उन्हीं को बताना और जिन पर विश्वास नहीं है उनको नहीं बताना।

जैसे - ताले की चाबी आप सबको नहीं बताते है अपनी सुरक्षित और व्यवस्थित रखते है उसी तरह आचार्य कहते हैं यदि दोष भी है तो दोष भी सबको नहीं बताना। रोग है तो मात्र वैद्य को बताना। यदि रोग है तो सारी दुनिया से कहने से आपका उपचार नहीं हो जायेगा और दोष हो जाये तो सबको बताने से उपचार नहीं होगा इसलिये रोग हो गया हो तो डॉक्टर और वैद्य को जाकर बताईये और दोष हो गया हो तो गुरू और भगवान को जाकर बताईये।

प्रिय आत्मन्!

बच्चे, माता - पिता को दोष बतायेंगे तो दोष दूर हो जायेगा। शिष्य गुरु को दोष बतायें गे तो दोष दूर हो जायेगा। ज्ञानी जो दोष को दूर कर सके उसी को दोष बताना। दोष उसे बताया जाता

है जो उस दोष का प्रमार्जन कर सके। तब तो बताना ठीक है यदि वह दोष किसी दूसरे में है तो दूसरे का दोष भी तुम उसको ही बताओ जो नियम से उसके दोष को दूर कर सके।

चाहे अपने घर के बेटे का दोष हो, चाहे किसी साधु संत में दोष हो, तो सबसे पहली कला अपने घर से सीखों। ध्यान देना - शरीर की शक्ति से ज़्यादा क्षमता वचन की होती है। आचार्यों ने लिखा है। काय योग, वचन योग और मन योग इसमें काय योग की शक्ति सबसे कम है जो सबसे बड़ा छह फीट का शरीर दिख रहा है इस छह फीट के शरीर की ताकत सबसे कम है। काय से ज्यादा वचन की और वचन से ज़्यादा मन की शक्ति है।

प्रिय आत्मन्!

धर्म और धर्मात्मा को बढ़ाना है तो उसके दोष को किसी को बताना नहीं उसको ही बताओ। यदि तुम में उसका दोष निकालने की क्षमता नहीं है तो, जो निकाल सकता हो उसको बताओ। यह परम सत्य है यदि हम घर के बेटे का दोष बाजार में बतायेंगे तो बेटा यह सोचने लगता है अब तो सब को पता पड़ गया है अब रहने दो। जब तक हम प्रेम, वात्सल्य नहीं रखेंगे तो उपगूहन नहीं रख पायेंगे।

हमें यह ध्यान देना है कि धर्म का विकास कैसे हो और धर्म के विकास के लिये हमारा सार्थक पहलु क्या है। आचार्य कहते हैं दो जगह धर्म है उस आत्मा में धर्म है इस आत्मा में भी धर्म है दोनों जगह धर्म है यदि उसमें एक दोष दिखाई दे रहा है तो निन्यानवें गुण भी होते हैं। जिसके मन में जो होता है उसे वही दिखाता है।

ज्ञानी जीवों! जब हमारे मन में जो भरा होता है सामने हमें वहीं दिखाई देता है हनुमान जी जब अशोक वाटिका में पहुँचे तो हनुमान की आँखो में लालिमा - लालिमा भी गुस्से से वह लाल-लाल आंख किये हुए थे। और जब हनुमान ने अशोक वाटिका में देखा तो उन्हें प्रत्येक फूल लाल नज़र आ रहा था। जब अशोक वाटिका से लौटने के बाद श्रीराम के पास आये तब श्रीराम ने पूछा हनुमान जी अशोक वाटिका में आपने क्या क्या देखा। महाराज वहाँ तो सभी फूल लाल-लाल नज़र आये और जब युद्ध के बाद श्रीराम ने उसी वाटिका को देखा तो राम के लिये सब प्रकार के फूल नज़र आये।

तो श्रीराम ने कहा तुम तो कहते थे कि अशोक वाटिका में लाल ही लाल फूल लगे हैं। लेकिन यहाँ तो पीले और सफेद भी है। यहाँ तो सभी प्रकार के फूल हैं। तब हनुमान ने देखा हाँ मुझे

भी सफेद पीले नज़र आ रहे हैं तब सिद्ध हुआ कि दोष आंखो का नहीं है आंखो के भीतर जो तुम्हारें अंदर क्रोध की लालिमा थी जब क्रोध की लालिमा होती है तब व्यक्ति दूसरों को भी वैसा ही देखा करता है।

ज्ञानी जीवो! इसी तरह मेरे मन में यदि भाव आ गया कि मुझे दोष ही देखना है तो मुझे दोष ही दिखता है। यदि कोई पुस्तक का संशोधन करे तो वह एक-एक मात्रा और एक-एक शब्द को देखता है क्योंकि उसे दोष देखने के ही पैसे मिल रहे हैं। यदि संशोधन में वह दोष नहीं देखेगा तो उसे पैसा मिलेगा ही नहीं यदि एक पेज में चार दोष ही छोड़ दिये तो फिर संशोधन का कोई मतलब नहीं। लेकिन प्रूफरीडिंग की बुक हर किसी के हाथ में नही दी जाती है। प्रूफरीडिंग नहीं करने वाले का कर्तव्य यह है कि वह पुस्तक में दोष देखे और वही पर उचित संस्कार कर दे न कि पुस्तक के दोषों को सारे जग में ज़ाहिर कर दे।

दोष देखना दोष है कि गुण है? यदि दोष इस दृष्टि से देखा जाये कि एक प्रूफरीडिंग कर्ता एक दोष देखता है तत्काल संशोधन कर देता है तो हज़ार कॉपियों में संशोधन हो जाता है। और यदि दोष देखकर के दोष ही दोष आप छांट के रख लो और उसके शेष हजार गुणों पर ध्यान न जाये तो फिर क्या हो जायेगा? कुछ नहीं हंसा-हंसा मोती चुन लेगा और काग-काग उसमें से मांस खा लेता है।

ज्ञानी एक जगह एक हाथी का मरण हो गया युद्ध स्थल में जब हाथी का मरण हो गया तो मोती भी वहीं पर पड़े है और मांस का पिण्ड भी वहीं पर पड़ा है काग जाता है मोती को छोड़कर मांस का पिण्ड चुग कर आता है। जिस हाथी के शरीर में मोती हैं उसी हाथी के मस्तिष्क में मांस भी है। परन्तु काग मोती को छोड़कर मांस पिंड को ग्रहण करता है। दोष का चुनना और गुणों को चुनना हमारे ऊपर निर्भर करता है कि हमारी अंतरंग प्रवृत्ति क्या है जब अंतरंग की प्रवृत्ति दोष चयन की होती है तो दोष चयन करते हैं और गुण चयन की होती है तो गुण चुन लेते हैं।

हमने अपनी (हैबिट) आदत कैसी बना रखी है, यदि दोष तुम्हें चुनना हो तो पहले प्रूफरीडिंग का कोर्स पूरा कर लेना चाहिये। विशेष यह कि कोर्स करना पड़ता है करीब तीन माह का कोर्स होता है प्रूफरीडिंग का, प्रूफरीडिंग की विशेषता होती है कि दोष कैसे निकालना किस तरह के शब्दों में ज़्यादा दोष पाये जाते हैं।क्योंकि प्रूफरीडिंग कर्त्ता ध्यान रखता है जिस पेज का दोष है उसी पेज में संशोधित कर देगा। पुस्तक निकालने के बाद देखेगा क्योंकि इन दोषों को देखना

तत्काल गुणों की स्थापना के लिये दोषों को इसलियें नहीं देखना कि पूरी पुस्तक को ही हटा देना।

यदि आपके लिये संशोधन को बुक दे दी है तो इसका मतलब यह नहीं है कि तुम बुक को ही अलग कर दो, पेज को ही अलग कर दो। नहीं! देखो कि उसमें कितने शब्द अशुद्ध है। जो अशुद्ध है उनको शुद्ध कर दो यह तुम्हारे सम्पादकत्व की विशेषता है। उसी तरह तुम श्रावक हो श्रावक की दृष्टि से देखो यदि कदाचित् दोष है तो उसको किस तरह से दूर करने का अधिकार है। लेकिन विद्यार्थी को पुस्तक को पढ़ने का तो अधिकार है। लेकिन विद्यार्थी को पुस्तक सुधारने का अधिकार नहीं है। सुधारने का अधिकार संपादन वर्ग के लिये हुआ करता है। सम्पादक मण्डल एक अलग हुआ करता है। उसी तरह से हम ध्यान रखें कि हम एक विद्यार्थी के तुल्य हैं। हम श्रावक है तुम्हें किस दृष्टि से पुस्तक को पढ़ना है।

प्रिय आत्मन्!

सबसे पहले दोष देखना ही उत्तम नहीं है दूसरी बात दिख जाये तो किस तरह से हम अपने मन में मलिनता न लायें और उसके दोष को दूर कर सकें (**दोष पर विचार तो करो पर प्रचार मत करो।**) तीसरी बात है कि दोषी को प्रेम से बताओ कि वह गुणी बन जाये। रोग रोगी को है तभी तो रोगी है लेकिन उसके रोग को दूर कर देना डॉक्टर की विशेषता है।

डॉक्टर की विशेषता है कि रोगी के रोग को दूर कर दे यह विशेषता नहीं है कि रोगी को ही भगा दे । ध्यान देना - रोग कैसा भी हो उसका निदान कहीं न कही तो होगा उसी तरह जो दोष हमें दिखाई दे रहा है उस दोष का निदान हम नहीं जानते है यह हमारी कमी है। प्रत्येक दोष का इलाज हर व्यक्ति नहीं कर सकता है।

प्रिय आत्मन्!

सम्यक् दृष्टि दोष कहता नहीं है। (सम्यक् दृष्टि बदला नहीं लेता है सम्यक् दृष्टि बदल देता है) गुरुदेव ने कहा गुरु बदला नहीं लेते हैं। गुरु तो शिष्य को बदल देते हैं। सम्यक् दृष्टि के दोष यदि कोई कह दे तो दूसरा सम्यक् दृष्टि उसके दोष नहीं कहेगा क्योंकि वह अज्ञ है। लेकिन मैं तो प्रज्ञ हूँ यदि तुम्हारें दोष किसी ने कहे और तुमने उसके दोष कह दिये तो तुम दोनों अज्ञानी हो गये। इसलिये आचार्य ने लिखा है!

दोषवादे च मौनं ।

यदि तुम्हें समाधि साधना हो तो किसी धर्मात्मा के दोषों को मत कहना जहाँ दोष कथन हो वहाँ मौन लेना और जहाँ धर्म का विघात हो रहा हो वहाँ बिना पूछे भी बोलना और उस दोष का निराकरण करना। जंगल में एक दिगम्बर मुनि हैं, राजन् - दिगम्बर वो क्या नग्न जिसके पूरे तन में कोढ़ हो वह नग्न, अज्ञानी उसे आप साधु मानते हैं। तत्काल एक श्रावक ने कहा नहीं वह तो कंचन सी काया वाले तप में जिनकी देह दमक रही है ऐसे परम तपस्वी परम ज्ञानी हैं।

दोष सुनाना अपने मस्तिष्क का कचरा दूसरे के मस्तिष्क में डालना है तन पर कचरा गिरा तो तूने झरा दिया लेकिन तेरे मन में किसी ने कचरा डाल दिया और तूने अच्छा माना तो तुम किसी से नहीं कहना हम आपको बता रहे है। ध्यान रख लेना - ऐसे छली, कपटी व्यक्तियों पर विश्वास मत करना।

अमर बेल के जड़ नहीं, नहीं गोच के दंत ।

जे नर मीठे बोलते, तिससे बचिये कंत ॥

अमर बेल की जड़ दिखाई नहीं देती किसी भी पेड़ पर आकर जम जाती है। गोच के दांत दिखाई नहीं देते है पर चिपकती हैं तो सारा खून चूस लेती है। गाय के स्तन में दूध भी है और उसके स्तन में सड़ा खून भी है ज्ञानी जीवो! गोंच जो होती है वह दूध नहीं पीती है जबकि गाय का बछड़ा दूध पिया करता है। और गोंच दूध न पीकर के उसके स्तन से खून चूसती है। उसी तरह कोई व्यक्ति धर्म को ग्रहण कर लेते हैं। और कोई व्यक्ति धर्मात्मा में दोष को ग्रहण कर लेते हैं। गोंच की आदत खून चूसने की होती है। और गाय के बछड़े की आदत दूध पीने की होती है इसी तरह संसार में कुछ इंसान ऐसे होते हैं जिनकी आदत दोषों को ग्रहण करने की होती है।

आचार्य महाराज लिखते है मैं उनको बहुत अच्छा मानता हूँ जो मेरी कविता में दोष निकालते हैं। क्योंकि यह मेरी कविता में दोष-दोष निकाल लेंगे तो मेरी कविता में गुण ही गुण बचेंगे। मेरा मस्तिष्क संदेश के लिये है लेकिन किसी के दोष ग्रहण करने के लिये नहीं है।

तपस्वी सम्राट सन्मति सागर महाराज कहते हैं, मस्तिष्क नगर पालिका का डिब्बा नहीं कि तुम आओ हमारे मस्तिष्क में सब कुछ डालते रहो। यह मस्तिष्क पवित्र अंग है, इसकी पवित्रता बनाये रखने के लिये दोषों को सुनना नहीं जब तक वचनों की प्रमाणता न आ जाये तब तक वचन

को सुनने को तैयार मत होना। क्योंकि ज्ञान सम्यक् भी होता है, मिथ्या भी हो जाता है दूसरे ने जो ज्ञान दिया है कहीं वह मिथ्या ज्ञान मेरे मस्तिष्क में प्रवेश न कर जाये। जैसे दूध में मक्खी गिर जाने से दूध बेकार हो जाता है। उसी तरह से हमने एक घण्टे प्रवचन सुना और एक मिनिट किसी की निंदा सुन ली तो पूरा प्रवचन बेकार हो जाता है। इसलिए यह बात पक्की है पानी में मक्खी कम गिरती है दूध में ज्यादा मक्खी गिरती है। इसी तरह तुम जितने धर्म के निकट आओगे तुम्हें उतने दोषों की चर्चा करने वाले मिलेंगे। दूध बने हो तो मक्खी ज्यादा पड़ती है।

दोष का सुनना दूध रूपी मस्तिष्क में कचरा डालने के बराबर है। आचार्य कहते हैं धर्म को बढ़ाना चाहिए।

धम्मो मंगल - मुक्किट्ठं अहिंसा संयमो तवो।

देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सया मणो ॥ 8॥

(वीर भक्ति)

प्रिय आत्मन् !

जिसके मन में धर्म होता है देवता भी उसे प्रणाम करते हैं। धर्म उत्कृष्ट मंगल है वह अहिंसा, संयम, तप और दया रूप है। धर्म इसलिये बढ़ाना चाहिये कि वह सुख, शान्ति, समृद्धि का आधार है। धर्म इसलिये बढ़ाना चाहिये कि वह ज्ञान, दर्शन, चारित्र का आधार है।

जड़ जिसकी पाताल छुयेगी, आसमान वह छू सकता है।
हम चले देवता कहलाने, पर मानव भी कहला ना सके
हम चले विश्व विजयी बनने, पर विजय स्वयं पर पा न सके
हम सोचते हैं कि कैसे भी बस, जल्दी से भगवान बनें।
पर नहीं सोचते हैं कि, इससे पहले इंसान बने।

ज्ञानी जीवो! आज भगवान बनने का पाठ नहीं है आज तो इंसान बनने का पाठ चल रहा है। दोषों को न कहना इंसान की विशेषता है दोष न हो तो भगवान हैं ,दोष हैं तभी तो इंसान है जिसमें दोष है उसे हम इंसान कहते है जो दोषों को त्याग देता है वो भगवान हो जाता है। जो दोष पर दोष करे गलती पर करे गलती उसे हैवान कहते हैं। जो गलती कर सुधरता है उसे इंसान कहते हैं जो कभी ना करे गलती उसे हम भगवान कहते हैं।

प्रिय आत्मन् !

हाथों से ग्रहण की गई वस्तु हाथों से छूट जाती है लेकिन मन से ग्रहण की गई वस्तु बहुत समय बाद छूटती है इसलिये दोषों को सुनना कानों से ग्रहण करना है।

मीठा जहर स्वयं कहलाती,
कान खोलकर जो पी जाती।

निंदा मीठा जहर है कान खोलो और पी जाओ। ज्ञानी ! ऐसे जहर पिलाने वालों से सावधान रहना, निंदा सुनाने वाले कानों से जहर पिलाने वाले हैं। निंदा सुनना नहीं है पर अपने अंदर दोष हो तो गुरुजनों के पास जाकर निंदा कर लेना। दूसरे के दोषों को ढकना और धर्म बढ़ाना उपगूहन अंग है।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

* * * *

स्थितिकरण अंग का लक्षण

कामक्रोधमदादिषु, चलयितुमुदितेषु, वर्त्मनो, न्यायात्
श्रुतमात्मनः परस्य च युक्तया स्थितिकरणमपि कार्यम् ॥28॥

अन्यवार्थ - (न्यायात् वर्त्मनः) न्यायमार्गसे (चलयितुं) चलायमान करने के लिए काम-क्रोधमदादिषु) काम, क्रोध, मद आदि कोंके (उदितेषु) उदित होने पर (श्रुतं) शास्त्रानुसार (युक्तया) युक्तिपूर्वक (आत्मनः) अपना (च) और (परस्य) दूसरे का (स्थितिकरणं अपि) स्थितिकरण भी (कार्यम्) करना चाहिए।

स्थितिकरणम् कार्यं

प्रिय आत्मन् !

माँ जिनवाणी, जगकल्याणी, अरिहंत भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य आचरित, उपाध्याय उपासित, सर्वसाधु साधित जीव तत्त्व प्रबोधिनी, अजीव तत्त्व विवेचनी, सर्वास्रव निरोधनी, कर्म बंध विमोचनी, संवर पद प्रदायिनी, निर्जरा - निर्झरणी, मोक्ष महल धारणी, पाप ताप - संताप हारिणी, विश्वकल्याण कारिणी, हे जिनवाणी माँ तेरी जय हो सदा विजय हो, तेरे विशाल पद श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन् !

श्री पुरूषार्थ सिद्धियुपाय शास्त्र के माध्यम से जिनेन्द्र देशना का रसपान चल रहा है। सम्यक् दर्शन त्रेलोक्य दुर्लभ सम्पत्ति का उपाय बताया जा रहा है। रत्न की प्राप्ति और रत्न का परीक्षण दोनों अनिवार्य हैं। यदि परीक्षण नहीं कर पाते है तो कहीं धोके में पड़ सकते हो इसलिये

सम्यक् दर्शन रूपी जो रत्न है, वह रत्न जो हमने पाया है, उस पाये हुये रत्न का परीक्षण तो करलें कि कैसा है।

आज हमारे सामने स्थितिकरण अंग आता है। परिणाम स्थिर कर देना भान स्थिर कर देना, मन स्थिर कर देना, स्थितिकरण है जो सम्यक् दृष्टि का कार्य है।

स्थिति करणमपि कार्यम्।

महाराज श्री मैं सम्यक् दृष्टि हूँ मेरा कार्य क्या है? मेरे योग्य कोई कार्य हो अवश्य बताईये महाराज? मेरे योग्य कोई सेवा हो अवश्य बताईये महाराज? हाँ बता रहा हूँ बडे दिनों के बाद आपके योग्य सेवा भी बता रहा हूँ और कार्य भी बता रहा हूँ क्या कार्य है ?

स्थिति करणमपि कार्यम्।

स्थितिकरण करना कार्य और नहीं करना अकार्य है। आप समाज के कार्यकर्ता है, ओ हो! कार्यकर्ता हैं कुशल कार्यकर्ता, कर्मठ कार्यकर्ता एक काम करिये ? आप कुशल कार्यकर्ता हैं, आप मंदिर, समाज के मंत्री महोदय भी हैं। यहाँ पर कार्यकर्ता ही विराजे हैं सभी। कोई सदस्य है कोई स्वास्थ्य कार्यकर्ता है लेकिन हैं सभी कार्यकर्ता।

ज्ञानी जीवों। गृह कार्य कर्ता तो सब हैं लेकिन धर्म कार्यकर्ता, श्रद्धा कार्यकर्ता, जिस कार्य को हमें सोंपा है उस कार्य को हमने किया है कि नहीं ? कोई बी.जे.पी. कार्य कर्त्ता है, कोई कांग्रेस का कार्यकर्ता है लेकिन आचार्य कहते हैं ध्यान देना – तुझे यह पार्टी तो कुछ समय से मिली है लेकिन जो भगवान महावीर और आदिनाथ की जो पार्टी है, स्याद्वाद जिसका चिन्ह है, उस पार्टी का कार्य भी तुझे करना है। मेरी पार्टी का चिन्ह स्यादवाद् है और यह मेरी पार्टी है वीतराग देव की पार्टी इसलिये इस पार्टी का कोई प्रतिरोधी नहीं है, प्रतिद्वन्दी नही है। इसलिये यह पार्टी निरपेक्ष, निर्दलीय, निर्विरोधी पार्टी है यहाँ पर निर्विरोध चयन होता है। क्योंकि यह ऐसी पार्टी है।

प्रिय आत्मन् !

इस पार्टी का कार्य और इस पार्टी के कार्यकर्ता कौन हैं? जितने जिनधर्म के उपासक दयालु जीव हैं, जितने अहिंसा से प्रेम रखने वाले जीव हैं, जितने करूणा से प्रेम रखने वाले जीव हैं वे सब मेरी पार्टी के कार्यकर्ता हैं। मेरी पार्टी का चिन्ह स्यादवाद है और मेरी पार्टी अनेकांत पार्टी है। विश्व के समस्त जीव इसमें समाहित हैं, इसलिये दूसरी पार्टी बनने का नाम नहीं है।

जो पार्टी का काम सोंपा है भगवान महावीर ने वह किया है। आचार्य अमृतचंद्र जी ने क्या कार्य किया है।

स्थिति करणमपि कार्यम्।

जाओ तुम अपने क्षेत्र में जाओ, तुम अपने क्षेत्र में जाओ जैसे सांसद और विधान सभा में एक नियम पारित हो जाता है तो वह सांसद अपने क्षेत्र में लागू करता है और विधायक अपने क्षेत्र में चलाता है उसी तरह से अमृतचन्द्र आचार्य कहते हैं महावीर स्वामी ने नियम लागू किया है कि सभी कार्यकर्ताओं का एक कार्य है।

स्थिति करणमपि कार्यम्।

स्थिति करण कैसे करोगे? ध्यान देना - माताओ! बच्चों को दवाई पिलायी आपने कैसे पिलाते हो? कैसे खिलाते हो? जबरदस्ती नहीं, जिसे तुम जबरदस्ती कहते हो वह जबरदस्ती नहीं। पहले आप युक्ति से देते हैं।

प्रिय आत्मन् !

काम युक्ति से बनता है, जबरदस्ती से नहीं बनता। जैसे - बेटे को स्वस्थ करना माँ का कार्य है और रोग बता देना बेटे का कार्य है, उसी तरह से हम कार्यकर्ता हैं हमारा कर्तव्य है कि हम समाज को स्वस्थ बनायें।

स्थिति करणमपि कार्यम्।

प्रिय आत्मन् !

यदि कोई गलती कर रहा है, त्रुटि कर रहा है, चूक कर रहा है, गलत चर्या कर रहा है और आप सीधे टोकेंगे तो वह आप पर बरस पड़ेगा और उसका सुधार संभव नहीं है।

अंधे से अंधा कहो तो

जो कार्य युक्ति से हो जाता है वह कार्य बड़े-बड़े युद्ध से नहीं होता है इसलिये युक्ति युद्ध से बड़ी होती है। अधिकांशतः युद्ध तो युक्ति से ही जीते जाते हैं। शक्ति से बहुत कम अथवा यह कहें युक्ति ही तो शक्ति है। अपनी आत्मा को स्थिर करना स्थितिकरण है।

ओ हो! कभी – कभी दूसरे को समझाना तो ठीक है लेकिन अपने मन को समझाना बहुत कठिन है। संसार का सबसे सरलतम कोई कार्य है, तो वह है पर को उपदेश देना। तुम बड़ा कठिन समझते हो कि महाराज आप ऐसी नई–नई बात कहाँ से लाते हो लेकिन सच कहूँ तो संसार का सबसे सरलतम कार्य है पर को उपदेश देना। इससे सरलतम कोई कार्य नहीं है। सबसे सरलतम कार्य यदि कुछ है तो पर को उपदेश देना, पर को समझाना।

तुम्हें पता नहीं है एक – एक के घर हजार – हजार समझाने वाले पहुंच (जायेंगे) जाते हैं और अपने घर पर जब होता है? तो स्वयं रोता है और बिलखता है, समझता नही है। यही सृष्टि का नियम है कि यह जीव पर को उपदेश बड़े आनंद से दे लेता है। लेकिन निज को उपदेश देना और निज को सम्भालना बहुत कठिन – बहुत कठिन – बहुत कठिन होता है।

प्रिय आत्मन् !

आचार्य कहते हैं समझना ही सम्भलना है और समझाना ही सम्भालना है। सम्भालने के लिए हाथों को उठाया नहीं जाता है, समझाने के लिये कोई दण्ड नहीं है। समझाने के लिये मात्र श्रुत का सहारा लिया जाता है। श्रुत के द्वारा, शास्त्र के द्वारा, ज्ञान के द्वारा और युक्ति के द्वारा समझाया जाता है।

दीपक जल रहा है और माँ देखती है जैसे ही एक मिनिट के लिये बेटे को गोद से उतारती है और बेटा दीपक के पास जाता है। माँ कहती है ! बेटा – बेटा, राजा बेटा वह अग्नि है, वह जलाती है।

वह अग्नि है,
वह जलाती है,
तू जल जायेगा,
मत जा
उसके पास॥

लेकिन बेटा नही मानता है क्यों? समझ नही आता उसको माँ क्या कहती है? माँ बेटे की अंगुली पकड़ती है एक हाथ से और पूरे शरीर को सम्भाल ही लेती है। उस अंगुली को दीपक की लौ के पास लगाती है और बेटे को उसकी आंच लगाती है और आंच के लगने से बेटा रोने लगता है।

नहीं–नहीं बेटा बहुत अच्छी लग रही न, बहुत अच्छी लग रही न आग। लो – लो पकड़ो और पकड़ो बहुत अच्छी है – बहुत अच्छी है लो पकड़ो और अंगुली पकड़े है माँ कि आग में न पहुंचे मात्र आंच तक ही रहे। एक बार माँ ने आंच दिखा दी, तो आंच से अग्नि का अनुभव करा दिया। ध्यान देना–

अग्नि में अंगुली डालकर अनुभव नहीं कराया। मात्र आंच से अनुभव करा दिया। अब बेटा चीख रहा है, चिल्ला भी रहा है, रो भी रहा है, और माँ कह रही है कि बेटा देख कितनी अच्छी अग्नि है, कितनी सुंदर अग्नि है, कितनी प्यारी अग्नि है, भीतर डालो अंगुली और माँ अंगुली को पकड़े है, यही युक्ति है। माँ आप रोटी बनाओ, अब विकल्प मत करो। बेटा दीपक जलने दो। रोटी बनाओ, कुछ भी करो, बेटा दीपक के पास नहीं जायेगा। ज्ञानी या तो युक्ति से समझाओ या तो ज्ञान से समझाओ।

प्रिय आत्मन्!

भगवान महावीर ने कहा है, समझाने के लिये ज्ञान और युक्ति का अवलंबन लो। माँ कहती है महाराज श्री! मेरा बेटा मानता नहीं। कभी – कभी मैं भी कहता हूँ किंतु मैं जब उसके भीतर जाता हूँ कि मेरे पास या तो उस ज्ञान की कमी है या उस युक्ति की कमी है, जिस ज्ञान और युक्ति के बल पर वह समझ पाता। बेटे की कमी नहीं है क्योंकि जिस ज्ञान और जिस युक्ति द्वारा वह समझ सकता था उस ज्ञान और युक्ति का मेरे अंदर अभाव है। यदि उस ज्ञान और युक्ति को हम प्रयोग में लाये तो बेटा समझ जायेगा।

प्रिय आत्मन् !

एक सत्य बात कहूँ हम अपने बच्चों के लिये समय नहीं देते। बच्चों का समय स्कूल के लिये है, बच्चों को समय कोचिंग के लिये है, पिता का समय व्यापार के लिये है, माँ का समय गृहकार्य के लिये है, क्लब के लिये है, उत्सव के प्रोजेक्ट के लिये है, लेकिन जिस संतान को भगवान बनाना है उसके लिये हमारे पास समय नहीं है। हाँ किसी युक्ति के बल से उसके मन के विचारों को मापे इसके मन में क्या क्या विचार चल रहे है और उन विचारों का अध्ययन करें। अध्ययन करने के बाद उसे ज्ञान और युक्ति के बल से उसका उचित समाधान करें। अक्सर भूल हमसे छोटी–छोटी होती रहती हैं और जब बड़ी भूल हो जाती है तो फिर हम पछताते हैं।

आज आचार्य कह रहे हैं प्रत्येक घर में स्थितिकरण आवश्यक है। हम किसी धर्मात्मा के

स्थितिकरण की बात दूर करें लेकिन अपने आप को अपने परिवार को, अपने घर के बच्चों को कैसे धर्म में स्थिर करना है, यह स्थितिकरण है। अपने परिवार को संस्कारित करना ही तो स्थितिकरण है। अपने परिवार को सम्भालना ही तो स्थितिकरण है। अपने परिवार को और अपने आपको समझाना ही तो स्थितिकरण है।

बेटा मन्दिर में नहीं आता ? अस्थिर है। बेटा प्रवचन में नहीं आता अस्थितिकरण है। बेटा कहां गया, पता नहीं, अस्थितिकरण है। उसको स्थिर कर दो धर्म मार्ग में। तुम्हारा बेटा धर्मात्मा है, सम्यक् दृष्टि है, उसको स्थिर कर दो। दो लाभ होंगे, एक तो आपका यश बढ़ेगा और कुल की मर्यादा बनी रहेगी और धर्म का पालन तो होगा सो होगा ही।

ज्ञानी जीवो ! समझाने के दो तरीके श्रुत और युक्ति। न तो हमारे पास शास्त्रों का अभ्यास है बच्चों के अंदर तमन्ना पैदा होती है। नाना प्रकार की जिज्ञासायें पैदा होती हैं। नाना प्रकार के तर्क पैदा होते हैं। उनका समाधान हमारे ज्ञान में है या नहीं तो हम अर्जित करें कि बच्चे के लिये बीस साल बाद तुम्हें शादी करना है तो आज से तुमने धन का संचय करना शुरू कर दिया लेकिन उसके मन के प्रश्नों का समाधान करने के लिये किसी ज्ञान का संचय किया कि नहीं।

प्रिय आत्मन् !

मैं सच कह रहा हूँ। जिस दिन बैटे का जन्म होता है उसी दिन से उसका बैंक बैलेंस बनाना शुरू होता है बेटे का जन्म हुआ है। पहले से शादी में कितना खर्च होगा हर महीने ऐसी व्यवस्था बनाते हैं कि बीस साल तक इतना लाभ हो जाये।

ज्ञानी ! जब तू उसकी शादी के लिये पहले से योजना बना रहा है कि उस बात पर तो ध्यान दो कि उसके मन के समाधान के लिये ऐसा ज्ञान का संचय कर ऐसी युक्तियों का संचय कर कि तेरे बेटे के हर प्रश्न का समाधान तू दे सके क्योंकि संसार की सबसे बड़ी पाठशाला माँ हुआ करती है। बच्चों की प्रथम पाठशाला माँ हुआ करती है और पहली पाठशाला में जिस प्रश्न का समाधान नहीं मिलेगा तो बेटा क्या करेगा। इसलिये धर्म का स्वाध्याय नितांत आवश्यक है।

बच्चो खुश रहो, हाँ माँ मैं खुश रहूंगा। बेटे मैं मन्दिर जाती हूँ तुम प्रसन्न रहना, माँ मैं प्रसन्न हूँ और बच्चे ने चैनल खोला और टी.वी देख रहा है। माँ तुमने प्रसन्न रहने के लिये तो कह दिया, लेकिन प्रसन्न रहने का तरीका नहीं दिया उसे, क्यों ? तुम्हें स्वयं पता नहीं था कि प्रसन्न रहने का

तरीका क्या है। यदि तुमने रत्नकरण्ड श्रावकाचार पढ़ा होता तो तुम्हें पता होता कि समंतभद्र आचार्य प्रसन्न होने का क्या तरीका बता गये हैं।

मनः प्रासाद्यं श्रुतै :।

श्रुत के द्वारा, शास्त्रों के द्वारा मन को प्रसन्न करना चाहिये।

केली करे श्रुत मारग में
जगमांहिं जिनेश्वर के लघुनंदन।

ज्ञानी जीवो! श्रुत मार्ग में क्रीड़ा करते है। शास्त्रों - शास्त्रों को सुनाते हैं। शास्त्रों-शास्त्रों में वार्तालाप करते हैं, प्रसन्नता का कार्य है श्रुत के द्वारा और शास्त्रों के द्वारा प्रसन्न रहो टी. वी. और चैनलों के द्वारा प्रसन्न रहने का तरीका आचार्यो ने नहीं कहा है। मन को वश में करने का तरीका हैं श्रुत। हाथी को वश में करना हो तो अंकुश चाहिये बिना अंकुश के हाथी वश में नहीं होता। बिना लगाम के घोड़ा वश में नहीं होता है। मन को वश में करने का तरीका है श्रुत। जिसका शास्त्र का अभ्यास जितना मजबूत होगा उसका मन उतना मजबूत होगा। मन को इतना मजबूत बनाओ कि मन उचित कार्य कर सके और न्याय मार्ग में विचलित न हो।

प्रिय आत्मन् !

मन में विचलन किन कारणों से आ जाता है, वे कारण भीतर काम, क्रोध, मद, ये विचलित कर देते हैं या तो व्यक्ति को काम विचलित करता है या क्रोध विचलित करता है या अहंकार विचलित करता है।

आरंभे तापकान्प्राप्ता, वतृप्तिप्रतिपादकान् ।
अंते सुदुस्त्य जान्कामान्, कामं कः सेवते सुधीः ॥ 17॥ (इष्टोपदेश)

आचार्य पूज्यपाद देव आज से पन्द्रह सौ साल पहले लिखकर रख गये कि जो सज्जन होगा वह काम में नहीं पड़ेगा, वह कामदेव के काम में नहीं पड़ेगा। कामदेव जो काम करता है, वह सज्जन नहीं करेगा। सज्जन पुरूष कामदेव का काम नहीं करेगा। स्पर्शन और रसना इन्द्रिय के जो कार्य है, वे काम कहलाते है। स्पर्शन, रसना, कामेन्द्रिय हैं और घ्राण, चक्षु, कर्ण यह भोगेन्द्रिय हैं।

जो चार अंगुल की स्पर्शन इन्द्रिय और चार अंगुल की रसना इन्द्रिय को वश में कर लेगा वह अनंत चतुष्टय का धारी बन जायेगा। जिसने आठ अंगुल को जीत लिया वह अष्टम् भूमि को

प्राप्त हो जायेगा। जिसने आठ अंगुल को जीत लिया वह अष्टम् भूमि का अधिपति बन जाता है। ज्ञानी! यह जिव्हा चार अंगुल की यह सामने नीम का पेड़ खड़ा है इस नीम के पेड़ की जड़ें नीचे हैं लेकिन हम और आप जो है, हमारे और आपकी जो जड़ें हैं, ऊपर हैं वह जीभ है। यह जीभ जड़ है। पूरे शरीर रूपी वृक्ष की जड़ जीभ है।

वृक्ष की जड़ में पानी दोगे तो पूरा वृक्ष हरा भरा हो जायेगा और जीभ को मिलेगा तो पूरा शरीर हरा भरा हो जायेगा। ध्यान देना – यदि वृक्ष की जड़ों में तुमने हींग डाल दी तो सूख जायेगा। वृक्ष की जड़ में यदि तुमने मठा डाल दिया तो सूख जायेगा। उसी तरह से तुमने यदि इस शरीर रूपी वृक्ष की जड़ में क्या डाल लिया है।

ध्यान देना – उस पानी में नमक तो नहीं मिला, ज्यादा तो नहीं मिला, यह बात सच्ची है कि सामान्य पानी की अपेक्षा नमक का पानी दिया जाये तो वृक्ष दुगुना जीता है और मीठा पानी दिया जाये तो वृक्ष तीन गुना जीता है। ज्ञानी ऐसे भी ना हो कि हम इतना पानी दे कि वृक्ष को पानी तो दो मीठा लेकिन ज्यादा मत दो कि उसे भी डायबिटीज हो जाये। उसी तरह से हम रसना इन्द्रिय को भोजन तो दे परंतु ध्यान रखे कि ऐसा भोजन भी न दें कि वह एकेन्द्रिय रूपी घोड़ा बनकर के हमको ही नीचे गिरा दे। यह इन्द्रियाँ घोड़े की तरह हैं, अश्व की तरह हैं।

भारतीय संस्कृति में अश्व मेघ यज्ञ आया। अश्वमेघ का तात्पर्य यह नहीं कि घोड़े की बली दो या घोड़े की पूजा करो, विधान यह है अश्व – इन्द्रियों का तात्पर्य यह है कि जो अश्व की तरह दौड़ रही हैं, चंचल हैं उन इन्द्रियों को वश में करो इस पूजा के माध्यम से जिस यज्ञ में व्यक्ति इन्द्रियों को जीतने का संकल्प लेता हैं उस यज्ञ का नाम है अश्वमेघ यज्ञ।

टीकमगढ़ में गायत्री परिवार से कुछ लोग आये थे, तब गुरुदेव से इस विषय पर चर्चा हुई थी उसने कहा था महाराज हम लोग जो भी यज्ञ करते हैं, उसमें एक न एक बुराई का त्याग करते हैं, यही हमारा यज्ञ है और पूछा अश्वमेघ यज्ञ में क्या करते हो उसने कहा हम पांचो इन्द्रियों में से किसी न किसी इन्द्रिय को कैसे जीता जाता है,– उसका संकल्प लेते हैं इसलिये चाहे बीड़ी पीने का त्याग करें, चाहे तम्बाकू खाने का त्याग करें, किसी न किसी प्रकार से एक त्याग करते हैं यही हमारा अश्वमेघ यज्ञ है।

प्रिय आत्मन्!

जो चूक गये
सो चूक गये
कल कल था
आज आज है
वो चला गया
यह भी चला जायेगा
जो आया है
सो जायेगा!

लेकिन चूक गये तो फिर मिलने वाला नहीं है। गंगा की धारा एक बार बह जाती है तो फिर लौट के नहीं आती है।

''तन
का स्पर्श
मन का स्पर्श कर ही लेता है
और !
मन का स्पर्श
मन को वश में कर ही लेता है
इसलिये
स्पर्श चिकित्सा भी है
और
संक्रामक बीमारी भी है।

स्पर्शन और रसना कामेन्द्रिय भी हैं। पेड़ में पानी दे तब फलता है और मनुष्य मुख में जैसा भोजन देता है, वैसा उसका पूरा शरीर होता है। भोजन से मन बनता है। मन से विचार बनते है विचार से आचार बनता है। आचार से जीवन बनता है। जैसा भोजन वैसा मन। जैसा मन वैसे विचार। जैसे विचार वैसे आचार। जैसा आचार वैसा जीवन।

प्रिय आत्मन् !

यदि जीवन को सम्भालना है तो आचार को सम्भालो। आचार को सम्भालना हो तो विचार को सम्भालो। विचार को सम्भालना हो तो मन को सम्भालो और मन को सम्भालना हो तो भोजन को सम्भालो। रसना इन्द्रिय कामेन्द्रिय है। आचार्यों ने कहा रसना इन्द्रिय पर नियंत्रण होना चाहिये।

भैया हिरण को घास खाते देखा ? देखा! बिल्ली को दूध पीते देखा ? देखा! दोनों में अंतर क्या है ? दोनो में अंतर यह है यदि हिरण के पास से गुजर जाओगे या वह आंखो से देख ले या आहट सुन ले तो वह तत्काल घास को छोड़ेगा और दौड़ लगा देगा। क्यों ? आशक्ति नहीं है और बिल्ली लौटे में मुख डालेगी या थाली में रखा है, तो आंख बंद कर लेगी दूध पीयेगी आंख बंद करके। अब तुम उसे भगाने का प्रयत्न भी करो तो वह भागेगी नहीं, वह लाठी की चोट तो सह लेगी लेकिन दूध नहीं छोड़ती है।

भय त्याग दूध बिलाव पीवे आपदा नहीं देखता।

जो बिलाव होता है वह भय को त्याग कर के दूध पीता है, आपत्ति को नहीं देखता। हिरण आपत्ति को देखता है। आशक्ति नहीं है तो वह प्राणों से बच जाता है। हिरण और बिलाव प्राणों के संकट में पड़ जाता है। रसना इन्द्रिय में आशक्ति है बिलाव को और हिरण को आशक्ति नहीं है। भोजन तो करना हिरण जैसे, लेकिन बिलाव जैसे नहीं।

ज्ञानी जीवो! रसना इन्द्रिय आपको धर्म से विचलित न कर दे। स्पर्शन इन्द्रिय आपको धर्म से चलायमन ना कर दे ध्यान रखना, आचार्य कहते हैं!

कषायोदयात्तीव्र - परिणामश्चारित्रमोहस्य।

(तत्वार्थसूत्र 6/14)

जो कषाय के उदय में तीव्र परिणाम करते हैं, वे चरित्र मोह का बंध कर लेते हैं। वे मुनिराज नहीं बन पाते। वे अणुव्रती नहीं बन पाते हैं। इसलिये ज्ञानी जीवो अपने जीवन में कषाय के उदय में तीव्र परिणाम मत करना, यदि मुनि आर्यिका बनना हो तो।

क्रोध गुस्से को फैलाता है और क्रोध जब आता है तो विवेक की आंख को बंद करके आता है। क्रोध का प्रारंभ अविवेक से होता है और समापन मूर्खता पर होता है। क्रोध का प्रारंभ अपशब्द से होता है और समापन पछतावे के साथ होता है।

ज्ञानी जीवो! इसलिये क्रोध भी धर्म से विचलित कर देता है। क्षमा धर्म को नष्ट कर देता है। जब तक तुम साहूकार के यहां सोना गिरवी नहीं रखते हो तब तक साहूकार ऋण नहीं देता है उसी प्रकार क्षमा रूपी धन को गिरवी रखने के बाद क्रोध मिलता है।

जैसे - साहूकार लाखों का धन रखता है, उसने एक लाख का सोना रखा है और तुम्हें दस हजार ब्याज पर दे दिये उसी तरह तुम्हें यह क्रोध मिला है क्षमा रूपी धन को गिरवी रखने के बाद अब क्षमा रूपी धर्म तभी मिलेगा जब तू उस क्रोध को नष्ट करेगा। इसलिये आचार्यों ने कहा है! पुस्तक, पत्नि, पैसा और शिष्य किसी दूसरे के पास नहीं रखना चाहिये। दूसरे के हाथ में गई पुस्तक वापिस नहीं मिलती या मिलती है तो फटी चिथी मिलती है। उसी तरह से दूसरे के हाथ में गया शिष्य या तो मिलता नहीं है और मिलता है तो वह संस्कार हीन हो जाता है इसी तरह से दूसरे के हाथ में गया हुआ धन समय पर नहीं मिलता है और दूसरे के पास गई स्त्री वापिस नहीं मिलती है।

प्रिय आत्मन् !

धन को जोड़ना मनुष्य का काम नहीं है, यह तो सामान्य पेड़-पौधे भी कर लेते हैं। पैसे को जोड़ लेना मनुष्य का काम नहीं है, यह तो पेड़-पौधों का काम है जिन पेड़-पौधों में परिग्रह संज्ञा होती है, वे धन के पास पहुंच जाते है और तो वह क्या मिट्टी भी सोना बन जाती है। यदि तुम्हें सोना ही प्यारा है तो चिंता क्यों करते हो, सोना बन जाओगे। क्या बात है पंचेन्द्रिय बने हो एकेन्द्रिय बनने में क्या लगता है। पृथ्वीकायिक जीव है, सोना कोई बड़ी चीज़ नहीं है। क्या करूं अपनी-अपनी सबको प्रिय होती है, सोना तुम्हारी ही तो पयार्य है सो तुमको प्रिय है।

प्रिय आत्मन् !

मैं दूध हूँ
चाहो तो
तपकर घी बन सकता हूँ
नहीं तो
नींबू डालो
फट सकता हूँ।

ज्ञानी जीवो ! काम, क्रोध, मद आदि चलायमान कर देते हैं निश्चल मन को, इसलिये ध्यान रख लेना, आचार्यों ने कहा है।

स्त्री राग कथा-श्रवणतन्मनोहरांग निरीक्षण - पूर्वरतानुस्मरण।
वृष्येष्ट-रस-स्वशरीर-संस्कार-त्यागाः पञ्च।।

(तत्वार्थसूत्र 7/7)

इष्ट रस का त्याग, गरिष्ट रस का त्याग, यह ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा के लिये पांच भावनायें है स्त्रियों में राग बढ़ाने वाली कथाओं को मत सुनना। यदि ब्रह्मचर्य की रक्षा चाहते हो तो स्त्रियों के प्रति राग बढ़े वह कथा नहीं सुनना, वह चेनल नहीं देखना, जिससे तुम्हें स्त्री के प्रति राग बढ़े पहली शर्त है ब्रह्मचर्य व्रत की। दूसरी उनके अंगो का निरीक्षण नहीं करना, हो सकता है पांव की अंगुली भी मनोहर हो सकती है और सिर का बाल भी मनोहर हो सकता है। पूर्व में की गई प्रवृत्तियों को स्मरण मे ंनहीं लाना। इष्ट रस और गरिष्ठ रस का सेवन नहीं करना, और अपने शरीर का शृंगार भी नहीं करना। शृंगार शृंगार रस की ओर ले जाता है और शृंगार रस रति की ओर ले जाता है। रति के बिना शृंगार होता कब है?

राग के बिना शृंगार नही होता है और शृंगार में छुपा अंगार होता है। शृंगार अंगार होता है। कविता खूब रचता हूँ

नहीं
शृंगार रचता हूँ।
किसी को
आग लग जाये
नहीं
अंगार रखता हूँ।
लिखा जो
कैद में उनने
उन्हीं को याद करता हूँ
कभी मैं पाठ रचता हूँ
कभी पूजा को रचता हूँ।

प्रिय आत्मन् !

श्रृंगार राग का प्रतीक है इसलिये साधुगण के लिये शांत रस की कविताएं ही शोभा देती हैं। साधुगण शांत रस में लिखते हैं? जिसकी जो प्रकृति होती है, वह उस रस में लिखता है। साधु शांत रस में लिखते हैं। गन्ने से मिठास निकलती है, ऐसा नहीं। गन्ना मीठा है सो निकलती है गन्नों से मिठास निकलती है, इसका कारण यह है कि गन्ना सहज में मीठा है सो मिठास निकलती है और नीम से कड़वापन निकलता है तो नीम सहज में कड़वा है सो कड़वापन निकलता है।

यदि किसी के अंदर से श्रृंगार रस निकलता है तो इसका तात्पर्य है अभी वह रागी है, रति है और जिसके जीवन में रति है उसके जीवन में क्षति है और जो रागी है वह कहीं न कहीं दागी है। इसलिये राग को मिटाना दाग को मिटाना है इसलिये कुछ न कुछ दाग को मिटाने के लिये चाहिये वह क्या है? वीतराग की आराधना उस राग को मिटाती है।

ज्ञानी जीवो! स्थितिकरण करना है, अपना भी करना है और पराया भी करना है।

गिरे हुये जो अपने साथी,
उनको दे हाथ उठायेंगे
हम भारत के वीर सिपाही,
आगे कदम बढ़ायेंगे।।

स्थितिकरण की परिभाषा है, जो गिरा हुआ है चाहे श्रृद्धा से गिरा हो, चाहे आचरण से गिरा हो, समाज में अनेक व्यक्ति रहते हैं, कोई धन अभाव में धर्म नहीं कर पा रहा है, कोई बीमारी के कारण धर्म नहीं कर पा रहा है, हम उसको पहचानें, उसको स्थितिकरण करने की कोशिश करें।

दर्शनाच् चरणाद् वापि, चलतां धर्म वत्सलैः।
प्रत्य-वस्था-पनं प्राज्ञैः, स्थितिकरण मुच्यते।।

प्रिय आत्मन् !

कोई दर्शन से चलायमान हो रहा है, कोई ज्ञान से चलायमान हो रहा है जहाँ समंतभद्र यह लिख गये है कि दर्शन और ज्ञान से चलायमान हो रहा है आप यह तो कहते हैं कि चलायमान हो रहा है लेकिन अमृतचन्द्र आचार्य ने आगे की बात लिखी है कि किन कारणों से चलायमान होता है और किन कारणों से जुड़ता है।

मेरे पास संस्कृत के टीचर आये बोले महाराज श्री! आलू-प्याज़ का त्याग किया था वह मेरा नियम टूट गया, तब से मेरे मन में खेद है। मैनें कहा अब तो नहीं खाते हो बोले महाराज! तभी से खा रहा हूँ एक बार नियम टूट गया था। मैनें कहा एक बार में साईकिल से जा रहा था और साईकिल रास्ते में पंचर हो गयी और वह जहां पंक्चर हो गई, मैं वहीं पर खड़ा हो गया और रात भर वहीं खड़ा रहा, दिन भर वहीं खड़ा, रहा बोलिये मैने कितना अच्छा काम किया।

ज्ञानी जीवो! यदि तेरा नियम एक बार टूट गया धोखे से, प्रमाद से या जानबूझ के भी टूट गया तो क्या तू वहीं रुका रहेगा साईकिल लेके जा रहा है तो कहीं भी पंचर भी हो सकता है और जब ट्यूब पंचर हो जायेगा तो क्या तू वहीं खड़ा रहता है? नहीं अधिकांशतः लोगो की ऐसी thinking है यदि एक बार नियम टूट गया तो टूट गया। भैया ध्यान रखो - अभी गाड़ी पंचर हुई है इतनी बेकार नहीं हुई कि गेरिज में डाल दो। साईकिल पंचर हो जाती है तो साईकिल को एन -केन-प्रकारेण खींचकर अपने घर पर ले ही आता है, उसको वहीं नहीं छोड़ता और तू वहीं नहीं रहता उसी तरह से यदि कोई नियम टूट जाये खण्डित हो जाये, तो तू सदा के लिये खण्डित मत मान लेना साईकिल पंचर हुई और ज्यों ही साईकिल सुधारने वाला मिला और तूने पैसे खर्च किये और साईकिल ठीक करवा ली उसी तरह हमें नियम टूटने पर प्रायश्चित्त कर लेना चाहिये।

प्रिय आत्मन्!

जीवन में नियम हो सकता है तुम निभा पाओ न निभा पाओ। जब प्रारम्भ में साईकिल चलाते हैं, तो गिरना होता ही है और नियम लेते है तो टूटने की संभावना होती है, लेकिन इस भय से नियम न लेना कि टूट गया तो, टूट गया जो कुछ लोग ऐसे होते हैं नहीं निभा पाये तो, बाहर जाना पड़ा तो और इन तो, 'तो' के कारण वे तोता बने रहते है।

ज्ञानी जीवो। इसलिये ज्यादा संदेह और ज्यादा संकोच में मत पड़ो। साधना प्रारम्भ करो कहीं अतिचार लगे, अतिक्रम लगे, व्यतिक्रम लगे, चिंता मत करो। जब गुरु देव के पास विराजो अपने दोषों को निवेदन कर लो लेकिन नियम को चालू रखो, क्योकि यह नियम वहां तक ले जाना है, जहां हमें आखरी तक जाना है और नियम हमें तक तक निभाना है जब तक निर्वाण को नहीं पाना है।

प्रिय आत्मन्!

नियम की मर्यादा निर्वाण तक है और नियम की दूरी सिद्धालय तक है। इसलिये तुम यहीं मत छोड़ो गाड़ी पंचर हुई है यहीं मत छोड़ो। पंचर सुधारो और गाड़ी ले जाओ। यदि पंचर के कारण गाड़ी छोड़ दोगे तो आगे नहीं बढ़ पाओगे और टूटने के भय से नियम छोड़ दोगे तो मोक्ष मार्ग पर नहीं बढ़ पाओगे।

स्थितिकरणम् कार्यं

ॐ नमः सिद्धम्यः

वात्सल्य अंग का लक्षण

अनवरतमहिंसायां शिवसुखलक्ष्मीनिबंधने धर्मे।
सर्वेष्वपि च सधर्मिषु परमं वात्सल्यमालंब्यं।।29।।

अन्वयार्थ - (अहिंसायां) अहिंसा में (शिवसुखलक्ष्मीनिबंधने) मोक्षसुखरूपी लक्ष्मी की प्राप्ति में कारण भूत (धर्मे) धर्म में (च) और (सर्वेषु) समस्त (सधर्मिषु अपि) समान धर्म-वालों में (परमं) उत्कृष्ट (वात्सल्यं) वात्सल्य भाव (आलंब्यं) पालना चाहिए।

प्रिय आत्मन् !

माँ जिनवाणी! जगकल्याणी! अरिहंत भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य आचरित, उपाध्याय उपासित, सर्वसाधु साधित, जीव तत्त्व प्रबोधिनी, अजीव तत्त्व विवेचनी, सर्वास्रव निरोधिनी, कर्म बंध विमोचनी, संवर पथ प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याणकारिणी हे जिनवाणी माँ तेरी जय हो, जय हो, जय हो तेरे विशाल पद में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन् !

''वात्सल्यं'' हि मनोहरं।

मानव के शरीर में हृदय का जो महत्व है, वही महत्व सम्यक् दर्शन में वात्यल्य अंग का है। यदि हृदय की धड़कन रुक जाये, तो बोलिये उस मनुष्य को क्या कह देते हैं? राम नाम सत्य है क्योंकि हृदय की धड़कन रुक गयी। यदि वात्सल्य अंग चला गया तो वह मनुष्य मुर्दा के समान है।

आचार्य कहते है एक मनुष्य वह होता है, जो चार कंधो पर चलता है लेकिन जिसके अंदर में वात्सल्य नहीं है, वह चलता फिरता शव है।

वत्सं लाति इति वत्सलं तस्य भावो वात्सल्यं

बेटे के समान जो भाव हैं वे वात्सल्य भाव कहलातें हैं। कैसे भाव ? निस्वार्थ भाव, निस्वार्थ प्रेम, आकांक्षा रहित, निष्काम प्रेम जो है, वह वात्सल्य कहलाता है।

धर्मी सों गउ-वच्छ-प्रीति-सम,
कर जिन-धर्म दिपावै। (छहढाला 13)

प्रिय आत्मन् !

जैसे गाय अपने बछड़े से प्रेम करती है, उसकी कोई भावी अभिलाषा नहीं होती है। ऐसे ही गाय सम नि:स्वार्थ भाव से धर्मात्मा से प्रेम होने का नाम वात्सल्य है। वादिराज स्वामी कहते हैं वात्सल्य मन को हर लेता है, मन को वश में कर लेता है।

ज्ञानी जीवो! ध्यान देना आचार्य विमल सागर इस युग के वात्सल्य रत्नाकर हैं उन जैसा वात्सल्य धर्मात्माओं से कितना प्रेम है। एक धर्मात्मा धर्म से दूर न हो जाये। येन-केन प्रकरेण उसे चाहे मंत्र के द्वारा, चाहे साधना के द्वारा, किसी न किसी प्रकार से सम्हाल के मोक्ष मार्ग में लगाये रखना उनका सबसे बड़ा कर्तव्य था। आचार्य विमलसागरजी महाराज अपने शिष्यों के प्रति भी अगाध वात्सल्य रखते थे। यहाँ तक कि अपने शिष्यों तक को लेने तक पहुँच जाते थे। जब सोनागिरी में विरागसागर मुनि का पदार्पण हुआ, तब आचार्य विमलसागर महाराज उनकी आगवानी को पहुँचे। लोग बोले- महाराज आप तो आचार्य महाराज हैं, गुरु महाराज हैं, वह तो आपका शिष्य है और आप लेने जा रहे हैं। बोले भैया शिष्य और गुरु का नाता हमारे कक्ष का है। वह समुदाय के बीच आ रहे हैं। इस नगर के लिये तो तीर्थंकर की मुद्रा आ रही है।

जिन मुद्रा का आगमन हो रहा है, तीर्थकर भगवान की मुद्रा का आगमन हो रहा है हम अवश्य ही उनको लेने जायेंगे। आचार्य विमलसागरजी महाराज का हृदय इतने वात्सल्य से भरा हुआ था कि वह प्रत्येक साधु का सम्मान करते थे। भैया ध्यान रख लेना ऐसा मत सोच लेना कि यह साधु तो इसका पानी पीता है, यह साधु तो कूप का पानी पीता है। ज्ञानी तू देखता है कि यह बोर का पानी पीता है या कूप का पानी पीता है, तू यही देखता रहेगा लेकिन तुझे पता ही नहीं है कि वह तो जिनवाणी माँ का अमृत और दूध पीता रहता है।

प्रिय आत्मन् !

विश्व कल्याण की उदार भावनाओं से भरा हुआ संत का हृदय जब बरसता है तो वात्सल्य की वर्षा हुआ करती है। ज्ञान की बूँदे वात्सल्य की बूंदे हैं। जब तक भीतर में वात्सल्य नहीं होता है तब तक संत प्रवचन भी नहीं दे सकता है। प्रवचन करुणा के हृदय से झर-झर कर आता है और वात्सल्य की गागर से बरसने लगता है। करुणा को धारण करके ही शिक्षा दी जाती है। बिना करुणा के और बिना वात्सल्य के शिक्षा कार्यकारी नहीं होती है।

यदि बेटे को दूध वात्सल्य के साथ पिलाओगे तो वह दूध कार्यकारी होगा और गुस्से में पिलाओगे तो कार्यकारी नहीं होगा। इसलिये ध्यान रख लेना कभी वात्सल्य मत छोड़ देना, जितना प्रेम तुम्हारा घर के बेटे से है, उससे हजार गुना प्रेम नगर में आये संत से होना चाहिये। यह वात्सल्य है।

तेरा बेटा तो तेरे ही घर में है लेकिन जो तेरे नगर में संत आया है, उसने तो तेरे ऊपर इतना विश्वास किया है कि तुझे ही, समाज को ही एक प्रकार से माँ मान लेते हैं, पिता मान लेते हैं लेकिन अध्यात्म की धारा कहती है।

असहाय मोक्ख मग्गो।

भीतर में उनका चिंतन तो रहता है, यह मोक्ष-मार्ग असहाय है। यदि किसी पर विश्वास नहीं होता तो मोक्ष मार्ग पर बढ़ कैसे पाता। वात्सल्य मोक्ष रूपी लक्ष्मी को देने में कारण है हम प्रभावना तो चाहते हैं। आचार्य कहते हैं जिसका हृदय काम नहीं करता उसका मस्तिष्क काम नहीं करता यदि हृदय फेल हो गया, तो मस्तिष्क किस काम का। हार्ट अटेक हो गया लेकिन ब्रेन हेमरेज नहीं हुआ क्या मस्तक फिर काम करेगा? नहीं करेगा। ध्यान देना यदि ब्रेन हेमरेज है तो फिर भी ठीक हो जायेगा। वात्सल्य का जाना तो हार्ट अटेक का होना है, अप्रभावना का होना ब्रेन हेमरेज का होना है।

अप्रभावना का होना ब्रेन हेमरेज होना है और वात्सल्य का नष्ट होना हार्ट अटेक है। ब्रेन हेमरेज तो फिर भी ठीक हो जायेगा लेकिन हार्ट अटेक हो गया तो गये काम से। आचार्य कहते हैं हृदय को सम्हाल के रखो, तो मस्तिष्क संभला रहेगा और वात्सल्य को सम्हाल के रखोगे तो प्रभावना सम्हली रहेगी। वात्सल्य जहाँ होगा, वहाँ प्रभावना अपने आप हो जायेगी। वात्सल्य का भाव प्रभाव जमाता है, जब प्रभाव होता है तो प्रभावना हो जाती है।

प्रकृष्ट भावना वात्सल्य के बिना आती कहाँ है, इसलिये एक पक्षी चिंतन में बहुत कोसों दूर रहने की आवश्यकता है। हमें देने वाला क्या दे रहा है, उसकी मत मानो ज्ञानी जीवो! ध्यान देना–सिद्ध भगवान बहुत बड़े हैं, लेकिन हमारे यहाँ सिद्धों को बाद में प्रणाम किया है पहले अरहंतो को प्रणाम किया है।

वात्सल्य जो है वह अनिवार्य अंग है। माँ बेटे के अंदर कोई कमी दिखे, तो उसे मत छोड़ देना, उसे वात्सल्य से समझाओ, समझ जायेगा। तुम्हारा है तुम्हारी ही गोद में आयेगा। माँ जब तुम रूठ जाती हो, तो बच्चा तुम से दूर ही भागेगा लेकिन जब प्रेम से बुलाओगी तो बच्चा जायेगा कहां, आयेगा तो गोद में ही। उसी तरह से धर्मात्मा को इतना वात्सल्य दो कि वह धर्म की गोद से दूर न चला जाये। कभी भाषा में कठोरता न हो, वचनों में कठोरता न हो, प्रश्नों में कठोरता न हो, उत्तर में कठोरता न हो क्योंकि वात्सल्य की मलम ही सबका उपचार कर देती है।

प्रिय आत्मन् !

वात्सल्य वह मलम है जो बड़े–बड़े घावों को भर दिया करती है। मैंने अनुभव किया है कैसा भी कष्ट हो शिष्यों को गुरु जब एक बार प्रेम से बोल देते हैं और सारा कष्ट उसका दूर हो जाता है। ध्यान रखें–इतने भी कोमल न बन जाये कि शिष्य उदण्ड बन जाये वात्यल्य हो परंतु ध्यान रखो वह इतने कोमल भी न हो जाये कि शिष्य उदण्ड बन जाये। और इतने कठोर भी न हो कि शिष्य भयभीत बने रहें और वे विकास ही न कर पाये; तो दोनों का ताल–मेल आवश्यक है।

कठोरता अत्यंत नहीं होना चाहिये और कोमलता अत्यंत नहीं होना चाहिये। भय नहीं रहेगा तो प्रीति उत्पन्न नहीं होगी। जब तक भय रहता है तभी तक विकास होता है, लेकिन अत्यंत भय रहेगा तो विकास ही रुक जायेगा। जीवन में वात्सल्य की बात है कि धर्मात्माओं से वात्सल्य होना चाहिये। कैसा होना चाहिये।

चार मिले चौसठ खिले,
रहे बीस कर जोड़।
सज्जन से सज्जन मिले,
हरषे रोम करोड़।।

एक धर्मात्मा हम, एक धर्मात्मा आप, जब दो मिले तो क्या हुआ, दो नयन हमारे और दो नयन आपके मिले तो चार मिले और चौसठ खिल गये धर्मात्मा मिले और प्रसन्नता जाहिर न हो ऐसा हो ही नहीं सकता प्रसन्नता तो धर्मात्मा की पहचान है। ओहो! मोती आकाश से नहीं बरसते है मोती तो आंगन पर चमकते है। तारे चाँदनी रात में भले तुम्हें ऊपर दिखते हों लेकिन दिन में देखना हो तो धर्मात्मा के चेहरे पर दांतो को देख लो, तो तुम्हें आकाश के तारे दिन में दिखाई देने लगेंगे।

प्रिय आत्मन् !

प्रवचन सुनना सौभाग्य की बात है लेकिन न भी सुन पाओ तो अहो भाग्य तो मना ही लेना कि हमारा अहो भाग्य है कि हमारे नगर में ज्ञान की गंगा प्रवाहित हो रही है। संत के चरण पखार पाओ, चाहे न पखार पाओ लेकिन जिसके घर में संत के चरण पखारे जायें, उस घर में देख के आ जाना, किस तरह पखारे जाते हैं।

आचार्य शांतिसागरजी के पास एक व्यक्ति गया, बोला महाराज हमारे गांव में एक महाराज हैं अच्छा। शांतिसागर जी बोले कितना दूर हैं महाराज। बीस किलोमीटर दूर हैं चातुर्मास चल रहा था। शांतिसागर महाराज बोले बस बीस किलोमीटर दूर हैं, मेरी मर्यादा है महाराज वह साधु रात्रि में पानी मांगता है, तो हम लोगों ने विचार किया है कि उसका पिच्छी कमण्डलु आपके पास ले आते हैं या साधु को आपके पास ले आयें तो उसने गांव का नाम बता दिया। शांतिसागरजी बोले आप आज नहीं कल आना दोपहर में और इतना कहने के बाद आचार्य शांतिसागरजी ने छह बजे सुबह बिहार किया और बीस किलोमीटर चल के उस साधु के पास पहुँच गये। और वह साधु वृद्ध हैं, जीवन की तपस्या के आखिरी समय में आकुलता व्याकुलता सता रही है और साधु जो पानी मांग रहा था उससे आचार्य शांतिसागर महाराज ने कहा, बेटा तुझे पानी पीना है तो मैं पानी लेकर आया हूँ पहले पानी पीओगे कि मैं पहले आपको नमोस्तु कर लूँ और श्रावक को उन्होंने दे दिया कि यह कमण्डलु पकड़ो, मैं पहले महाराज को नमोस्तु कर लूँ।

आचार्य शांतिसागर महाराज ने उनके लिये नमोस्तु किया, जिनके लिये श्रावक कपड़ा पहनाने की सोच रहे थे कि यह साधु पानी मांग रहा है। उस साधु को देखकर शांतिसागर महाराज बीस किलोमीटर चलकर गये और नमोस्तु किया। ध्यान देना, जब नमोस्तु किया तो वह पाटे से उठने की कोशिश करने लगे तब शांतिसागरजी बोले आप क्षपक हो मुझसे महान हो आप उठो नहीं, मैं आपके दर्शन के लिये आया हूँ। यह होती है संत की महानता। जब वह क्षपक उठने लगता है तो

शांतिसागर जी बोलते हैं बेटे, लेटे रहो शांतिसागर जी उसकी सेवा करते हैं, जब सेवा करते हैं तो बोले, बेटा पानी पीना हैं क्षपक बोले महाराज क्या अमृत पीने के बाद प्यास लगती है।

जब आपने मुझे अमृत ही पिला दिया है तो क्या पानी की प्यास रहेगी। ऐसे निर्मल भाव उस क्षपक के बने। आचार्य शांतिसागरजी महाराज ने कहा, तुझे प्यास लगी होगी, तू इतनी बड़ी रात कैसे बितायेगा। महाराज हमने शास्त्रों में सुना है कि नरको में तेतीस-तेतीस सागर तक बिना पानी के निकाल के आये हैं तो क्या मैं आप की वाणी का अमृतपान करने के बाद रात नहीं निकाल पाऊँगा। बोले यह तेरी दृढ़ता पर निर्भर है। गुरुदेव मेरी दृढ़ता तो आपके दर्शन से बढ़ गयी है। बेटे प्यास लगी हो तो पानी पी ले। नहीं गुरुदेव अब तो मेरी प्यास सदा के लिये बुझ गयी है। गुरुदेव। आपके दर्शन की जब तक प्यास नहीं थी तब तक पानी की प्यास सता रही थी, लेकिन अब आपके दर्शन मिल गये तो दोनों प्यासे बुझ गयीं, बाहर की एवं भीतर की। धन्य है।

आचार्य शांतिसागर महाराज ने वात्सल्य के द्वारा स्थितिकरण भी कर दिया और गांव में प्रभावना भी कर दी। वात्सल्य तो वह दीपक है जब जलता है, तो स्थितिकरण भी कर देता है और प्रभावना भी कर देता है। ज्ञानी! कभी किसी को ठुकराना नहीं। कभी आपके हाथ में तलवार है और आप बहुत अच्छे कुशल योद्धा नजर आते हैं लेकिन जिसके हाथ में सुई है उसका भी सम्मान रखो, न जाने उसकी सुई काम आ जाये। क्योंकि जब तक तलवार लिये हों और तलवार का घाव भी तुम्हे लगेगा, तो उसकी सुई ही तुम्हारे घाव को सिलने के काम आयेगी। इसलिए वात्सल्य कहता है।

बड़ों का आदर करो, हाथ उनके थाम लो।
छोटो को वात्सल्य देकर, आप उनसे काम लो।।

प्रिय आत्मन् !

तुम्हारी शान घट जाती, कि रुतबा घट गया होता।
जो गुस्से में कहा तुमने, वही हंसकर कहा होता।।

जो क्षमता प्रेम में है, वह अन्य किसी में नहीं है। वात्सल्य जोड़ता है, वात्सल्य सुई का काम करता है। समाज को जोड़ना है तो वात्सल्य से जोड़ो। आचार्य कहते हैं, वात्सल्य वह बताता है जिसमें धर्म की दवाई रखके दी जाती है। जब-जब वात्सल्य देते हैं तो उस वात्सल्य के बताशा में

धर्म की दवा होती है। परिवार को चलाना है तो बिना वात्सल्य के नहीं चल सकता है। समाज को चलाना है बिना वात्सल्य के नहीं चला सकते। संघ को चलाना है बिना वात्सल्य के नहीं चल सकता। अकेले ज्ञान से संघ नहीं चलता है।

ज्ञानी ! दो चार को सम्हालना बहुत आसान होता है लेकिन आचार्य विरागसागरजी तो दो चार सौ को सम्हालते हैं। ध्यान देना। यह वात्सल्य अंग ऐसा है आचार्य कहते हैं देने के लिए तुम्हारे पास और है क्या यह श्रावक तो अपने बच्चो के लिये पैसा दे देते हैं टाफी देते हैं नाना प्रकार के आइटम देते हैं लेकिन साधु, तुम्हारे पास देने को क्या है।

ज्ञानी जीवों ! हाथो से ही नहीं दिया जाता है आंखो से भी दिया जाता है तो हाथो से दिया है वह बहुत कम होता है। मुख से बोला जाता है वह बहुत कम होता है लेकिन जो आंखो से निकलता है वह बहुत होता है। आंखो से निकलता है वह बहुत होता है। आंखो की चमक बता देती है कि तुम मुझे कितना चाहते हो। माँ, जब बेटा तेरे पास आता है तो तेरी आंखों पर चमक आ जाती है। जो चमक मरकरी के प्रकाश में नहीं है वह चमक तेरी आंखो में है, उस चमक को देखने के लिए बेटा आता है।

प्रिय आत्मन् !

आचार्य कहते है काययोग से आशीर्वाद दिया तो खुश मत हो जाना। यदि मैं दोनों हाथों से आशीर्वाद दे दूँ तो खुश मत हो जाना, इतना ही समझना मुझे तीन परसेंट आशीर्वाद मिला है क्यों ? काय योग की क्रिया का ज्यादा महत्व नहीं है। यदि वचन से भी बोल दिया, तो भी ज्यादा खुश मत हो जाना, क्योंकि बारह परसेंट और बढ़ गया है, पन्द्रह परसेंट हो गया।

ज्ञानी ! सबसे ज्यादा पाप होता है तो मन से होता है और सबसे ज्यादा पुण्य होता है तो मन से होता है। सबसे बड़ी शक्ति मन के पास और मन से आशीर्वाद देगें तो सदा रहेगा। सबसे बड़ी ग्राह्य शक्ति मन के पास होती है, जितनी शक्ति मन के पास है उतनी शक्ति वचन के पास नहीं है और वचन के पास जितनी शक्ति है उतनी शक्ति काय के पास नहीं है। जब मेरे हाथ में इतनी शक्ति ही नहीं है, तो आशीर्वाद भी दूंगा तो कितना दूंगा।

काय योग से वचन योग की शक्ति बहुत बलवान होती है और वचन योग की शक्ति से मन योग की शक्ति और अधिक बलवान होती है। इसलिए जब काय से आशीर्वाद दिया तो कुछ दिया,

वचन से आशीर्वाद दिया तो कुछ–कुछ दिया और मन से दिया है तो बहुत कुछ दिया है। आशीर्वाद दिया तो कुछ–कुछ दिया और आशीर्वाद के बाद जब दीक्षा दे दी, तो समझना कि सब कुछ दे दिया।

प्रिय आत्मन् !

मन को जीतने की कोशिश होना चाहिये तभी मन से आशीर्वाद मिलता है और आचार्य कहते है जब मन से आशीर्वाद मिलता है,

आर्य पत्रायसेण विज्झाय मंत्राय सिज्झंति।

तो विद्या मंत्रों की सिद्धि अपने आप हो जाती है। ध्यान देना। सबसे पहले गुरु की दृष्टि शिष्य पर पड़ना चाहिये और शिष्य की दृष्टि गुरु के चेहरे पर नही पड़ना चाहिये। शिष्य की दृष्टि गुरु के चरणों में पड़ना चाहिये। और गुरु की दृष्टि शिष्य के चेहरे पर पड़ना चाहिये।

ज्ञानी जीवो! यह वह बातें है जो कभी अकस्मात निकला करती है। शिष्य की श्वांस से भी गुरु को कष्ट नहीं होना चाहिये। इसलिए दरवाजे भी नहीं खट–खटाना चाहिये। मन्दिर बंद होना और खुला होना उतनी विशेषता नहीं रखता। भीतर की आंख आस्था की खुली हो तो मंदिर तो सदा खुला है। आस्था की आंख तो बंद नही हो रही, मंदिर कब बंद हुआ है मंदिर कब खुला है यह तो देखने वालो के लिये है, लेकिन भक्त के लिए तो भगवान सदा खुले ही रहते है।

प्रिय आत्मन् !

श्रद्धा, भक्ति, विनय, समपर्ण यह चार खम्बे जहाँ खड़े होते हैं, वहाँ वात्सल्य की चादर बिछ जाया करती है वात्सल्य पाने के लिये श्रृद्धा चाहिये। वात्सल्य पाने के लिये भक्ति चाहिये। विनय और समर्पण चाहिये। आचार्य कहते हैं सभी में वात्सल्य हो, साधर्मियों में वात्सल्य हो और धर्म में वात्सल्य। तीन जगह वात्सल्य होना चाहिये– धर्म में वात्सल्य, धर्मात्मा में वात्सल्य, सब जीवों में वात्सल्य होना चाहिये।

वात्सल्य में बहुत गुण है, विमर्ष सागरजी का एक बहुत अच्छा गीत आता है।

सबसे प्रियतम हो प्रिय तुम, कुछ ऐसा काम करो जी
अरु विश्वास बनो जी, माता पिता गुरुजन की सेवा
कर कर्तव्य निभायें, मोक्ष मार्ग पर बढ़ते जाये।

ज्ञानी जीव! उसी खेत में गढ़ा हुआ धन किसान पाता नहीं है और जीवंधर उसी खेत में से पा लेता है। कारण कहीं न कहीं उस जीवंधर का पुण्य था, किसान वर्षो से हल जोत रहा था नहीं पाया और जीवंधर ने हल की नोक को पकड़ा और घड़ा निकल आया।

प्रिय आत्मन् !

गुरु से बात नहीं करो, वात्सल्य करो। आप लोग बात करते हो वात्सल्य नहीं करते हो। संत का एक क्षण और अन्न का एक कण बर्बाद नहीं करना चाहिये। अन्न के कण बर्बाद करोगे तो भोजन नहीं मिलेगा और संत का क्षण बर्बाद करोगे तो भजन नहीं मिलेगा।

ज्ञानी जीवों! जैसे लता एक बाँस के सहारे ऊपर चढ़ जाती है। उसी तरह से वात्सल्य के सहारे जीव मोक्ष शिखर तक चढ़ जाता है। अन्य जगह क्या-क्या नहीं मिलता है, लेकिन संतो के पास सिवा वात्सल्य के और कुछ नहीं मिलता है। संसार की सबसे बड़ी शक्ति वात्सल्य है लगता है कि

गुरु हमारे प्राणो से प्यारे, हम चरण के दास है
मिले न दुनियां तो क्या लेना, गुरु हमारे पास है!!
गुरु तू न मिले सारी, दुनिया मिले भी तो क्या
मेरा मन न खिले, सारी बगिया खिले भी तो क्या।।

यदि गुरु मिल गये, तो सब मिल गये

गुरु ही माता पिता हमारे,
सदगुरु ही भगवान है।
गुरु की महिमा गाते जाओ,
जब तक घट में प्राण है।

गुरु भगवान का रूप हैं। गुरु ही प्रभु का रूप है। इसलिये वात्सल्य श्रावकाचार कहता है कि जो भी धर्मात्मा दिख जाये, दोनों हाथ जोड़ लेना, परस्पर में जय जिनेन्द्र बोल देना। किसी को सूत्र शत्रु मत बनाना प्रत्येक को मित्र बनाना।

वात्सल्यं हि मनोहरं।

उसके मन में बैर है, उसके मन में क्रोध है। उसको मत देखो तुम्हारी आंखो में वात्सल्य का कितना नीर है, उसको देखो वात्सल्य का नीर तलवार की धार को भी रोक देता है। ध्यान रखना सिंकदर ने पूरे देश को जीता, लेकिन कल्याण नामक मुनि के वात्सल्य ने उस सिंदकर को जीत लिया। बोलिये, अब विश्व विजेता कौन है? वात्सल्य।

प्रिय आत्मन् !

प्रेम में वह शक्ति है कि तलवार से जो युद्ध नहीं जीता जा सकता है वह वात्सल्य से जीता जा सकता है। अंतिम सम्राट चंद्रगुप्त ने कई युद्धो को जीता है लेकिन भद्रबाहु ने चंद्रगुप्त को जीता है। यदि किसी को जीतना है तो वात्यल्य से जीतो। क्रिकेट का बल्ला लेकर के जीतना कोई जीतना नहीं है। हाथ में तलवार लेकर जीतना कोई जीतना नहीं है, क्यों हाथो से जीतते हो, क्यों पैरों से लड़ते हो, बिना लड़े जीतना है, तो आंखो से जीतो।

न हाथ चलता है, न पैर चलाना है
आंखों ने ही आंखों से बात कर ली
दोनों खामोश हे दिल से बात कर ली।

यह है वात्सल्य की परिभाषा। विष्णुकुमार मुनि के मन में यह नहीं आया कि कौन से संघ पर उपसर्ग हो रहा हैं यह भाव नहीं आया उन्होनें तत्काल विचार किया कि दिगम्बर श्रमण संस्कृति पर उपसर्ग हो रहा है तत्काल विष्णुकुमार मुनि ने उपसर्ग का निवारण किया।

प्रिय आत्मन् !

वात्सल्य 'संघ' को लेकर नहीं होता है। वात्सल्य 'पंथ' को लेकर नहीं होता है। वात्सल्य समाज को लेकर नहीं होता है। वात्सल्य तो धर्म से होता है। धर्मात्मा से होता है। प्रत्येक संघ में धर्म है, प्रत्येक समाज में धर्म है।

!! ऊँ नमः सिद्धेभ्यः !!

*** * * ***

प्रभावना अंग का लक्षण

आत्मा प्रभावनीयो रत्नत्रयतेजसा सततमेव।
दानतपोजिनपूजाविद्यातिशयैश्च जिनधर्मः।।30।।

अन्वयार्थ - (रत्नत्रयतेजसा) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र ये ही तीन रत्न कहलाते हैं। इनके प्रताप से (सततं एवं) निरंतर ही अपनी आत्मा को (प्रभावनाय:)प्रभावित करना चाहिए (च) और (दानतपोजिनपूजा विद्यातिशयै:) दान, तप, जिनेन्द्रपूजन और विद्याके अतिशय-चमत्कारोंसे (जिनधर्म:) जैन धर्म प्रभावित करना चाहिए।

प्रिय आत्मन् !

माँ जिनवाणी ! जगकल्याणी ! अरिहंत भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य आचरित, उपाध्याय उपासित, सर्वसाधु साधित, जीव तत्त्व प्रबोधिनी, अजीव तत्त्व विवेचनी, सर्वास्रव निरोधिनी, कर्म बंध विमोचनी, संवर पथ प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याणकारिणी हे जिनवाणी माँ तेरी जय हो, जय हो, जय हो तेरे विशाल पद में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन् !

जिनेन्द्र देव की दिव्य-ध्वनि देशना लब्धि कही जाती है। यह देशना लब्धि सम्यक्त्व को जागृत करती है, श्रद्धा को विकसित करती है। पुरुषार्थसिद्ध्युपाय के माध्यम से हम प्रतिदिन चिद् चमत्कार, चिद्-ज्योति स्वरूपी, चैतन्य चिंतामणी निज निधि, निज देवता आत्म रुवरूप का परिचय पा रहे हैं। एक रत्न को पहिचानने के लिये और पाने के लिये प्रयास कर रहे हैं वह सम्यक् दर्शन रत्न जो आठ अंगों से विभूषित है आज सर्वोत्तम अंग प्रभावना अंग का परिचय है।

मानव के शरीर में उत्तम अंग मस्तिष्क के द्वारा व्यक्ति समस्त ज्ञान के कार्य करता है जो स्थान मानव शरीर में मस्तिष्क का है वही स्थान सम्यक्त्व के आठ अंगो में प्रभावना अंग का है।

प्र – उपसर्ग

भावना – शब्द

प्रकृष्ट भावना, श्रेष्ठ भावना, उत्तम भावना, महान भावना, पत्रिका भावना, प्रभावना कहलाती है। आचार्य भगवान कहते हैं यह प्रभावना अंग है। संसार में कुछ व्यक्ति वे होते हैं जो जीवनभर धन कमाते हैं और धरती में गाढ़ के चले जाते हैं। कुछ व्यक्ति वे होते हैं जो धन को कमाते है तो कल्याण के लिये बांट देते हैं। दोनों में कौन महान होते है? बांटने वाले।

ज्ञानी जीवो! प्रभावना अंग है प्रभावना के दो रूप हैं एक बहिरंग प्रभावना। एक अंतरंग प्रभावना। अपनी आत्मा को प्रभावित करना अंतरंग प्रभावना है। किनसे प्रभावित करना? गुणों से प्रभावित करना, गुणवानों से प्रभावित करना, हम जिस से प्रभावित करेगें उससे प्रभावित होंगे। हम पर से प्रभावित कितने होते हैं और निज से प्रभावित कितने होते हैं और पर को प्रभावित कितना करते हैं और निज को प्रभावित कितना करते हैं।

आचार्य भगवान् कहते है।

''जिनधर्म प्रभावनीयः।

जिनधर्म की प्रभावना करना चाहिये। प्रत्येक सम्यक् दृष्टि का कर्तव्य है, प्रत्येक धर्मात्मा का कर्तव्य है कि वह जिनधर्म की प्रभावना करे। जिनेन्द्र धर्म की प्रभावना करें। संसार में जो अज्ञान अंधकार फैला हुआ है उस अज्ञान रूपी अंधकार को जिस प्रकार बने, उस प्रकार दूर करें और जिनेन्द्र भगवान के शासन की जो महिमा है जिन शासन की महिमा को स्याद्वाद के द्वारा प्रकाशित करें।

प्रभावना का तात्पर्य बैनर, पोस्टर, पत्रिका, पम्पलेट यहाँ तक ही सीमित नहीं है प्रभावना का तात्पर्य है नर–नर के भीतर भावना भर देना, प्रत्येक आत्मा में भावना भर देना प्रभावना है। हृदय में भावना भर देना प्रभावना है, हृदय में भावना को जागृत कर देना प्रभावना है यह प्रभावना का अंतरंग साधन तो निज आत्मा ही है जो स्वयं प्रभावित होता है वह दूसरे को प्रभावित कर सकता है और जो स्वयं प्रभावित नहीं होता है वह दूसरे को प्रभावित नहीं कर सकता है।

प्रभावना करने के लिये प्रभावित होना अनिवार्य है। पढ़ाने के लिये पढ़ना अनिवार्य है जो स्वयं पढ़कर के शिक्षक नहीं बना है वह क्या पढ़ायेगा उसी तरह जो स्वयं प्रभावित नहीं हुआ है किससे प्रभावित? सम्यक् दर्शन से तुमने अपनी आत्मा को कितनी बार प्रभावित किया है कितनी बार ज्ञान से प्रभावित किया है, कितनी बार चारित्र से प्रभावित किया है आत्मा रत्नत्रय तेज है, रत्नत्रय प्रकाश है, रत्नत्रय वह तेज है जिससे आत्मा के गुण प्रकाशित होते हैं।

प्रिय आत्मन् !

सबसे पहले रत्नत्रय के तेज से अपने आप को प्रभावित करो, सम्यक् दर्शन से प्रभावित करो। यह मात्र मुनि के लिये नहीं है। यह श्रावक के लिये भी है और स्वयं के लिये भी है। आचरण को पालकर के आत्मा को प्रभावित करो प्रभावना मात्र उपदेश से नहीं होती है प्रभावना के लिये समंतभद्र स्वामी ने स्वयं स्तोत्र रचा, श्रद्धा से प्रभावित कर लिया। वादिराज ने श्रद्धा से प्रभावित किया समंतभद्र की प्रभावना का पहला श्रद्धा गुण कार्यकारी रहा जो स्वयंभू स्तोत्र की रचना की उस श्रद्धा से चमत्कार प्रकटा और उससे पूरे विश्व में धर्म की प्रभावना हुयी यह श्रद्धा की प्रभावना थी।

अकलंक आचार्य ने अपने ज्ञान के द्वारा अन्यमतियों पर विजय प्राप्त किया यह उनके ज्ञान की प्रभावना थी और अन्य आचार्यों ने शुभचंद्र आचार्य ने चारित्र के द्वारा प्रभावना की। कोई श्रद्धा से प्रभावित करता है, कोई ज्ञान से प्रभावित करता है, कोई चारित्र से प्रभावित करता है।

ज्ञानी! पहले तवा स्वयं गरम होता है कि पहले वह रोटी सेकता है? पहले तवा गरम होना चाहिये तभी आप रोटी उस पर रखते है यदि ठंडे तवा पर रख दी तो चिपक जायेगी सिक नहीं पायेगी। गरम तवा पर जब रोटी रखते हैं तब वह अलग स्थिति है और तवे पर फूलती नहीं है फूलने के लिये तो उसको अंगारों पर सेंका जाता है।

प्रिय आत्मन् !

आप पहले अग्नि से तवा को प्रभावित करते हैं अब तवा के द्वारा रोटी प्रभावित होगी यदि लोई के लिये तुम डायरेक्ट अग्नि में डाल दोगें तो अंगारे चिपक जायेंगे उसमें तो प्रभावित नहीं होगी प्रभावित करने का तरीका है। डायरेक्ट कोई व्यक्ति सीधा जिनवाणी में प्रवेश नहीं कर सकता। धर्म में प्रवेश नहीं कर सकता। जैसे लोई डायरेक्ट अंगारे में प्रवेश नहीं कर सकती है उसको पहले तवा पर सेकना अनिवार्य है फिर भले ही अंगारे पर सेक लो उसी तरह से पहले तवा को हमने गरम

किया जब तवा गरम हो गया तो जिस लोई को रोटी का आकार दिया था उसको तवे पर स्थापित कर दिया।

पहले तवा प्रभावित हुआ है अब तवा ने जो प्रभाव पाया है वह अपना प्रभाव रोटी पर छोड़ रहा है यह है प्रभावना। आचार्य कहते हैं। जैसे– अग्नि के प्रभाव से तवा प्रभावित हुआ और तवा के प्रभाव से रोटी प्रभावित हो रही है उसी तरह हे श्रावकों! हे साधुओ! पहले स्वयं रत्नत्रय के तेज से आत्मा को प्रभावित करो। आत्मा को सम्यक दर्शन से प्रभावित करो। तुम तप करो तप से प्रभावित करो लेकिन जब स्वयं ही तपोगे नहीं, तो तुम दूसरे को क्या तपाओगे।

पहले स्वयं तपो और तप तपकर के तवा बन जाओ वस्तुतः वह तवा नहीं है वह तपा रहा है जो स्वयं तपा है उसने दूसरे को तपाया है रोटी सेकना है तब तक अग्नि पर तवा रखा ही रहेगा और तुमने तवा अग्नि पर से हटा दिया तो रोटी नहीं सेक पाओगे। रोटी तो सेकना चाहते हो लेकिन तपना नहीं चाहते।

ज्ञानी जीवो! पहले अनिवार्य आवश्यकता है कि तवा को तपाते रहो कीमत तपने पर है एक तवा गैस चूल्हे पर अग्नि की भट्टी पर रहता है और दुकानदार की दुकान पर सौ तवे रखे हैं लेकिन सौ तवा बिना काम के तवा है क्योंकि एक पर भी रोटी नहीं सिकेगी जब तक अग्नि से तवा प्रभावित नहीं होगा तब तक उस तवा पर रोटी नहीं सिक सकती है। महत्व उस तवा का है जो तवा अग्नि पर रखा हुआ है। अग्नि से प्रभावित हो रहा है उसी तरह आचार्य कह रहे हैं ज्ञान से आत्मा को प्रभावित करो।

प्रिय आत्मन् !

हम प्रभावना तो करना चाहते है लेकिन प्रभावित होना नहीं चाहते हैं आचार्य यह कहते है तुम जितने उत्कृष्ट क्वालिटी से प्रभावित हो जाओगे उतनी उत्कृष्ट क्वालिटी से प्रभावित कर पाओगे। जितने पावर से तवा गरम होगा उतने जल्दी वह रोटी सेक पायेगा। बीरबल की खिचड़ी दिन भर में नहीं पक सकी क्योंकि अग्नि की लौ इतनी मंद थी और वह बर्तन ऊपर रखा था जब पहले बर्तन ही नहीं तप पाया तो खिचड़ी कैसे तप पाती। ज्ञानी उसी तरह से यदि हम बिना तपे प्रभावना करना चाहेंगे तो बीरबल की खिचड़ी की तरह हमारी प्रभावना होगी जो कभी भी प्रभावित नहीं कर पायेगी।

आचार्य भगवान् कहते हैं पहले प्रभावित हो जाओ और इतने प्रभावित हो जाओ कि अप्रभावित न हो पाओ। आम खट्टा होता है कि मीठा होता है? आम पहले खट्टा है जब तक तपा नहीं है तब तक खट्टा है और धीरे-धीरे जब तप जायेगा, जिस क्रम से तपता है उस क्रम से वह मीठा होता चला जाता है वृक्ष की डाली पर वह तपता है और बिना तपे झड़ जाये तो दो रुपये किलो में भी नही बिकता है।

जो कच्चा होता है सो खट्टा होता है और खट्टे आम जो गिर पड़े तो उनकी कला है या तो दो ही रुपये किलो में बिक जाये या हम सौ रुपये किलो में बेचना चाहते है कि दो रुपये किलो में बेचना चाहते हैं। यदि आम प्रभावित हो जाये अभी सूर्य की किरणों से प्रभावित नहीं हुआ वह तपा नहीं है इसलिये कीमत दो रुपये किलो की है, वही आम सूर्य की किरणों से प्रभावित हो जाये, तप जाये सूर्य की किरणों का प्रभाव उस पर आ जाये तो उसकी कीमत बढ़ जायेगी।

यदि ऊपर नहीं तप पाये हो तो दूसरा उपाय है कि माली उसे पाल में दबा देता है भीतर में दबा दिया। सच में तुम जिसे दबाना समझ रहे हो कि यह हमको बचा के रखे हैं, यह हमको दबा के रखे है ज्ञानी सच में वह दबाते कहाँ हैं वह तो तुम्हें पकाते हैं। कभी-कभी जब हमें अज्ञान होता है तब हम अपने गुरुजन को यह कहते हैं गुरुदेव तो बहुत दबाके रखते हैं शिष्यों को।

ज्ञानी जीवो! यदि दबके रह लिया तो पक जाओगे यदि आम दब के नहीं रहा तो पक नहीं पायेगा और पक गया तो मूल्य बढ़ जायेगा। एक आम वह है जो जल्दी मार्केट में पहुँच रहा है एक आम वह है जो थोड़ी देर बाद में मार्केट में पहुँच रहा है जो जल्दी पहुँच रहा है। वह खट्टा पहुँच रहा है और जो देर से पहुँच रहा है वह पक के पहुँच रहा है। जल्दी पहुँचने का ज्यादा फायदा है कि देर से पहुँचने का ज्यादा फायदा है, फायदा है तपकर के पहुँचने वाले का जैसे जल्दी पहुंचा पर बिना तपे पहुँचा पर तपकर के पहुँचा तो मूल्य मिला। पहले आम स्वयं प्रभावित हुआ है या तो ऊपर से ऊष्मा ले लेता या दबकर के ऊष्मा ले लेता है ऊपर से सूरज ऊष्मा देता है या भूसे के अन्दर जो ऊष्मा मिलती है तो प्रभावित हो जाता है तो पहले आम प्रभावित हुआ है।

जैसे - बागवान ने आम को दबा दबाकर तपाया है उसी प्रकार हम लोग तो घर-घर से निकले हुये खट्टे आम थे लेकिन गुरु के पास पहुँच गये तो गुरु ने ऐसा दबाकर रखा, ऐसा दबाकर रखा कि पाल में पका दिया और जब पका दिया तो मीठे हो गये और मीठे हो गये तो आपके बीच में आये तो सबको मीठे-मीठे लग रहे हैं। दब के रहने का परिणाम है कि दब के रहे तो पक कर

निकले तो पक्के निकले। जो पक कर निकलेगा वह पक्का निकलेगा और जो दबाकर ही नहीं रहेगा वह पक नहीं पायेगा, जो पक नहीं पायेगा वह पक्का नहीं हो पायेगा।

पक्का करने के लिये दबना पड़ता है। पहले प्रभावित आम स्वयं हुआ है कि पहले उस ने प्रभावित किया है? प्रभावित हुआ था उसी तरह से जैसे आम पहले मीठा हुआ उसी तरह से हम सब गुणों से प्रभावित होकर के मीठे हो जायें तब हमारे गुणों से कोई दूसरा प्रभावित होगा।

प्रिय आत्मन् !

रस होता है तो रूप होता है। फल में रस आता है तो रूप बदल जाता है। जब आम खट्टा होता है तो हरा-हरा होता है और जब मीठा होता है तो पीला-पीला हो जाता है उसी तरह जब जीवन में राग द्वेष की खटास होती है तो रूप अलग होता है और जब वीतरागता की मिठास आती है तो अलग रूप होता है। पहले सराग दशा थी तो वस्त्रों में लिपटा था और जब वीतरागदशा आयी तो रूप बदल गया।

पहले जिनवाणी से स्वयं प्रभावित हो, पहले सम्यक् दर्शन से, सम्यक् ज्ञान से सम्यक् चारित्र से स्वयं को प्रभावित करो मैं कितना प्रभावित हुआ यदि स्वयं प्रभावित हो तो तुम्हारे द्वारा हजार प्रभावित होंगे।

आचार्य कह रहे हैं पहले आत्मा का दीपक जलाओ, ज्ञान की ज्योति जलाओ पहले स्वयं प्रकाशित हो जाओ दूसरे प्रकाशित हो जायेंगे पहले स्वयं प्रज्जवलित हो जाओ फिर दूसरे प्रज्ज्वलित हो जायेंगे। सबसे पहले प्रभावना के पहले होती है भावना। आचार्य कहते है शुरुआत अपने से होती है। एक लोक में सूत्र कहाँ जाता है सदा अच्छे कार्य की शुरुआत स्वयं से करें।

प्रत्येक अच्छे कार्य की शुरुआत अपने से होती है। आचार्य अमृतचंद वही कह रहे हैं कि तुम प्रभावना चाहते हो तो पहले आत्मा को प्रभावित करो। आज तक विश्व में जिन्होंने अपनी आत्मा को प्रभावित किया है वे प्रभावना कर पाये हैं और जो जिस गुण से, जिस देव से, जिस शास्त्र से, जिस गुरु से स्वयं प्रभावित नहीं है तो हम उस देव की, उस शास्त्र की, उस गुरु की क्या प्रभावना कर पायेंगे।

जो जिस देव से प्रभावित होता है वह उस देव की प्रभावना करता है, जो जिस शास्त्र से प्रभावित होता है वह उस शास्त्र की प्रभावना करता है। जो जिस गुरु से प्रभावित होता है वह उस गुरु

की प्रभावना करता है। जो जिस पार्टी के नेता से प्रभावित होता है वह उस पार्टी की प्रभावना करता है। यदि तेरे अंदर जमीन से पार्टी का असर नहीं है तो विजय देगा। पार्टी की विजय तब होती है जब जमीनी ठोस नेता उस पार्टी से जुड़े हुये सामने आते हैं तब पार्टी विजय को हासिल करती है। आज का प्रत्येक व्यक्ति यह देखता है कि नेता कितना ठोस है भीतर से। उसी तरह आज का प्रत्येक श्रावक यह देखता है कि यह साधु भीतर से कितना ज्ञानवान् है पहले तो यह चलता था कि नेता की फोटो लगा गांव के लोग यह देखते कि दस पचास बैनर लगा दिये तो यह पार्टी जीत रही होगी लेकिन आज कल यह देखते हैं कि कितना नीतिवान् है।

ज्ञानी जीवो! समाज इतना प्रबुद्ध है कि समाज को भुलावे में नहीं रखा जाता और समाज इतना सचेत है कि साधु की चर्या को, एक-एक आचार्य को मूलाचार की कसौटी पर कसा देखना चाहता है। जिनधर्म की प्रभावना करना तो रोटी सेकना है पर आत्मा को प्रभावित करना तवा को सेकना है। हम तवा नहीं सेकना चाहते हैं, हम रोटियों सेकना चाहते हैं जब बिना तवा सेके रोटियां सेकते हैं तो वे रोटियां वही पर चिपक-चिपक कर रह जाती हैं और एक भी नहीं सिकती है।

जो तप गया है वह आनंद दे रहा है जो तपा नहीं है वह आनंद नहीं दे पाता है। पहले भोजन को प्रभावित किया है फिर भोजन से प्रभावित किया है। जो भोजन पहले तप गया है भोजन स्वादिष्ट लगने लगा यदि बिना तपा एक भी दाना मुँह में आ गया तो वह अटकेगा, खटकेगा। उसी प्रकार जब तप जाओगे तो अपने आप योग्य बन जाओगे।

आचार्य कहते है कि प्रभावना के लिये भावना अनिवार्य है और पहले आत्मा को प्रभावित करो आत्मा को प्रभावित करने के लिये स्वयं को प्रभावित करो। जब अग्नि के तेज से तवा गरम हुआ है तो रोटी गरम हुयी है तो रत्नत्रय के तेज से आत्मा प्रभावित होगी तो जिनशासन प्रभावित हो जायेगा। एक को प्रभावित किया तो हजार प्रभावित हो गये गौवर्धन आचार्य ने मात्र एक भद्रबाहु को प्रभावित किया तो सब प्रभावित होते चले गये।

प्रिय आत्मन् !

एक बीज होता है वह जमीन के अंदर गढ़ता है उगने के लिये गढ़ना पड़ता है और उठने के लिये झुकना पड़ता है। आचार्य कह रहे हैं विद्या के अतिशय से जिनधर्म की प्रभावना चलना चाहिये। व्यवहार और निश्चय नय के ज्ञाता जहाँ पर विराजमान होते हैं और अपनी देशना देते हैं वहाँ पर भगवान महावीर का धर्म तीर्थ संचालित हो जाता है।

हाथी रथ चलाता है तो गजरथ कहलाता है। बैल जिस रथ को चलाता है तो वृषभ रथ कहलाता है। अश्व जिस रथ को चलाता है तो अश्व रथ कहलाता है लेकिन धर्मात्मा जिस रथ को चलाते हैं वह धर्म रथ कहलाता है। यह जिन शासन का रथ है, दिखता कुछ नहीं, चल रहा है।

ज्ञानी जीवो! जब दो हाथी खीचते है तो पचास साठ इन्द्र मात्र बैठते हैं और इतना ही खीच पाते हैं लेकिन महावीर जब बैठे थे तो तीन लाख श्राविकायें और एक लाख श्रावक को खींचते चल रहे थे।

प्रिय आत्मन् !

आहार दान एक दिन के लिये होता है। औषधिदान जब तक बीमार हो तब तक काम में आता है। अभयदान एक भव के लिये होता है लेकिन ज्ञान दान भव के लिये होता है। इसलिये सब दानों में श्रेष्ठ ज्ञान दान होता है।

ज्ञानी जीवो! प्रभावना करना है तो प्रभावित हो जाना चाहिये। जितने प्रभावित हो जाओगे उतनी प्रभावना कर पाआगे, जो प्रभावित नहीं हो पायेगा, वह प्रभावना नहीं कर पायेगा। प्रभावित हो जाओ प्रभावना कर जाओगे। जितने महामनीषी हुये हैं चाहे समंतभद्र हों, चाहे उमास्वामी हों, चाहे कुंद-कुंद हों यह प्रभावित तो हुये उसी तरह से हम पूर्वाचार्यो के वचनों से प्रवचनों के माध्यम से, ज्ञान के माध्यम से, श्रद्धान के माध्यम से, आचरण के माध्यम से, ज्ञान ध्यान रूपी बिजली को हम अपने अंदर भर ले ताकि जब प्रकाश देने की आवश्यकता पड़े तो आप विराजमान हो जाये तो स्वयं ही जग प्रकाशमान हो जाये।

साधु विराजमान समाज प्रकाशवान् इसलिये आवश्यक है ज्ञानवान् आवश्यक है ध्यानवान्। आचार्य कहते हैं जिस घर में दिगम्बर संत का आहार हो जाता है उस घर में पुण्य पुत्र की उत्पत्ति होती है। एक ग्रंथ का प्रकाशन केवलज्ञान को प्रदान करने वाला कार्य है। आप सम्यक् ज्ञान की पूजा तो करते हो, अर्घ तो चढ़ाते हो, लेकिन सच्चा मायना यह है कि एक श्लोक प्रति दिन याद करो।

कर्म क्षय के लिये जो साधना की जाती है वह तप है, प्रवचन सुनना तप है। स्वाध्याय परम तप है।

स्वाध्यायः परमं तपः!

जिनेन्द्र पूजा के द्वारा और विद्या का अतिशय, दान का अतिशय, तप का अतिशय जो कार्य सदा जयवंत रहे। देव प्रतिष्ठा किसी ने एक वेदी बनवा दी सभी पूजा कर रहे हैं। यह दान का अतिशय है। विधान करवाना अतिशयकारी जिन पूजा है।

पूजा के द्वारा जिन धर्म की प्रभावना होती है। अतिशयकारी दान होगा तो अतिशयकारी पूजा होगी।

!! ऊँ नमः सिद्धेभ्यः !!

✻ ✻ ✻ ✻

सम्यग्ज्ञान का विवेचन

इत्याश्रितसम्यक्त्वैः सम्यग्ज्ञानं निरूप्य यत्नेन।
आम्नाययुक्तियोगैः समुपास्यं नित्यमात्महितैः॥ 31॥

अन्वयार्थ – (इति) इस प्रकार (आश्रितसम्यक्तवैः) सम्यग्दर्शन को धारण करने वाले उन पुरुषों को, जो (नित्यं) सदा (आत्महितैः) आत्मा का हित चाहते हैं (आम्नाययुक्तियोगैः) जिन धर्म की पद्धति और युक्तियों के द्वारा (यत्नेन) भले प्रकार (निरुप्य) विचार करके (सम्यग्ज्ञानं) सम्यग्ज्ञान (समुपास्यं) आदर के साथ प्राप्त करना चाहिए।

प्रिय आत्मन् !

माँ जिनवाणी, जगकल्याणी, अरिहंत भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य आचरित, उपाध्याय उपासित, सर्वसाधु साधित, जीव तत्त्व प्रबोधिनी, अजीव तत्त्व विवेचनी, सर्वास्रव निरोधनी, कर्म बंध विमोचनी, संवर पथ प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्व कल्याणकारिणी, हे माँ जिनवाणी तेरी जय हो सदा विजय हो, तेरे विशाल पद में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन् !

हम और आप परम सौभाग्यशाली हैं अरहंत प्रभु की देशना, जिनवाणी रसपान का सौभाग्य प्राप्त होना यह हमारे सातिशय पुण्य उदय का सातिशय फल है पुण्यानुबंधी पुण्य का संयोजन इस आयोजन के माध्यम से हम कर रहे हैं प्रयोजन आत्म सिद्धि है आयोजन ज्ञान आराधना है।

प्रिय आत्मन् !

पुरुषार्थ-सिद्धियुपाय ग्रंथराज के माध्यम से यहाँ तक हमने सम्यक् दर्शन के विवचेन को जाना आज हम नये आयाम की ओर बढ़ रहे हैं वह है सम्यक् ज्ञान! जो हित की प्राप्ति और अहित के निवारण में समर्थ है वह ज्ञान है। जिसके द्वारा जाना जाये वह ज्ञान है। जो जानता है वह ज्ञान है। अथवा जानना मात्र ज्ञान है।

आचार्य देव लिखते हैं ज्ञान गुण है आत्मा गुणी है सम्यक्त्व गुण है आत्मा गुणी है। चारित्र गुण है आत्मा गुणी है। सम्यक्त्व आदि गुण जिनके आश्रय में हैं आपके आश्रय में सम्यक् दर्शन है, आपके आश्रय में सम्यक् ज्ञान हैं, आपकी आत्मा के आश्रय में सम्यक्चारित्र है। जिनकी आत्मा में यह तीनों समाहित है, जिनकी आत्मा में उद्भूत हुये हैं, प्रगट हो चुके हैं ऐसे आत्मा का हित करने वाले, आत्मा के हित में संलग्न, आत्म कल्याण में निरंतर लगे हुये, प्रयत्न शील, नित्य, हमेशा आत्मा के हित में जिनका उपयोग है ऐसे पुरुषों के समीप में सम्यक् ज्ञान का विचार करना चाहिये।

यत्नेन ज्ञानं।

सावधानी रूप से, एकाग्र होकर के, निश्चल होकर के, प्रयत्न करते हुये ज्ञान को प्राप्त करना चाहिये। कैसे प्राप्त करना चाहिये? बिना प्रयत्न के तो कहीं प्राप्त होता ही नहीं है। **ज्ञान भाग्य से नहीं आता है और भागने से नहीं आता है।** प्रयत्न करने से ज्ञान आता है। प्रयास करने से ज्ञान आता है। ब्रह्मचर्य और गुरु विनय दो विद्या के मंत्र। सदा करो अभ्यास तो बनोगे विद्यामंत्र। यह सूत्र है।

जैसे - नारियल में पानी पहुंचता है ऐसे ही आत्मा में प्रयत्न करने से ज्ञान प्रवेश हो जाता है। फिर नारियल में से पानी निकलता नहीं है वह नारियल का पानी ही गरी रूप बन जाता है। उसी तरह ज्ञान ही चारित्र रूप परिणमन कर जाता है। पानी था वही गरी बन गया और वही बाद में सूखने पर तेल बन जाता है।

ज्ञानी जीवों! प्रयत्न से ज्ञान पाओ आचार्य कहते हैं बिना प्रयत्न के पाओगे तो ज्ञान नहीं मिलेगा क्या? मिलेगा। दोनों तरह से ज्ञान मिलता है प्रयत्न से भी मिलता है और बिना प्रयत्न से मिलता है किन्तु यदि बिना प्रयत्न के पाओगे सुख-सुविधाओं में पाओगे तो दुख के आने पर वह ज्ञान नष्ट हो जायेगा।

आचार्य देव लिखते हैं –

सुहे भावितं णाणं, दुहे भावितं विणसति।

तहा वलं जोहि, अप्पा दुक्खेहिं भावेहिं।

यदि सुख–सुख में ही ज्ञान पाया है तो वह ज्ञान के आने पर नष्ट हो जायेगा। इसलिये आत्मा को दुखों से भावित करना चाहिये। कष्ट भी हो, दुख भी हो, पीड़ा भी हो, तो भी ज्ञान पाने में प्रयत्न शील रहना चाहिये। वर्णी जी महाराज भिण्ड, इटावा की बात है इटावा में एक सौ तीन डिग्री बुखार था फिर भी सुबह उठकर के स्वाध्याय कर रहे थे सागर से क्षमा सागर के पिताजी जीवन लाल जी सिंघई को जब समाचार मिला कि वर्णी जी महाराज अस्वस्थ हैं तो वह देखने के लिये गये वह देखने गये तो इटावा की नसिया में ठहरे थे तो उन्होंने समझा कि यहाँ थोड़ा प्रकाश आ रहा है तो यहाँ का सेवक होगा तो उसको आवाज देके बुलायेंगे तो दरवाजा खुल जायेगा तो उन्होंने आवाज दी और देखा की वह तो स्वयं वर्णी जी महाराज स्वयं स्वाध्याय कर रहे थे जिनके स्वास्थ्य को देखने आये थे वे स्वयं स्वाध्याय कर रहे थे देखा महाराज आप स्वाध्याय कर रहे हैं सुना था स्वास्थ्य ठीक नहीं है। बोले तन को अपना काम करने दो, चेतन को अपना काम करने दो। बुखार एक सौ तीन डिग्री है। बोले वह बुखार तन के लिये है तन का बुखार तन पर रहे लेकिन हमें तो अपना उपयोग बुखार पर नहीं ले जाना है। इसलिये हम अपना उपयोग समयसार में लगाये हैं ताकि उपयोग बुखार में न चला जाये।

प्रिय आत्मन् !

ज्ञान ही वशीकरण मंत्र है पंचम काल में ज्ञान ही सबसे बड़ा ध्यान है ज्ञान की आराधना से पांचों इंद्रिया वश में हो जाती हैं तीनों योग वश में हो जाते हैं जब हम शास्त्र हाथ में लेते हैं दोनों हाथ वश में हो गये। विनय पूर्वक हाथ जोड़े दोनों हाथ वश में हो गये। आंखें अक्षरों को निहार रही हैं। कान शब्दों को सुन रहे हैं। मन चिंतन में रमा हुआ है। वचन उच्चारण में लगे हैं और काय शास्त्र का स्पर्श कर रही है।

शास्त्र मन के शुद्धिकरण की प्रयोगशाला है। शास्त्र के अध्ययन से मन शुद्ध होता है।

वृद्धिं वृजति विज्ञानं।

यशस चरित निर्मलं।

ज्ञान वृद्धि को प्राप्त होता है। यश निर्मलता को प्राप्त होता है। लौकिक ज्ञान में तो जीवन बीता है लेकिन सम्यक् ज्ञान अलौकिक ज्ञान है, यह आत्म ज्ञान है। यह तत्त्व ज्ञान है। अनादि कालीन लौकिक ज्ञान की अपेक्षा यह जो जिनवाणी का ज्ञान है, यह आत्म कल्याणकारी ज्ञान कहा जाता है।

अर्थोपार्जिनी विद्या संसार में सभी विद्यालयों में मिल सकती है लेकिन आत्म कल्याणकारी विद्या किसी निर्ग्रंथ संत की देशना में या जिनवाणी में ही प्राप्त होती है।

प्रिय आत्मन् !

ज्ञानी के समीप रहोगे ज्ञान मिलेगा और अज्ञानी के समीप रहोगे अज्ञान मिलेगा। स्वर्णकार की दुकान पर जाओगे तो सोने के आभूषण मिलेंगे और लुहार की दुकान पर जाओगे तो लोहे की हथकड़ी मिलेगी।

अज्ञानोपास्तिरज्ञा, नं ज्ञानं ज्ञानिसमाश्रयः।
ददाति यत्तु यस्यास्ति, सुप्रसिद्धमिदं वचः॥ 23॥

अज्ञानी की संगति से अज्ञान बढ़ता है और ज्ञानी की संगति से ज्ञान बढ़ता है जिसके पास जो होता है वह देता है। हमें ज्ञान चाहिये कि अज्ञान चाहिये ? ज्ञान चाहिये।

Something is better then nothing.

बिल्कुल नहीं से कुछ अच्छा। अमृत को पूर्ण पीने के बाद ही क्या सुखदायी होगा ? नहीं। उसकी एक बूंद भी पीलो, तो वह सुखदायी होता है। उसी तरह से यह मत सोचो कि अब तो प्रवचन चालू हो गया, जायें कि नहीं जायें।

ज्ञानी ! नहीं ऐसा नहीं, जब भी आ गये तब भी भला, लेकिन प्रयास यह होना चाहिये कि एक भी शब्द न चूक जाये क्योंकि शब्द चूक गया तो अर्थ चूक गया। अर्थ चूक गया तो तत्त्व का ज्ञान चूक गया और तत्त्व का ज्ञान चूक गया तो आत्मा का कल्याण चूक गया। वीरसेन महाराज धवला जी में लिखते हैं।

शब्दार्थ पद प्रसिद्ध।

शब्द से ही तो पद की सिद्धि होती है। पद से अर्थ की सिद्धि होती है इसलिये शब्द भी नहीं चूकना है। प्रयत्न करोगे चूकोगे नहीं। प्रमाद करोगे चूक जाओगे। प्रमोद नहीं प्रमाद दूर करो। ज्ञान में प्रमाद नहीं।

आलस्येन कुतो विद्या

यदि आलस्य है तो विद्या कहाँ है और विद्या के बिना सुख कहां है। विद्यार्थी बनके जीओ जीवनभर विद्यार्थी बनके आओ। आप लोग आये हैं, किसी के हाथ में पेन डायरी नहीं दिखा रहा है यह आपका मांगलिक लक्षण नहीं है। एक न एक तो बात मैं ऐसी बता ही सकता हूँ जो आपके लिये जीवन भर उपयोग में आ सके इसलिये सम्यक् ज्ञानी विद्यार्थी का लक्षण है कि वह अपने हाथ में कलम और पुस्तिका लेकर चले।

योद्धा के हाथ में तलवार और ढाल होना चाहिए और विद्यार्थी के हाथ में कलम और पुस्तिका होना चाहिये। कुछ बातें प्रवचन से समझ लेना चाहिये और कुछ बातें चर्या से समझ लेना चाहिये। जब आपके गुरु जी स्वयं लेखनी और पुस्तिका लेकर आते हैं तो फिर विद्यार्थी को तो और ज्यादा आवश्यक है।

जो विद्या को चाहते हैं, वे विद्यार्थी कहलाते हैं। सम्यक्ज्ञान गुण है आपका। आपके गुण का विकास ही आत्मा के गुण का विकास है। यह भी एक प्रयत्न होना चाहिये। आम्नाय शब्द के तीन अर्थ है। परम्परा, परिपाटी और उसकी आवृत्ति करना, पुनः पुनः दुहराना, यह कहलाता आम्नाय। जैसे हम एक लेते हैं कुंद-कुंद आम्नाय। महाराज श्री आपने मगलं भगवान वीरो मगलं गौतमोगणी और सीधा कुंद-कुंद कह दिया, आपने धरसेन को छोड़ दिया, आपने पुष्पदंत भूतबली को क्यों छोड़ दिया। आपने इतने महान गणधराचार्य, पुष्पदंत भूतबली आचार्यको क्यों छोड़ दिया? सीधे कुंद-कुंद क्यों ले लिये।

भाई हमारे सामने विशेषता यह है यह रास्ता सीधा महावीर स्मृति तक जा रहा है, तो बीच में हमको किसी का घर बताने की आवश्यकता नहीं और महावीर स्मृति से दो रास्ते एक रास्ता इस तरफ दूसरा रास्ता उस तरफ जा रहा है। उसी तरह से महावीर से कुंद-कुंद तक एक ही रास्ता चला आया लेकिन जब कुंद-कुंद तक एक ही रास्ता चला आया लेकिन जब कुंद-कुंद का समय आया तो सामने दो रास्ते आ गये एक स्थूलभद्राचार्य का रास्ता आ गया और एक कुंद-कुंद का रास्ता आ गया, तो फिर स्थूलभद्र आचार्य के रास्ते से श्वेताम्बर पंथ में लोग चले गये और कुंद-कुंद के रास्ते से दिगम्बर पंथ में लोग चले गये इसलिये हमने डायरेक्ट कुंद-कुंद का स्मरण किया। यही कारण है।

जैसे – सुई में धागा पड़ा हो तो सुई गुम नहीं होती है और सुई में धागा न पड़ा हो तो सुई खो जाती है। आप लोग क्या करते हैं? यदि सिलने के बाद धागा खत्म भी हो जाये, सिलाई पूरी भी कर लें, तब भी सुई रखने के पहले उसमें धागा डाल देते हैं तो फिर वह सुई यदि कदाचित् गिट्टे से निकल भी जाये, कचड़े में भी गिर जाये तो भी हम सुई को नहीं उठाते धागा को उठाते हैं और सुई मिल जाती है। इसी तरह आचार्य कहते हैं जैसे सूत सहित सुई पहली बात तो गुमती नहीं है और कदाचित् गुम भी जाये तो वह शीघ्रता से मिल जाती है, उसी तरह जिसने जिनवाणी के सूत्रों को अपने हृदय रूपी सुई में पिरो लिया है उसकी आत्मा इस संसार में घूमती नहीं है भटकती नहीं है। कदाचित् प्रमाद वश, अज्ञान वश, पूर्वकर्म के उदय वश गुम भी जाये, भटक भी जाये तो भी कोई ज्ञानी पुरुष तत्काल उसके सूत्र का स्मरण दिलायेगा और उसको उठा लेगा सन्मार्ग पर लगा देगा।

ज्ञानी जीवो! बार-बार आचार्यगण आपके बीच में आते हैं और आपके हृदय रूपी सुई में सूत डाल देते हैं। यह सूत दिया ताकि हम और आप कहीं गुम न जायें। आचार्य महराज ने कहा मैं आपको इतने सूत्र दे रहा हूँ, इतने सूत्र दे रहा हूँ कि जितने व्यक्ति अपने हृदय में डालेंगे वे जीव संसार रूपी कचरे में गुमेंगे नहीं। यदि सुई में धागा पड़ा हो तो आसानी होती है उठाने में। इसलिये पहले मैं वह सुई उठाता हूँ जिसमें धागा पड़ा हो। बिना धागा के एक सुई को खोजने में ज्यादा समय लगता है और जिसमें धागा पड़ा हो वह सुई को खोजने में ज्यादा समय नहीं लगता है।

यदि हृदय में जिनवाणी के सूत्र पढ़े हैं तो आसानी है उठाने में। जिसको जिस कार्य में सहूलियत होती है वह व्यक्ति वह कार्य करता है। इसलिये अपने हृदय रूपी सुई में यह सूत्र डाल लेना- यह अमृतचन्द्र के सूत्र, यह कुंद-कुंद के सूत्र, यह उमास्वामी का तत्त्वार्थ सूत्र, यह सब सूत्र अपने हृदय में डाल लो ताकि रंगों के माध्यम से जल्दी पकड़ में आ जाते हैं। उसी तरह कुंद-कुंद का भी सूत्र होना चाहिये, उमास्वामी का भी सूत्र होना चाहिये।

प्रिय आत्मन् !

ज्ञानी पुरुष को समझाने में देर नहीं लगती है। अज्ञानी पुरुष हो तो बहुत समय लगता है। लाख ज्ञानी की एक बात होती है और एक अज्ञानी की लाख बातें होती हैं इसलिये अज्ञानी को समझाना कठिन है, ज्ञानी को समझाना बहुत आसान है।

ग्रंथों की भी आम्नाय होती है जैसे- पहले तत्त्वार्थ सूत्र पढ़ों तत्त्वार्थ सूत्र के बाद सर्वार्थ पढ़ो सर्वार्थसिद्धि के बाद राजवार्तिक पढ़ो यह क्रम है। इसी तरह गुरु आम्नाय से पढ़ो गुरु आम्नाय में हम

प्रवेश करेंगे तो कुंद-कुंद के ग्रंथ क्या कहते हैं। अमृतचन्द्र के ग्रंथ क्या कहते हैं फिर आगम की आम्नाय, न्याय की आम्नाय, ज्योतिष की आम्नाय, आचार्य की आम्नाय अलग-अलग विभाजन में भी हम जायें तो आम्नाय का तात्पर्य जो पढ़ा है उसको दुहराओ।

जैसे - गाय और भैंस जानवर जो हैं यह भोजन करते हैं। घास खाते हैं, भूसा खाते हैं, खाने के बाद में रौथन क्रिया करते हैं और रौथन क्रिया करने से रस तत्त्व बनता है उसी तरह गुरुदेव कहा करते हैं कि गाय-भैंस से एक चीज सीखो जैसे - भोजन करने के बाद खाली समय में वह रौथन क्रिया करते हैं उसी तरह प्रवचन सुनने के बाद, क्लास पूरी होने के बाद जो खाली समय मिले उसमें विषय को दुहराना चाहिये। चिंतन और मंथन करना चाहिये। आज गुरुदेव ने जो समझाया है, प्रवचन दिया है, उस प्रवचन में कितना तत्त्व परोसा है तो उसका रस बनेगा अकेले भोजन करने से रस नहीं बनता है।

जानवर जितना रौथन करता है उतना भोजन का रस बनता है आचार्य देव लिखते हैं बार-बार चिंतन-मंथन जितना जिनवाणी का होगा उतना ज्यादा ज्ञान का रस बनेगा।

विद्या यशस्करी पुंसाम्, विद्या श्रेयस्करी मतः।
विद्या कामदुधा धेनु, विद्या सर्वार्थ साधिनी।।

आचार्य जिनसेन स्वामी लिखते हैं विद्या यश को करने वाली है। विद्या मोक्ष को देने वाली है। विद्या कल्याण को करने वाली है। विद्या कामनाओं को पूर्ण करने के लिये कामधेनु के समान है इसलिये विद्या प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये। आदिनाथ स्वामी ने अपनी बेटी ब्राह्मी सुंदरी के लिये यही मार्ग बताया है कि विद्या आवश्यक है। ज्ञान में प्रयत्न आवश्यक है। आदिनाथ भगवान ने अपनी बेटियों को सबसे पहले शिक्षा दी है नारी शिक्षा का अभियान नारी शिक्षा के प्रवर्तक यदि कोई हुये हैं तो वे सर्वप्रथम इस युग में आदि ब्रह्मा आदिविधाता आदिम तीर्थंकर आदिनाथ भगवान हुये हैं। जिन्होंने नारी शिक्षा की ज्योति इस संसार में जलायी थी।

प्रिय आत्मन् !

आज भी जिसके नाम से ब्राह्मी सुन्दरी लिपी इस जग में जानी जाती है। अपनी दोनों बेटी को प्रयत्न पूर्वक सिखाया था इसलिये हमें भी चाहिये कि प्रयत्न करें।

"हर मौसम से लड़ना होगा........।"
इतिहास अगर कुछ गढ़ना होगा,

हर मौसम से लड़ना होगा।
चाहे दिन हो रात भले हो,
तुम्हें निरंतर बढ़ना होगा।

ठंडी आती है हमें ठंडी लग रही है नहीं पढ़ रहे हो इतिहास नहीं गढ़ पाओगे। बरसात में वर्षा सतायेगी, गर्मी में प्यास सतायेगी और ठंडी में शीत सतायेगी यदि मौसम से लड़ नहीं पाओगे तो जीवन में पढ़ नहीं पाओगे। पढ़ नहीं पाओगे तो बढ़ नहीं पाओगे। बढ़ नहीं पाओगे तो इतिहास गढ़ नहीं पाओगे कुछ समय के साथ रोते हैं और कुछ समय को पाकर इतिहास रचाते हैं।

ज्ञानी जीवों! यह मानव जीवन है। हम और उनमें जो समुद्र के किनारे और समुद्र में अंतर है क्या हम शास्त्रों को समझ सकते हैं शास्त्रों को पढ़ सकते हैं और पास वह जिनवाणी है जो अनंत जन्मों के पुण्य के बाद आज हमारे हाथ में आयी है मैं तो कहता हूँ माताओं तुम देव शास्त्र गुरु में देव का स्पर्श कर नहीं पाती, गुरु का स्पर्श कर नहीं पाती हो तो कम से कम एक जिनवाणी माँ ही तो स्पर्श मिला है तो भली भांति स्पर्श करना चाहिये और दिन में अनेकों बार जिनवाणी पढ़ना चाहिये।

प्रिय आत्मन् !

अपने हाथों से लाखों रुपये गिन लेना आसान है लेकिन जिनवाणी का एक पेज पलट लेना जन्म-जन्म के पुण्य का उदय होगा। रुपये गिनने के लिये पुण्य नहीं चाहिये लेकिन जिनवाणी को पलटने के लिये पुण्य चाहिये। पुण्य बुद्धि के बिना पुण्य कार्य नहीं होते हैं यह जिनवाणी को पढ़ने के लिये पहले पुण्य बुद्धि चाहिये। पुण्य भाव चाहिये। अहो! मेरा सौभाग्य है हमारे नगर में जिनवाणी की वाचना हो रही है ऐसा भाव करना बहुमानाचार्य कहलाता है। ग्रंथ के प्रति बहुमान होना चाहिये। सम्मान होना चाहिये। जितना जिनवाणी का सम्मान और बहुमान करोगे, उतने ज्ञानवान बनोगे।

प्रिय आत्मन् !

उपासना करना चाहिये सम्यक् तरह से उपासना, अच्छी तरह से उपासना करो जिनवाणी को उच्चासन पर विराजमान करो, उच्चासन पर भी अक्षार विराजमान करो, उसके ऊपर जिनवाणी विराजो और विधिवद समय लेकर के पढ़ो अवश्य ज्ञान आयेगा। ज्ञान कल्याणकारी परिवार में, समाज में, देश में, राष्ट्र में ज्ञान एक वह कृति है जो श्रद्धा और चारित्र दोनों को प्रकाशित करती है।

जैसे-देहली पर रखा हुआ दीपक इस कमरे को प्रकाशित करता है, उस कमरे को भी

प्रकाशित करता है, उसी तरह से ज्ञान श्रद्धा को विकसित करता है और चारित्र को भी विकसित करता है इसलिये ज्ञान चाहिये। युक्ति के द्वारा भी ज्ञान को पाना चाहिये।

प्रशम भाव का उत्पादन, प्रथमानुयोग से होता है।
संवेग भाव का संवर्धन, करणानुयोग से होता है।
अनुकंपा गुण का संरक्षण, चरणानुयोग से होता है।
आस्तिक्य भाव निज में धारण द्रव्यानुयोग से होता है।
ज्यों चार चक्र से रथ चलता, इक चक्र बिना रुक जाता है।
त्यों चारों ही अनुयोग मिले, तब पुष्पदंत पद पाता है।

जैसे–चार चक्रों से रथ चला करता है उसी तरह चार अनुयोगों से यह जिनवाणी का रथ चलता है इसलिये चारों अनुयोग अनिवार्य हैं तीनो को सम्हाल कर के चारों अनुयोगों का अध्ययन करना चाहिये तभी अशुभ योग से हटकर के शुभ योग बनेगा और शुद्धोपयोग का रास्ता निर्माण होगा।

प्रिय आत्मन् !

आचार्य कहते हैं ज्ञान के माध्यम से इस लोक में भी कल्याण होता है परलोक में भी कल्याण होता है।

जेण तच्चं बिभुज्जे, जेण सुरेण सुरज्झदि।
जेण मित्ती

जिनेन्द्र भगवान के शासन में जिससे तत्त्व का बोध होता है, जिससे चित्त का निरोध होता है, जिसमें मैत्री की प्रभावना होती है, जिसके द्वारा मोक्ष–मार्ग में अनुराग होता है वह ज्ञान है। आचार्य कहते हैं।

शीलं विषय विरागो णाणं।

विषयों से विरक्ति होना ही शील है और यही ज्ञान है। ज्ञान आत्मा का गुण है। आत्मा में ही मिलेगा, लेकिन साधन हम जैसा अपनायेंगे साध्य की सिद्धि वैसी बनेगी। यदि हम लौकिक ज्ञान के साधनों को अपनायेंगे तो लौकिक ज्ञान विकसित होगा, अलौकिक ज्ञान के साधनों को अपनायेंगे तो

अलौकिक ज्ञान होगा, यह आत्मीय ज्ञान है, यह जिनवाणी का ज्ञान आत्मीय ज्ञान है।

जीवन में ज्ञान को पाने के लिये यह तीनों प्रक्रियायें हमने दे दीं। हमें निरंतर आचार्यों के समागम को प्राप्त करना चाहिये। साधुओं के समागम को प्राप्त करना चाहिये। यह हमारे प्रयत्न पर है, इस तरह से सम्यक् ज्ञान की आराधना करना चाहिये।

आराधना चार होती हैं। दर्शन आराधना, ज्ञान आराधना, चारित्र आराधना, तप आराधना। ज्ञान की आराधना और दर्शन की आराधना यद्यपि एक साथ होती है, लेकिन फिर भी लक्षण भेद है, ज्ञान–दर्शन नहीं है। दर्शन ज्ञान नहीं है क्योंकि श्रद्धा गुण अलग है और ज्ञान गुण अलग है। इस विवक्षा में आचार्य कहते हैं।

जैसे – दीपक का जलना और प्रकाश का होना एक साथ होता है फिर भी दीपक का जलना अलग क्रिया है और प्रकाश का होना अलग क्रिया है। दोनों के लक्षण भिन्न हैं, उसी तरह से श्रद्धा गुण भिन्न है और ज्ञान गुण भिन्न है। पहले श्रद्धा होती है, बाद में ज्ञान आता है। श्रद्धा कारण है और ज्ञान कार्य है। रागी के दो शब्द हमें जीवन भर याद रहते हैं, द्वेषी का वैर जीवन भर याद रहता है लेकिन वीतराग की वाणी याद नहीं रहती है। क्योंकि याद करना कठिन नहीं है। कठिन है श्रद्धा। यदि श्रद्धा तुम्हारी उस ओर चली जाये।

यत्रैवाहितधीः पुंसः, श्रद्धा तत्रैव जायते।

यत्रैव जायते श्रद्धा, चित्तं तत्रैव लीयते॥ 95॥

जहाँ श्रद्धा जाती है, चित्त वहीं चला जाता है और जहाँ चित्त चला जाता है फिर चित्त वहीं पर लीन हो जाता है।

ज्ञानी जीवो! जब श्रद्धा बन जाती है तो व्यक्ति उसको पाने का प्रयत्न करता है, तो पहले श्रद्धा को पैदा करो कि वस्तुतः इसका मूल्यांकन क्या है? इस ज्ञान की महिमा क्या है यह साधु पधारे हैं, इनका मूल्यांकन क्या है। इस क्षण का मूल्य क्या है। इस एक घंटे का मूल्य क्या है। जिस वस्तु के प्रति श्रद्धा बन जाये, व्यक्ति उसके लिये पाने का प्रयत्न करता है। इसलिये आचार्य कहते हैं जिस सूत्र के प्रति श्रद्धा बन जायेगी, तुम उसको पाने का प्रयत्न करोगे, जीवन भर भूलोगे नहीं।

आचार्य कहते हैं – श्रद्धा कारण है ज्ञान कार्य है। पहले कारण होना चाहिये बाद में कार्य होना चाहिये हम पहले ज्ञान चाहते हैं, पहले श्रद्धा नहीं जमाते। जिस ग्रंथ को पढ़ना है उस ग्रंथ के

प्रति श्रद्धा होना चाहिये। महिमा का ज्ञान होना चाहिये। दुर्लभता का ज्ञान होना चाहिये कि कितना दुर्लभ है यह और कितना महान् है। इतना दुर्लभ है कि अनंत काल से आज हो जायेगा तो सीधे मोक्ष को दे देगा। अनादि प्राप्त हो जायेगा तो अनंत सुखी बना देगा। ज्ञान की ऐसी महिमा है कि अनंत सुख का रास्ता खोल देता है।

ज्ञानी जीवो! दुर्लभता जानो और महानता जानो, यह वस्तु कितनी दुर्लभ है और कितनी महान् है। यह क्षण कितना दुर्लभ है और कितना महान् है। यह प्रवचन कितना दुर्लभ है कितना महान् है। यदि इन दो बातों पर विचार करोगे तो तुम दौड़े-दौड़े आओगे। ज्ञानी मैं अमृत दे रहा, तूं ले नहीं रहा। दूसरे को चाय पत्ती देने में लगा है।

प्रिय आत्मन् !

आचार्य कहते हैं पूजा करोगे, श्रद्धा गुण का विकास होगा। प्रवचन सुनोगे तो ज्ञान गुण का विकास होगा।

देव शास्त्र गुरु रतन शुभ,

तीन रतन करतार।

देव से सम्यक् दर्शन रत्न, शास्त्र से सम्यक् ज्ञान रत्न और गुरु से सम्यक् चारित्र रत्न मिलता है। अकेले देव की पूजा करोगे सम्यक् दर्शन हो जायेगा, मंदिर में जिनवाणी पढ़लोगे, ज्ञान हो जायेगा लेकिन गुरु से सीखोगे तो तीनों होगें। दर्शन भी होगा, सम्यक् ज्ञान भी होगा और सम्यक् चारित्र भी होगा। गुरु के मिलने पर रत्नत्रय मिल जाता है इसलिये ज्ञानी जीवो! गुरु के समीप बैठना, श्रद्धा को बढ़ाना है, गुरु के पास आना ज्ञान को बढ़ाना है और गुरु के पास आना ही चारित्र को प्रकटाना है। गुरु के पास आने से तीनों गुण प्रकट होते हैं।

प्रिय आत्मन् !

यह भिन्नपना भी है। हम ज्ञान भी बढ़ाते हैं, श्रद्धा भी बढ़ाते हैं, चारित्र भी बढ़ाते हैं। अन्य जगह यदि हम विद्वानों से सीखते हैं, तो चारित्र विकसित नहीं होता है। स्वयं पढ़ते हैं तो चारित्र विकसित नहीं होता है लेकिन गुरु के मुख से पढ़ते हैं तो चारित्र की ओर कदम बढ़ते हैं क्योंकि चारित्रवान पुरुष पढ़ायेगा तो चारित्र की ओर कदम अवश्य बढ़ेंगे, इसलिये आज का यह गाथा सूत्र

कहता है कि अपने जीवन में ज्ञान की आराधना इष्ट है और जो इष्ट है, उसे पाना ही चाहिये, उसे पाने के लिये सम्यक् ज्ञान को पाना चाहिये।

अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात्।
निः सन्देहं वेदै यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः॥ 42॥

न्यूनता रहित, अतिरिक्तता रहित, जैसा का तैसा, विपरीतता से रहित, संदेह से रहित इन पांचों बातों से रहित, ऐसा ज्ञान सम्यक्ज्ञान कहा है। ऐसे सम्यक् ज्ञान में चार अनुयोग होते हैं, वे चारों अनुयोग आत्म कल्याणकारी हैं। प्रथमानुयोग को कहानी किस्से में न टालो वह भी बोधि समाधि का खजाना है इसलिये उसका भी अच्छा अध्ययन करें।

प्रथमानुयोग संबल देता है, सहारा देता है। करणानुयोग परिणामों को निर्मल करता है। चरणानुयोग आचरण सिखाता है और द्रव्यानुयोग संत का भाव लाता है। अपने जीवन को सम्हालने के लिये आज हमने ज्ञान के विषय में आपको बताया है। जिन-जिन महापुरुषों ने ज्ञान को पाया है, वे आगे के लिये दीपक बने हैं।

प्रिय आत्मन् !

समुद्र को पूरा पार नहीं किया जाता है, मात्र अपनी भुजाओं से रास्ता बनाते जाओ पार हो जाओ, तो भी पार समुद्र ही कहलाता है। उसी तरह से ज्ञान तो समुद्र है। आप एक शास्त्र को सीखें तो भी कल्याण होगा। आचार्य शांतिसागर महाराज ने आत्मानुशासन ग्रंथ को एक सौ आठ बार पढ़ा। पंडित रतन चंद्र जी इंदौर उन्होंने पद्म पुराण के लिये एक सौ आठ बार पढ़ा।

प्रिय आत्मन् !

ज्ञान फलं सोख्यं।

ज्ञान ही सुख को देगा। महाराज श्री ने स्वाध्याय के विषय में बताया, तो ज्ञान के पांच साधन हैं। वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय, धर्मोपदेश। निर्दोष ग्रंथों को पढ़ना यह वाचना कहलाती है। जिज्ञासा के विषय में पूंछना, ऐसा नहीं कि विवाद के लिये पूंछना, समाधान के लिये पूंछना विवाद के लिये नहीं पूंछना पृच्छना कहलाता है। पाठ को शुद्ध पढ़ना आम्नाय हैं। चिंतन करना विषय को दौहराना अनुप्रेक्षा है धर्म के उपदेश देना धर्मोपदेश है। इस तरह से सम्यक्ज्ञान के पांच अंग है।

यदि हम जिनवाणी का चिंतन करते हैं, तो जिनवाणी का चिंतन हमें समोशरण की ओर ले जाता है और जब वही सेठ सामायिक में जल की चिंता कर रहा था, तो जलाशय में पहुंच गया और ज्ञान की चिंता करने लगा, तो वह समोशरण को पहुंच गया।

जीवन में ज्ञान दान के लिये है, मान के लिये नहीं। जितना बने ज्ञान का दान दो। ज्ञान का मान न हो। ज्ञान मान के लिये नहीं है, ज्ञान ज्ञान के लिये होना चाहिये। ज्ञान बढ़ाओ, आत्मा का कल्याण होगा। ज्ञान से सबका कल्याण होगा। चारित्र से मेरा कल्याण होगा लेकिन ज्ञान से समाज सृष्टि का कल्याण होगा। यदि भगवान महावीर स्वामी के शास्त्र को बढ़ाना है, तो ज्ञान होना आवश्यक है।

माँ का दूध शिशु को बलवान बनाता है और जिनवाणी का ज्ञान शिष्य को भगवान बनाता है, इसलिये ज्ञान में आओ, निरंतर ज्ञान की आराधना करते रहो।

ॐ नमः सिद्धेभ्य।

✻ ✻ ✻ ✻

दर्शन और ज्ञान में भेद

पृथगाराधनमिष्टं दर्शनसहभाविनोऽपि बोधस्य।
लक्षणभेदेन य तो नानात्वं संभवत्यनयोः॥ 32॥

अन्वयार्थ - (दर्शनसहभाविनः अपि) सम्यग्दर्शनका सहभावी होने पर भी (बोधस्य) सम्यग्ज्ञान का (पृथगाराधनं) जुदा आराधन करना अर्थात् सम्यग्दर्शन से भिन्न प्राप्ति करना (इष्टं) इष्ट है, (यतः) क्योंकि (अनयोः) सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में (लक्षणभेदेन) लक्षण के भेद से (नानात्वं) नानापन अर्थात् भेद (संभवति) घटित होता है।

दोनों में कार्य-कारणभाव

सम्यग्ज्ञानं कार्यं सम्यक्त्वं कारणं वदंति जिनाः।
ज्ञानाराधनमिष्टं सम्यक्त्वानंतरं तस्मात्॥ 33॥

अन्वयार्थ - (जिनाः) जिनेन्द्र देव (सम्यग्ज्ञानं) सम्यग्ज्ञानको (कार्य) कार्य और (सम्यक्त्वं) सम्यग्दर्शन को (कारणं) कारण (वदन्ति) कहते हैं, (तस्मात्) इसलिए (ज्ञाना-राधनं) सम्यग्ज्ञान की आराधना (सम्यक्त्वानंतरं) सम्यग्दर्शन के पीछे (इष्टं) ठीक है।

प्रिय आत्मन् !

माँ जिनवाणी, जगकल्याणी, अरिहंत भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य आचरित, उपाध्याय उपासित, सर्वसाधु साधित, जीव तत्त्व प्रबोधिनी, अजीव तत्त्व विवेचनी, सर्वास्रव निरोधनी, कर्म बंध विमोचनी, संवर पथ प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्व कल्याणकारिणी, हे माँ जिनवाणी तेरी जय हो सदा विजय हो, तेरे विशाल पद में श्रुत सूर्य का उदय हो।

प्रिय आत्मन् !

श्रद्धा कारण है, ज्ञान कार्य है। हृदय में श्रद्धा उत्पन्न होती है मस्तिष्क में ज्ञान उत्पन्न होता है। श्रद्धा हृदय का विषय है, ज्ञान मस्तक का विषय है। यदि तुम्हारा हृदय हो, तो ज्ञान से कार्य कर सकते हो। हृदय ही नहीं है तो मस्तिष्क कार्य नहीं कर सकता है। पहले श्रद्धा चाहिये बाद में ज्ञान कार्य करेगा। यदि श्रद्धा सम्यक् होती है, तो ज्ञान सम्यक् हो जायेगा और श्रद्धा मिथ्या हो जाती है तो ज्ञान मिथ्या हो जाता हैं।

प्रिय आत्मन् !

प्रकाश का कोई रंग नहीं है। जैसा कांच हो जाता है, प्रकाश उस रंग का हो जाता है। हरा कांच लगा दिया, प्रकाश हरा हो गया। कांच नीला लगा दिया, प्रकाश नीला हो गया कांच पीला लगा दिया प्रकाश पीला हो गया। जब तक सी.एफ.एल. नहीं आये थे तभी तक यह समझते थे कि प्रकाश पीला होता है, लेकिन जब से ट्यूब लाईट, सी.एफ.एल. आया, तो बच्चा समझने लगा कि प्रकाश सफेद भी हो सकता है।

ज्ञानी जीवो! यही स्थिति है श्रद्धा की। कांच बदल जाये, तो ज्ञान सम्यक् हो जाये और श्रद्धा का कांच ब्लेक हो गया, विपरीत हो गया तो फिर ज्ञान भी विपरीत होता है। वस्तुतः श्रद्धा उत्पन्न पहले की जाती है, ज्ञान बाद में पैदा किया जाता है। हमारी स्थिति यह है कि प्रयास ज्ञान की ओर जाता है और श्रद्धा की ओर कम हैं, जबकि कारण सम्यक् श्रद्धा हो जाये, तो ज्ञान सम्यक् हो जाये।

प्रिय आत्मन् !

व्यवस्था मत बनाओ, स्वयं व्यस्थित हो जाओ, व्यवस्था हो जायेगी। श्रद्धा जिस ओर की होगी, ज्ञान उस ओर का होगा। श्रद्धा की दिशा होती है और ज्ञान की दशा होती है। श्रद्धा में जो आता है ज्ञान, फिर उस ओर चलता जाता है।

आचार्य कहते हैं श्रद्धा कारण है –

सम्यक् ज्ञानं कार्यं सम्यक्त्वं कारणं।

श्रद्धा, विश्वास, रुचि, प्रतीति, लगन, निष्ठा, जिस दिशा में होगी, जिस दिशा की होगी, जिस क्षेत्र की होगी, जिस काल की होगी, जिस विषय की होगी, उसकी ओर हमारे ज्ञान पाने के

प्रयास होंगे। पहले श्रद्धा में क्या आया, यह अनिवार्य है। यदि श्रद्धा में आ गया, जम गया। जिसे हम बोलते हैं श्रद्धा, उसे आप बोलते हैं लगन।

आचार्य कहते हैं, जितनी गहरी आस्था होगी, जितनी गहरी श्रद्धा होगी, उतना गहराई से ज्ञान होगा। जड़ जितनी गहरी होगी, वृक्ष उतनी ऊँचाई तक जायेगा। नींव जितनी गहरी होगी महल उतनी ऊँचाई तक जा सकता है। श्रद्धा की गहराई कितनी है? समय सीखने में तब अधिक लगता है जब श्रद्धा कमजोर होती है, तो सीखने में समय ज्यादा लगता है और जब लगन मजबूत हो, तो सीखने में समय कम लगता है।

जिसे कार्य करने के प्रति श्रद्धा जाग गयी कि यह कार्य करना ही हैं तो फिर सम्पूर्ण जानकारी वह ले लेगा। आचार्य कहते हैं ज्ञान आचरण के लिये है। आचरण के लिये जो ज्ञान है तो आचरण का ज्ञान आचरण की पुस्तक पढ़ने से आता है और संयम का शास्त्र हो, और संयमी गुरु हो तब भी संयम का ज्ञान हो सकता है। ज्ञान संयम के लिये है।

जिस क्षेत्र में आपको जाना है उस क्षेत्र का ज्ञान होना चाहिये। ज्ञान संयम के लिये है। जब संयम के लिये ज्ञान पाना है तो संयम के शास्त्रों को पढ़ो। संयमी के शास्त्रों को पढ़ो, संयमी अपने जीवन के सम्पूर्ण अनुभव अपने शास्त्र में लिखता है।

आचार्य महाराज विहार करते हुये जाते हैं और अचानक संध्या के समय कुछ साधु कहते हैं यही ठहर जाओ आचार्य महाराज कहते नहीं यहाँ शमसान है, यहाँ नहीं ठहरोगे? क्योंकि हमारे संघ में कुछ बाल साधु हैं, वे भयभीत हो जायेंगे, वे डर जायेंगे, इसलिये शमसान में नहीं ठहरेंगे। फिर आगे चलकर के अन्यत्र स्थान पर ठहरते हैं। आचार्यों ने अपने जीवन के अनुभव को शास्त्रों में लिखा है।

एक दिन बिहार करता हुआ संघ बगीचे में पहुंचता है, तो संघ का भाव होता है कि यह बगीचा बहुत सुन्दर है सुगंधित फूल यहाँ लगे हैं और यहाँ सबकुछ ध्यान-सामायिक कर सकते हें आचार्य महाराज देखते हें कि बगीचा तो है पर बगीचे में आने वाली स्त्रियाँ है, बगीचे में आने वाले जो पुरुष है इनके आने जाने से साधुओं के चित्त में क्षोभ हो सकता है, इसलिये साधुओं से कहते हैं कि यह बगीचा हम लोगों के ठहरने के लिये नहीं हैं, यह बगीचा तो श्रावकों के भ्रमण के लिये है। अपन तो श्रमण हैं, अपन थोड़ा सा और चलें और कहीं ठहरेंगे।

हमारे आचार्यों ने पर्वत की चोटियाँ चुनी हैं, कोई बाग-बगीचा नहीं चुने हैं। हम संयमी के शास्त्रों को पढ़ेंगे तो संयम की भावनायें जागृत होगी और असंयमी के शास्त्रों को पढ़ेगे तो असंयम की भावनायें जागृत होगीं। जैसा पढ़ोगे वैसा गढ़ोगे। ज्ञान ही तो अनुभव है, इसलिये ज्ञान संयम के लिये है, ज्ञान आचरण के लिये है, तो आचरण का ज्ञान होना चाहिये। हमारे आचार्य कहते हैं –

वक्त्री प्रमाणायात वचनं प्रमाणं।

वक्ता की प्रमाणता से वचनों में प्रमाणता आती है। संयमी के शास्त्र अपने संयमी जीवन के अनुभवों का कोष हुआ करते हैं। यदि जीवन में संयम के साथ चलना है तो हमें निरंतर संयमी पुरुषों के कथानक पढ़ना चाहिये।

गुरुदेव विरागसागर जी महाराज लिखते हैं कि बंदर स्वभाव से लड़ते हैं लेकिन फिर भी विशेषता है कि एक साथ में रहते हैं, उसी तरह हम परस्पर में कितने भी लड़लें झगड़ लें, पर बंदरों से इतनी शिक्षा जरूर लें कि एक साथ रहें। गुरुदेव विरागसागर जी लिखते हैं कि पंथ मोक्षमार्ग नहीं है पंथ तत्कालिक विचार धाराओं का समागम है। पंथ त्रैकालिक नहीं है, पंथ शाश्वत नहीं है। पंथ कषायों का फेन है, यह सदा नहीं रहता। साधु संत पंथ से दूर रहकर के स्वयं कितने विशाल ह्रदय के होते हैं कि वह मोक्ष मार्ग को ही प्रकाशित करते हैं, पंथ को प्रकाशित नहीं करते हैं।

संयमी जीवन के अनुभवों को चाहे आप व्यक्ति से पढ़ें आचार्य विद्यासागर जी मूकमाटी में लिखते हैं राही चलता चल। यदि कोई तुझे उलटा भी करे तो भी चलता चल तू उलटे होने पर भी हीरा ही हो जायेगा। राही तू राह पर चल, तुझे कोई उलटा भी कहे तो तू हीरा ही तो बनेगा। जीवन खराब हो अन्यथा राख तो बनना ही है।

ज्ञानी जीवो! आप पूड़ियाँ खाते हैं, बहुत नरम-नरम होती हैं लेकिन वह नरम पूड़ियाँ भी कहती है कि न-रम इन पूड़ियों में मत रमो मत रमो। रसना कहती है रस-ना। रसना में रस नहीं है। संयमी पुरुषों के शास्त्रों पर ध्यान दो। हमने अनुभव किया है कि शास्त्र में क्या लिखा है मैं इस दृष्टि से शास्त्र पढ़ता हूँ कि आचार्य ने अपने जीवन में कैसा जीया है। आदिपुराण को जब पढ़ेगें तो एक हजार साल पहले संघ की व्यवस्था, वहाँ की राजनैतिक व्यवस्था, वहाँ की सामाजिक व्यवस्था, वहाँ की धार्मिक व्यवस्था कैसी थी, ग्रामीण व्यवस्थायें किस तरह चला करती थी और संघ की व्यवस्थायें, जिनालय की व्यवस्थायें कैसे चलती थी, उन सबका चित्रण एक ग्रंथ में हुआ करता है। क्योंकि कवि अपनी कल्पना के साथ प्रकृति के बाहर नहीं जा सकता, समय के बाहर नहीं जा सकता। यह माना कवि ह्रदय प्रधान होता है।

यह भी माना कवि के मुख में तीन लोक और तीन काल समाये रहते हैं। यह भी माना कि कवि अपनी कल्पना से सूरज और चांद से भी ऊपर जा सकता है, किन्तु कवि समय के सापेक्ष जीयेगा।

जब हम आदि पुराण को पढ़ते है तो जिनसेन के अनुभव में खो जाते हैं। जब हम पद्मपुराण को पढ़ते हैं तो रविषेण की प्रवचन शैली क्या थी। रविषेण की उपदेश कला क्या थी। रविषेण अपने समय के श्रावकों को कैसे समझाते थे। सबसे बड़ा ज्ञान मिलता है प्रथमानुयोग से, जिसे कोई व्यक्ति महत्व नहीं देता है लेकिन कुशल प्रवचनकार प्रथमानुयोग को ही अपनाता है। बाद में भले ही वह द्रव्यानुयोग पर चला जाये, उन आचार्यों ने अपने समय के श्रोताओं को किस रूप में समझाया है।

ज्ञानी जीवो! हम जब पद्मपुराण को देखते हैं तो रविषेण आचार्य यह लिखते हैं कि एक साल के लिये रात्रि भोजन त्यागता है तो उसे छह महीने के उपवास का फल मिलता है। आचार्य कहते हैं यदि कोई मात्र छह घंटे के लिये रात्रि भोजन त्यागता है तो उसे तीन महीने के उपवास का फल मिलता है। यदि तीन घंटे के लिये रात्रि भोजन का त्याग करता है तो डेढ़ महीने के उपवास का फल मिलता है यदि एक घंटे के लिये प्रतिदिन रात्रि में भोजन त्याग करता है तो उसे पन्द्रह दिन के उपवास का फल मिलता है।

आचार्य महाराज अपने समय के श्रावकों को समझाते थे कि श्रावकों! आप रात्रि भोजन करते हो, पर रात्रि भर भोजन नहीं करते हो। आचार्य रविषेण स्वामी कहते हैं भैया तू एक बजे रात से दो बजे रात तक का रात्रि भोजन त्याग सकते हो? महाराज एक बजे से दो बजे तक तो हम सोते रहते हैं बेटा तुम तो सोते हो लेकिन मेरी बात मान सकते क्या? तुम त्याग कर दो एक बजे से दो बजे तक हमारा रात्रि भोजन त्याग इससे क्या होगा एक साल में तीन सौ पैंसठ घंटे होंगे त्याग के तो पन्द्रह दिन के उपवास का फल आपके खाते में आयेगा।

प्रिय आत्मन् !

जो रात्रि भोजन त्यागता है, वह प्रकाश युक्त स्वर्ग में पैदा होता है, जो रात्रि भोजन करता है वह अंधकार वाले नरकों में पैदा होता है। इसलिये अंधकार में पैदा होना हो, तो अंधकार के समय खाओ और प्रकाश में पैदा होना हो तो दिन में भोजन करो।

प्रिय आत्मन् !

नदी बहेगी कहाँ से, दोनों तटों के बीच से, ऐसे लेखक लिखेगा। कहाँ से वे अनुभव के मोती हम आचार्यों के ग्रंथों से पाते हैं। हमें कुंद-कुंद के अनुभव को पढ़ना है तो समयसार को पढ़ना होगा। समंतभद्र के अनुभव को पढ़ना है तो श्रावकाचार को पढ़ना होगा। रविषेण के अनुभव को पढ़ना है तो राम को पढ़ना होगा। यह बात अलग है लेकिन रविषेण के स्वयं के अनुभव क्या थे। एक महापुरुष के विषय में रविषेण कितनी अच्छी सोच रख सकते हैं, यह आप पद्मपुराण में पढ़िये।

न तुमने राम को देखा, न मैंने राम को देखा। न तुमने महावीर को देखा, न मैंने महावीर को देखा, लेकिन सकल कीर्ति आचार्य महावीर स्वामी के विषय में क्या चिंतन रखते हैं। रविषेण सीता के विषय में क्या चिंतन रखते हैं। वस्तुतः न तुलसी ने राम को देखा, नहीं देखा, लेकिन तुलसी के ज्ञान की आंख कहां तक देखती है।

ज्ञानी जीवो! ज्ञान की आँख आपके दूरबीन से दूर तक देखी जा सकती है। दूरबीन की सीमा है लेकिन ज्ञान की आंख की सीमा नहीं। त्रिकालदर्शी, त्रिलोकवर्ती पदार्थों को ज्ञान की आंख देख लिया करती है। एक महापुरुष की महानता का वर्णन करते, जब लिखते तो वे आचार्य अपने जीवन के समग्र अनुभवों को श्रद्धा और ज्ञान को उतार करके रख देते हैं।

प्रिय आत्मन् !

भाई कैसा होना चाहिये? आप पद्मपुराण पढ़ो भाई का चित्रण मिल जायेगा। भाभी कैसी होनी चाहिये? आप सीता का चित्रण पढ़ो पद्मपुराण में मिल जायेगा। घर और परिवार को संचालित करने की कला यदि सीखना है, तो पद्मपुराण से सीखो। एक सिद्धचक्र विधान कराने का जितना पुण्य होता है, उतना ही फल एक बार पद्मपुराण पढ़ने का होता है।

प्रिय आत्मन् !

श्रद्धा शास्त्रों के प्रति जायेगी, तो शास्त्रों से ज्ञान पाने की भावना जागेगी। श्रद्धा में जाग गया कि मुझे राजनीति सीखना है, तो आर्ट ले लिया। श्रद्धा में जाग गया कि मुझे डॉक्टर बनना है तो साइन्स ले लिया। जैसी श्रद्धा जागी है, उस विषय की ओर आप मुड़ गये। इसी तरह श्रद्धा में जागा है कि मुझे मुनि बनना है तो मुनियों की किताबें पढ़ें। श्रद्धा में जागा है कि मुझे उत्तम श्रावक बनना है तो श्रावकाचारों को पढ़ें। श्रद्धा में आया कि मुझे सम्यक्दृष्टि, सम्यक् ज्ञानी बनना है तो सम्यक्

दृष्टि और सम्यक् ज्ञानियों के शास्त्रों को पढ़ें। श्रद्धा में है कि मुझे अरहंत और सिद्ध बनना है तो अरहंत के ग्रंथों को पढ़ो।

प्रिय आत्मन् !

श्रद्धा के बाद ज्ञान आता है, आपकी श्रद्धा धर्म ग्रंथों के प्रति जायेगी तो ज्ञान भी धर्म ग्रंथों का होगा और श्रद्धा उपन्यासों के प्रति चली गयी, रूचि उपन्यास में चली गयी, लगन उपन्यास में चली गयी। श्रद्धा भक्तामर सुनने में चली गयी तो भक्तामर सुनोगे और श्रद्धा फिल्मी गाना सुनने में चली गयी तो वह सुनोगे। इसलिये श्रद्धा पहले कारण बनती है और ज्ञान कार्य बनता है। जैसा कारण होगा कार्य वैसा होगा। कार्य को मत बदलो, कारण को बदलो। कारण अनुकूल होगा, कार्य अनुकूल हो जायेगा।

श्रद्धा बदलो, जीवन बदल जायेगा। जीवन बदलने के लिये कितना कठिन कार्य है। जैसे कोई व्यक्ति चाहे कि हम ट्रेन को उठाके रख दें तो नहीं रख पायेगा लेकिन जरा सा प्रयत्न करे कि पटरी को बदल दे तो पूरी ट्रेन बदल जायेगी। उसी तरह श्रद्धा की पटरी को बदलो तो ज्ञान का जीवन बदल जायेगा। श्रद्धा का पग जहाँ जाता है, जीवन की रेल वहीं चली जाती है।

जीवन को बदलना कहो तो बहुत कठिन चीज है। जैसे–रेल को उठाना कठिन है और कहो तो बहुत आसान है जैसे कि पटरी को बदलना। मात्र पटरी को चेंज करना है जीवन पूरा चेंज हो जायेगा। उसी तरह जब तक हम धर्म से नहीं जुड़ते हैं, तब तक जीवन का सार समझ में नहीं आता है लेकिन एक बार धर्म की पटरी पर तो आओ, धर्म की लाइन पर तो आ जाओ, फिर देखो तुम्हारा जीवन सुख को प्राप्त करेगा।

प्रिय आत्मन् !

कारण पहले खोजो कार्य बाद में खोजो। लकड़ी जल रही है धुंआ निकल रहा है लेकिन धुंआ निकल रहा है, जरूर लकड़ी गीली होगी। जब लकड़ी गीली होती है तो धुंआ निकलता है।

ज्ञानी जीवो! अनुकूल कारणों को जुटाओ प्रतिकूल कारणों को हटाओ यही कार्य की सिद्धि का उपाय है। तदनुकूल पुरुषार्थ करो। हमें धर्म की राह पर चलना है, संयम की राह पर चलना है तो हमेशा संयमी के शास्त्रों को, संयमी की संगति को और संयमी के अनुभवों को प्राप्त करें।

आचार्य भगवान से मूलाचार में पूछा कि ब्रह्मचर्य क्या है? आचार्य ने लिखा गुरुकुल में रहना ब्रह्मचर्य है।

प्रिय आत्मन् !

सम्यक् ज्ञान तो कार्य है, स्वाध्याय करना कार्य है, प्रवचन सुनना संसार के सम्पूर्ण कार्यों में सबसे श्रेष्ठ कार्य है।

सम्यक् ज्ञानं कार्यं।

यह सम्यक् ज्ञान है और सम्यक् ज्ञान कार्य है। यह ऐसा कार्य है कि सम्यक् ज्ञान का कार्य एक बार कर लोगे तो निर्वाण सुख को प्राप्त कर लोगे कि यह ऐसा कार्य है, अनंत सुख को देने वाला कार्य है। आपके संसार के कार्य तो पाप का बंध कराने वाले कार्य हैं लेकिन यह प्रवचन का कार्य संवर-निर्जरा कराता है, यह बंध नहीं कराता है, यह आपको निर्बद्ध कर देता है।

जैसे - बैल की नाक में नकेल डाल देते हैं तो वह बैल आसानी से खिंचा चला आता है फिर पीछे से कुछ करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। उसी तरह से श्रद्धा की नकेल डाल दो। प्रवचन का कार्य आत्मा का कार्य है। नहाना शरीर का कार्य है, कपड़े धोना शरीर का कार्य है, लेकिन प्रवचन आत्मा का कार्य है। यह वह कार्य है जो आत्मा का कल्याण करता है और ऐसा कार्य है जो कभी नहीं किया।

किसी ने जिस कार्य को नहीं किया है वह कार्य कठिन प्रतीत होता है, लेकिन ध्यान रखो - कठिन कितना भी हो, लेकिन महान है तो महान बनायेगा। यह सम्यक् ज्ञान का कार्य वह कार्य है जिसे कभी महावीर ने किया था जिसे कभी गौत्तम गणधर ने किया था, ये वह कार्य जो कभी राम करते थे जो कभी आदिनाथ - पारसनाथ करते थे।

इस कार्य के लिये आदिनाथ स्वामी ने किया है, जिस कार्य के लिये पारसनाथ ने किया है, जिस कार्य के लिये महावीर ने किया है, इन्द्रभूति गौतम ने किया है, राजा श्रेणिक ने किया है श्रेयांस-सोम ने किया है। चंदनबाला-सीता ने किया है। द्रोपदी और अंजना ने किया है। यह वह कार्य है, ऐसे महान कार्य को करा रहा हूँ।

ज्ञानी! सच्चा कार्य तो वही है जो आत्मा का कल्याण कर दे, वही कार्य संसार का सर्वोत्कृष्ट कार्य है। मकान का काम तो पाप का काम है और दुकान का काम भी पाप का काम है

लेकिन सम्यक् ज्ञान का काम, प्रवचन का काम, पुण्य का काम है। धर्म का कार्य सुख, शांति और समृद्धि का काम है।

ऐसा कार्य जिसे किया जाये। वह आचार्य विरागसागर जी कर रहे हैं, जिस कार्य को विशुद्धसागर जी कर रहे हैं, ऐसा महान कार्य है और फिर भी कुछ लोग कहते हैं महाराज प्रवचन नहीं करो। ज्ञानी! जो कार्य भगवान ने किया है उस काम को तुम मना कर रहे हो। जो कार्य भगवान ने करने की आज्ञा दी, उस कार्य को आप मना करते हो।

प्रिय आत्मन्!

पल भर का प्रवचन पल्यों के लिये सुखी कर देता है। जब नाग और नागिन दो मिनिट णमोकार सुनकर के असंख्यात वर्षों के लिये सुखी हो सकते हैं, तो तुम एक घंटे का प्रवचन सुनकर के क्या सुखी नहीं हो सकते हो? हो सकते हैं। वह मरणासन कुत्ता जीवंधर के मुख से णमोकार मंत्र सुनता है, तो वह देव गति को पा सकता है, तो आप मेरे मुख से प्रवचन सुनकर क्या देव गति नहीं पायेंगे? पायेंगे। जब वह बैल पद्मरूचि सेठ के मुख से णमोकार मंत्र सुनकर के सुग्रीव हो सकता है तो हम भी प्रवचन सुनकर के उत्कृष्ट गति पा सकते हैं।

प्रिय आत्मन् !

कभी न कभी योग संयोग ऐसे जुड़ते हैं कि अनुकूल व्यक्ति अनुकूल से जुड़ जाते हैं और प्रतिकूल व्यक्ति प्रतिकूल से जुट जाते हैं यह लोह चुम्बक न्याय सदा से चला आया है।

आत्म ज्ञानात् परम कार्यं।

आत्म ज्ञान परम कार्य है, ऐसा परम कार्य जिसके विषय में आचार्य कहते हैं उसी को बोलो आपने प्रवचन सुना, अबकी बार किसी और को सुनाओ, श्रद्धा का नंबर देखकर के ज्ञान की चाबी लगती है और चारित्र का ताला खुल जाता है। ज्ञान की चाबी से श्रद्धा का ताला खुल जाता है।

जैसा लक्ष्य होगा वैसा लक्षण होगा। जैसी श्रद्धा होगी वैसा ज्ञान होगा। ज्ञानी यह उधार नहीं दे रहे, पर उदार हृदय से दे रहे हैं। जो उत्तम सुख में धारण करा दे वह धर्म है। सम्यक् ज्ञान कार्य है, सम्यक् ज्ञान रत्न है, सम्यक् ज्ञान पूजा है, सम्यक् ज्ञान प्रार्थना है, जिसकी पूजा करना मैं उसी को तो सुना रहा हूँ। सम्यक् ज्ञान वितरण केन्द्र है, यहाँ पर ज्ञान वितरण हो रहा है।

प्रिय आत्मन् !

तुम्हारा दाल चावल तो एक ही दिन का पेट भरेगा, लेकिन यहाँ सबके लिये परमिट है अनलिमिटेड है। जितना ले सको लो और जितना ग्रहण कर सकते हो करो, यह ऐसा है कि एक बार खाओगे, तो जीवन भर की क्षुधा मिट जायेगी।

सम्यक् ज्ञान कार्य है जिसे समय देना अनिवार्य है। यह ज्ञान की आराधना है। जब हम धन में लग जायेंगे तो आराधना में नहीं लग पायेंगे। पहले आराधना बाद में धन।

ज्ञान की आराधना ही भगवान की आराधना है। ज्ञान की आराधना शास्त्र की आराधना है और ज्ञान की आराधना गुरु की आराधना है। ज्ञान आत्मा का गुण है, इसलिये ज्ञान गुण की आराधना आत्मा के गुण की आराधना है, आत्मा की आराधना है। आत्मा की आराधना में प्रमोद होना चाहिये, प्रमाद नहीं।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

✻ ✻ ✻ ✻

समकाल में होने वाले कार्य-कारण का दृष्टांत

कारणकार्यविधानं समकालं, जायमानयोरपि हि।

दीपप्रकाशयोरिव सम्यक्त्वज्ञानयोः सुघटं ॥34॥

अन्वयार्थ - (समकालं) समानकाल में अर्थात् एक काल में (जायमानयो: अपि) उत्पन्न हुए भी (सम्यक्त्वज्ञानयो:) सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में (कारणकार्यविधानं) कार्य-कारणभाव (दीपप्रकाशयो: इव) दीप और प्रकाश के समान (सुघटं) भले प्रकार घटित होता है।

कर्तव्योध्यवसायः सदनेकांतात्मकेषु तत्त्वेषु।

संशयविपर्ययानध्यवसायविविक्तमात्मरूपं तत्॥35॥

अन्वयार्थ - (सदनेकांतात्मकेषु) समीचीन अनेकान्तस्वरूप (तत्वेषु) तत्वों में (अध्यवसाय:) यथार्थ बोध (कर्तव्य:) प्राप्त करना चाहिए, (तत्) वही (संशयविपर्ययानध्यवसाय विविक्तं) संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय से रहित (आत्मरूपं) आत्मा का स्वरूप है।

* * * *

सम्यग्ज्ञान के अष्ट अंग

ग्रन्थार्थोभयपूर्णैः काले विनयेन सोपधानं च।

बहुमानेन समन्वितमनिन्ह्वं ज्ञानमाराध्यम्।।36।।

अन्वयार्थ - (काले) अध्ययनकाल में (विनयेन) विनयपूर्वक (बहुमानेन समन्वित) अतिशय सम्मान के साथ अर्थात् आदर भक्ति एवं नमस्कार क्रिया के साथ (ग्रंथार्थोभयपूर्ण) ग्रंथ-शब्द से पूर्ण अर्थ से पूर्ण और शब्द अर्थ दोनों से पूर्ण (सोपधानं च) धारणा सहित अर्थात शुद्धपाठ सहित (अनिहवं) बिना किसी बात को छिपाए (ज्ञानं) सम्यग्ज्ञान (आराध्यं) प्राप्त करना चाहिए।

प्रिय आत्मन् !

माँ जिनवाणी! जगकल्याणी! अरिहंत भाषित, सिद्ध-सिद्धित, आचार्य आचरित, उपाध्याय उपासित, सर्वसाधु साधित, जीव तत्त्व प्रबोधिनी, अजीव तत्त्व विवेचनी, सर्वास्रव निरोधिनी, कर्म बंध विमोचनी, संवर पथ प्रदायिनी, निर्जरा-निर्झरणी, मोक्ष-महल धारिणी, पाप-ताप-संताप हारिणी, विश्वकल्याण कारिणी, हे जिनवाणी माँ-तेरी जय हो, सदा विजय हो। तेरे विशाल पद में श्रुत सूर्य का उदय हो। हे माँ विद्वत जन रूपी हंस आज तेरी इस गंगा में अवगाहन कर रहे हैं गंगा ने ताप को दूर किया है लेकिन हे माँ तूने ताप को, पाप को, और अभिशाप को दूर किया है।

गंगा का का जल तन का मेल धोता है लेकिन हे जिनवाणी माँ तेरा ज्ञान जल का, चेतना का, जन्म-जन्म का मैल धो देता है। हे जिनवाणी माँ तेरे समान उपकारी इस संसार में न कोई हुआ है ना होगा। माँ जन्म देती है नौ-दस माह कोख में रखती है और संसार में डाल देती है लेकिन हे जिनवाणी माँ तेरे आंचल में जो छह माह भी रह लेता है उसे तू जन्म-मरण के चक्कर से छुड़ा देती है। सिद्ध भगवान बनने की पात्रता देती है। सिद्धालय में विराजमान कर देती है। ऐसी है जिनवाणी माँ।

ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारण
यह परमामृत जन्म जरा मृत रोग निवारण।

प्रिय आत्मन् !

कुंद-कुंद देव कहते हैं -

जिनेन्द्र भगवान के वचन, जिनवाणी के प्रवचन तीर्थंकर भगवान की देशना, गुरुओं के वचन औषधि है। जन्म, जरा, मृत्यु जल चढ़ाने से मिटे न मिटे लेकिन गुरुओं के प्रवचन सुनने से आपका जन्म-जरा मृत्यु दूर होता है यह विषय शुद्ध का विवेचन कराते हैं और अमृत के समान है।

प्रिय आत्मन् !

स्वर्ग के देवता अमृतपान किया करते हैं मनुष्यों को अमृत पान नहीं मिलता है लेकिन स्वर्ग के देवताओं से श्रेष्ठ मैं मनुष्यों को मानता हूँ। जो पुद्गल का अमृत नहीं पीते हैं अपितु जिस अमृत को तीर्थंकर भगवान ने अपने मुखकण्ठ से झराया है ऐसे तीर्थंकर भगवान के प्रवचन रूपी अमृत को, धर्म रूपी अमृत को, अपनी करुणाञ्जलि से पान करते हैं इसलिये मनुष्य देवताओं से श्रेष्ठ हैं। अथवा यह कहिये कि देवता भी इस धरती पर धर्मामृत का पान करने के लिये आते हैं क्योंकि जो अमृत गुरु के प्रवचन में है वह अमृत स्वर्ग में नहीं है इसलिये स्वर्ग के देवता इस धरती पर अमृत पान करने के लिये आया करते हैं।

स्वर्ग में समोशरण नहीं लगता है, स्वर्ग में निर्ग्रंथ मुनि नहीं होते हैं, स्वर्ग में आचार्य, उपाध्याय, साधु नहीं हुआ करते हैं। यदि आचार्य उपाध्याय-साधु किसी धरती पर है तो वह यह मध्य लोक की पावन धरती है। यह भारत क्षैत्र की धरती है। यह आर्य खण्ड की धरती है। यह भारत देश की धरती है और भारत देश की धरती पर मुनि राज विराजमान है।

इसलिये स्वर्ग के देवता भी तरसते हैं कि कब हम जायें और दिव्य-देशना का रसपान करें। अमृत में इतनी विशेषता है कि किसी को अकाल में नहीं मरने देता है आयु कर्म पूरा होने पर मरना पड़ता है लेकिन प्रवचन रूपी अमृत में यह विशेषता है कि व्यक्ति मृत्यु रूपी रोग को नष्ट करके शाश्वत अमर धाम, सिद्धालय को प्राप्त हो जाता है।

प्रिय आत्मन् !

हे देवाधि-देव शांति प्रभु शांति कहाँ है भगवान बोलते हैं -

स्वदोष शान्तया।

अपने दोषों को समाप्त करने में शांति है। समन्तभद्र स्वामी ने शांतिनाथ भगवान की स्तुति रची है। उन्होंने शांतिनाथ से कहा कि आपके जीवन में शांति कहां से आयी ? तो भगवन् कहते हैं – अपने दोषों को शांत करने पर शांति आती है। दोष का नाम अशांति और गुणों का नाम शांति। दोष वृद्धि दु:ख वृद्धि। दोष हानि दु:खों की हानि।

जैसे–जैसे दोष बढ़ते हैं वैस–वैसे अशांति बढ़ती है। और जैसे–जैसे दु:ख शांत होते हैं वैसे–वैसे दु:ख दूर होता है। प्रश्न था कि शांति आपने कहाँ से प्रकट की है? तो भगवान् बोले मुझे जो शांति मिली है ये मेरी देवी ने नहीं दी है। मुझे ये शांति मिली है यह सौधर्मेन्द्र ने स्वर्ग से लाकर नहीं दी है यह शांति धन कुबेर ने पन्द्रह महीने रत्न बरसाये हैं इसलिये नहीं मिली है।

यदि शांति धन से मिलती तो धन कुबेर पन्द्रह महीने तक रत्न बरसाता है उसको सबसे ज्यादा शांति होना चाहिये और सौधर्मेन्द्र के पास समोशरण की विभूति हुआ करती है, उसे सर्वाधिक शांत होना चाहिये क्योंकि अरहंत के पास तो कुछ दिन के लिये समोशरण लगता है लेकिन सौधर्मेन्द्र के पास तो सदा समोशरण एक नहीं एक सौ सत्तर समोशरण लगाने की क्षमता उनके पास हुआ करती है। इतना वैभव हुआ करता है।

तात्पर्य यह कि वैभव से शांति नहीं मिलती है शांति मिलती है अपने दोषों का शमन करने से जितने–जितने दोष शांत होते जायेंगे उतनी–उतनी शांति प्रकट होती जायेगी।

"स्वदोष शान्त्या बिहतात्म् शांति।"

आत्मा के दोष शांत होने पर आत्मा की शांति प्राप्त होती है। अनुभव आपके पास है गुस्सा आ रहा था गुस्से को आपने शांत कर लिया शांति मिल गयी। लालच पैदा हो रहा था। लालच पर कंट्रोल कर लिया शांति मिल गयी। घमण्ड पैदा हो रहा था, आपने उस पर कंट्रोल कर लिया शांति मिल गयी। तभी हम से कोई दोष हो गया, बेटे से दोष हो गया, उसने पिता को बता दिया। शिष्य से दोष हो गया उसने जाके गुरु को प्रकट कर लिया तत्काल ऐसा लगता है कि सिर पे से कोई भार उतर गया हो क्योंकि दोषों के शांत हो जाने पर, दोषों के निकल जाने पर शांति मिलती है इसलिये मैं कहता हूँ।

बात अच्छी हो तो उसकी हर जगह चर्चा करो।
बुरी हो दिल से निकालो दिल स्वयं अच्छा करो॥

प्रिय आत्मन् !

अपने दोषों के शांत होने पर शांति मिलती है इसलिये यदि किसी ने कुछ कह दिया तो बात अच्छी हो तो उसको चार को सुना दो लेकिन किसी ने आपको कुछ गलत कह दिया हो सास ने बहू को गलत बोल दिया हो पिता ने पुत्र को गलत बोल दिया हो। पुत्र ने पिता को गलत बोल दिया हो चार को सुनाने की आवश्यता नहीं है अच्छी है तो चार को सुनाओ बुरी हो तो किसी को मत सुनाओ हर मकान में एक खिड़की इसलिये हुआ करती है कि तुम दरवाजे बंद करने के बाद भी खिड़की से उस बात को बाहर निकाल सकते हो।

किसी दूसरे को सुनाने की आवश्यकता नहीं है।

प्रिय आत्मन् !

हमारे मस्तिष्क में जो कचरा आया है हमें अधिकार नहीं है कि दूसरे के मस्तिक में वह कचरा डाले और फिर भी मैं कहता हूँ यह मेरा शरीर यह आपका शरीर मंदिर है। आपकी आत्मा भगवान है जहाँ पर भगवान विराजते हैं उसे हम मंदिर कहा करते हैं और जिस शरीर रूपी स्थान में आपका चैतन्य भगवान विराजमान हो तो क्या हम उसे मंदिर नहीं कहेंगे। शरीर मंदिर है इसलिये टेंशन का कचरा नहीं, इसमें राग–द्वेष का कचरा नहीं, इसमें विकल्पों का कचरा नहीं, इसमें कषायों का कचरा नहीं डालना चाहिए इसमें तो शुद्ध भावों के रसायन डालना चाहिए।

प्रिय आत्मन् !

जिनेन्द्र भगवान की वेदी पर जल, दूध की धारायें की जाती है कचड़ा नहीं डाला जाता। यह मस्तिष्क और हृदय मेरे भगवान की वेदी है इसलिये इस मस्तिष्क और मेरे हृदय को भगवान की वेदी बनाया है। जब भगवान की वेदी बना लिया है तो इस पर कषायों का कचड़ा नहीं डालूँगा। राग–द्वेष का मैल डाल के अपनी वेदी को अपवित्र नहीं करूँगा। क्योंकि यदि में राग–द्वेष का मैल डाल लूँगा। तो मेरे भगवान कहाँ विराजेगें।

स्वदोष शान्त्या विहितात्म शान्तिः।
शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम्॥

आपकी शरण में आये हुये जीवों को शांति मिलती है। बात सत्य है क्योंकि वृक्ष के नीचे पहुँचों वृक्ष छाया देता है। यह जरूरी नहीं है और छाया मांगने वाला मांगे यह भी जरूरी नहीं है लेकिन यह प्रक्रिया है कि वृक्ष के नीचे पहुँचों तो छाया स्वतः मिल जाती है ऐसे ही शांतिनाथ के पास आओ तो अपने आप शांति मिला करती है।

ज्ञानी! दर्पण देखा? दर्पण कैसा चेहरा दिखाता है? यह दर्पण की गलती है कि दर्पण की अच्छाई है। ना दर्पण की गलती है ना दर्पण की अच्छाई है क्योंकि दर्पण तो वीतराग की तरह है हम जैसा चेहरा लेकर जाते हैं दर्पण वैसा चेहरा दिखा देता है। उसी तरह जब भगवान् के पास अच्छेभाव लेकर आते है तो हमें शांति मिला करती है जब बुरे भाव लेकर आते हैं तो अशांति मिला करती है।

ध्यान देना जब दर्पण की और मुख करोगे तो मुख दिखाई देगा। ज्ञानी जीव! यही है।

हे जिनेन्द्र देव! आपके शासन को, आपकी वाणी को, जो सिर पर धारण करते हैं उन्हें शांति मिला करती है। मस्तिक में जो जिनवाणी को धारण करते हैं? प्रवचन को सुनते हैं शान्ति मिला करती है।

शांति शिरोधृत जिनेश्वर शासनानां। शान्तिः निरेतर तपोभव भाविताना।

शांतिः कषाय जय जृम्भित वैभनानां। शान्तिः स्वभाव महिमान मुपापगतानाम्॥

जो तप की भावना करते है उन्हें शांति मिलती है। जो कषायों को जीतते है उन्हें शांति मिलती है। शांति कषायों के जीतने से मिलती है। क्रोध को कितना जीता, मान को कितना जीता, माया को कितना जीता, लोभ को कितना जीता चर्चा होती है आपका रहन-सहन कैसा है।

ज्ञानी! जीव रहन तो सबका अच्छा होता है लेकिन सहन की कमी होती है। सहन शीलता यदि है तो फिर रहन की कुछ महिमा है और सहनशीलता सहन भी होना चाहिये तभी शांति मिलती है। अपने स्वभाव में जाने से शांति मिलती है जब कहीं शांति न मिले तो क्या करें। अरे! ज्ञानी। कहीं शांति न मिले तो अपने स्वभाव में डूब जाओ, अपने आप में आ जाओ, स्वभाव का आश्रय लो शांति मिलेगी।

जब कुयें का पानी घर में ना मिले, जब कुयें का पानी बाजार में ना मिले, जब कुये का पानी भोजन शाला में ना मिले तो आप क्या करेगें। कुयें में अपना बर्तन डालिये नियम से कुयें का पानी मिलेगा उसी तरह जब शांति तुम्हें मंदिर में ना मिले, जब शांति तुम्हें घर में ना मिले, जब शांति कहीं

ना मिले। तो मात्र आँखें बंद करिये पाँचों इंद्रियों के व्यापार को रोकिये, पाँचों की प्रवृत्ति को रोकिये।

प्राच्यावय विषयेभयोऽहं।

अपने स्वरूप में निमग्न रहिये कल्पना कीजिये मैं शांतिनाथ हूँ, जैसे वे है वैसा मैं हूँ। जो तुम हो वह मैं हूँ। जो-जो गुण उनमें है वह-वह गुण मुझमें है ऐसी कल्पना करते ही तत्क्षण शांति का जन्म होता है एक क्षण नहीं लगता है।

प्रिय आत्मन् !

शांति पैदा करने की चीज है अकेले धन ही पैदा नहीं किया जाता है शांति भी पैदा की जाती है मिलती नहीं है धन बाजार में मिलता नहीं है। धन कमाया जाता है वैसे शांति कहीं मिलती नहीं है शांति भीतर में से पैदा की जाती है। शांति के लिये और कुछ नहीं चाहिये इसे कमाने के लिये ज्ञान की पूँजी चाहिये।

आत्म ज्ञान की पूँजी जिसके पास होगी वह धन कमा लेगा और जिसके पास आत्म ज्ञान की पूँजी नहीं है, या तत्वज्ञान की पूँजी नहीं वह शांति नहीं पायेगा। इसलिये एक महत्वपूर्ण बात है हमारे सामने।

मनः प्रसाधं श्रुतैः।

मन को प्रसन्न रखने के लिये, मन को शांत रखने के लिये, परिवार को शांत रखने के लिये आज हमें टी.वी. टावर और टेलीफोन के परमाणु नहीं चाहिये। जबकि हमारे घरों में टी.वी. टावर और टेलीफोन के परमाणुओं ने इतनी विकृति ला दी है ऐसे समय में आवश्यकता है कि हम सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र रूपी रत्नत्रय के परमाणु अपने घर में भर दे। जिनवाणी का स्वाध्याय घर-घर में हो तो जिनवाणी के परमाणु आपके घर में रहेंगे।

प्रिय आत्मन् !

मन को प्रसन्न रखने के लिये श्रुत चाहिये -

तेरी छत्रछाया भगवन्, मेरे शिर पर हो।
मेरा अंतिम मरण समाधि, तेरे दर पर हो॥

जिनवाणी रसपान करूँ मैं, जिनवर को ध्याऊँ।
आर्यजनों की संगति पाऊँ, व्रत संयम चाहूँ॥
गुणीजनों के सद्‌गुण गाऊँ, जिनवर यह वर दो।
मेरा अंतिम मरण समाधि, तेरे दर पर हो॥

ध्यान देना- आप यहाँ पधारे मुझे बहुत खुशी है "जिनवाणी रसपान की चिंता"। ऐसी शीतकाल की लहर चल रही है कोहरा छाया हुआ है लेकिन फिर भी आपके अंदर जो तत्वज्ञान की प्यास है बात सच है।

कोटि उपाय बनाय भव्य ताको उर आनो।

यदि एक उपाय से हमें गुरु मिलते है ठीक बात, दूसरे उपाय से हमें प्रवचन मिलता है, ठीक बात, नहीं भी मिलता है तो दौलतराम जी कहते हैं। एक नहीं करोड़ उपाय बनाओ और गुरु के प्रवचन का लाभ लो।

जलपान की चिंता सेठ जलाशय ले गयी, मेंढ़क बना दिया। जलपान की चिंता करने वाले सेठ जलाशय में मेंढ़क हो गया और जिनवाणी के रसपान की चिंता करने वाला मेंढ़क स्वर्ग में जाके देव हो गया। यदि तुम जलपान की चिंता करते हो तो उसी समय आयु बंध हो जाये। हे माताओं! ध्यान से सुन लेना मैं जानता हूँ तुम लोगों की एक कमी कि मंदिर में बैठोगे घर की चर्चा करोगे। घर में बैठोगे मंदिर की चर्चा करोगे। जहाँ रहते हैं वहाँ के नहीं रहते हैं ध्यान देना -

जलपान की चिंता करने वाला सेठ सामायिक में बैठा है और सोच रहा है मुझे पानी पीने को मिल जाये उसी समय आयु का बंध हो गया और मरण हो गया। जाकर के बावड़ी में मेंढ़क हो गया। जल की चिंता थी जल मिल गया तुम तो दो अंजलि जल पीना चाहते थे तुम्हें पूरा सरोवर मिल गया लेकिन मेंढ़क की पर्याय में रहो जल में, दूसरी बात देखो संस्कार की वह जो सेठ था प्रतिदिन गुरु के प्रवचन सुनता था, भगवान की पूजा करता था, एक उसका संस्कार था, संस्कार के बल पर जब राजगृही में भगवान महावीर स्वामी का समोशरण आया विपुलाचल पर तब राजा श्रेणिक ने नाद करवाया कि तीर्थंकर भगवान के समोशरण में सभी चलें मेंढ़क के कानों में आवाज पहुँची और वह भी फुदकता-फुदकता-फुदकता-चलते-चलते चला जा रहा है। लेकिन चलते-चलते मेंढ़क की चाल अप्रशस्त होती है कहाँ कि छलांग कहाँ लगा ले उसे क्या पता। हाथी तो प्रशस्त गति से चलता है हाथी का पैर कभी किसी मेंढ़क पर नहीं पड़ सकता है हाथी का पैर कभी किसी चिड़िया पर नहीं

पड़ सकता है। ध्यान देना हाथी बहुत सावधान होता है, प्रशस्त गति होती है लेकिन मेंढ़क अपनी गलती से तिरछी छलांक लगा लेता है और जिस समय हाथी का पैर उठाना था मेंढ़क उसके पांव के नीचे पहुँच गया और मेंढ़क का प्राणांत हो गया किंतु मेंढ़क के भाव जो थे समोशरण में जाकर के भगवान की पूजा करना और भगवान की वाणी सुनने के भाव थे इसलिये कहा गया है कि "मेंढ़क कुचला नहीं गया, मेंढ़क तो स्वर्ग को चला गया" जिसके भाव पवित्र होते हैं वह कुचला नहीं जाता है वह तो स्वर्ग को चला जाता है।

प्रिय आत्मन् !

धर्म सभा में आने वाले समोशरण जाते।
धर्म देशना सुनने वाले, दिव्य ध्वनि पाते॥
गुरु मिले तो प्रभु मिलेंगे, कहती वाणी माँ।
बार-बार हम शीश झुकायें हे जिनवाणी माँ॥

यदि आज धर्मसभा में आ रहे है तो इसका तात्पर्य है अगला दिन समोशरण में जाने का है। हमारी तैयारी यह बताती है एक विद्यार्थी सातवीं कक्षा पड़ता है बहुत अच्छा पड़ता है तात्पर्य यह है यदि बहुत अच्छा पढ़ते हो तो ये लगता है अगली क्लास आठवीं होगी इसी तरह से यदि आज हम भगवान के चैत्यालय में आते हैं तो कल हम सिद्धालय में जायेंगे। चैत्यालय में आना सिद्धालय की सूचना देता है, धर्मसभा में आना समोशरण में जाने की सूचना देता है। प्रवचन का सुनना दिव्य ध्वनि सुनने का संकेत देता है आपका भविष्य -

होठों पे थिरकते गीतों में, वर्तमान तुम्हारा दिखता है।
भविष्य तुम्हारा कैसा होगा, हर गीत तुम्हारा लिखता है॥

जो हम वर्तमान में करते हैं वह हमारे भविष्य का बीज बन जाता है। वर्तमान का बीज भविष्य के लिये वृक्ष बनके तैयार हो जाता है जो बोओगे वह पाओगे। वर्तमान के एक-एक विचार, एक-एक चिंतन, एक-एक आचरण हमारे बीज है इसलिये ये निर्ग्रंथ ही अरहंत के बीज है। हमें आज ये मुनि रूप में मिले हैं आप हमें श्रावक के रूप में मंदिर में मिले हैं ऐसा भी हो सकता है एक दिन आप समोशरण में मिलो और ये हो सकता है समोशरण में अरहंत के रूप में ये मिले।

प्रिय आत्मन् !

यह मोक्ष महल की ऊँचाई आज हम जितनी चढ़ लेंगे कल उतनी कम होती जायेगी चलना तो हमको भी वही है तुमको भी वहीं है। जिनवाणी रसपान की ऐसी महिमा है आपको मालूम होगा एक शेर जंगल में, दो मुनिराज आकाश मार्ग से आते हैं उस शेर के लिये जिनवाणी रसपान कराते हैं वह शेर इस युग का अंतिम तीर्थंकर महावीर जिनराज बन जाता है यह है जिनवाणी रसपान की महिमा जिनवाणी रसपान करने वाला गजराज पारसनाथ जिनराज बन गया। जिनवाणी रसपान करने वाला सियार रात्रि भोजन का त्याग करने से स्वर्ग में देवता बन गया। जिनवाणी रसपान करने वाला जटायु पक्षी पाँचवे स्वर्ग में देव बन गया। जिनवाणी रसपान करने वाला (कुत्ता) श्वान जीवंधर के मुख से णमोकार सुनकर के स्वर्ग का देवता बन गया। जिनवाणी रसपान करने वाला बकरा चारूदत्त के मुख से णमोकार सुनकर के स्वर्ग का देवता बन गया। जिनवाणी रसपान करने वाले जब श्वान, बकरा, बैल, जब ये स्वर्ग के देवता बन सकते हैं तो फिर एक दिगम्बर मुनिराज की वाणी सुनने वाले, तीर्थंकर भगवान की वाणी को आत्म-साधना करने वाले ये भव्य जीव स्वर्ग और मोक्ष के अधिकारी बन जाये तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

प्रिय आत्मन् !

स्वर्गापवर्गः गम-मार्ग-विमार्गणेष्टः,

सद्धर्म तत्व कथनैक पटुस्त्रिलोक्याः॥

स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग बतलाने वाले यदि कोई है तो वह है जिनेन्द्र देव का सच्चा धर्म और वह सच्चा धर्म प्रकट होता है जिनवाणी में अर्थात् गुरु की वाणी में इसलिये मुनिराज द्वारा बताया गया मार्ग संसार का मार्ग नहीं है यह मोक्ष का मार्ग है।

प्रिय आत्मन् !

आचार्य कहते है। जिस क्षण जिनवाणी सुनते है उसी क्षण ज्ञान प्रकट होता है। जैसे- जिस क्षण प्रकाश होता है उसी क्षण अंधेरा दूर होता है उसी प्रकार जिस क्षण हम गुरु का प्रवचन सुनते हैं उसी क्षण ज्ञान प्रकट होता है। और अज्ञान का नाश होता है। जिनवाणी को सुनने से, गुरु के प्रवचन को सुनने से असंख्यात गुण श्रेणी निर्जरा होती है।

आप यहाँ विराजे है लगभग 45 मिनिट आपको हो रहे हैं मैं आपसे पूछना चाहूँगा इस 45 मिनिट में आपके भाव कितने निर्मल हुये आपका अनुभव बोल रहा होगा कि आज मेरे भावों में कुछ निर्मलता आयी जो भावों में निर्मलता आयी है। यही जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। भावों की पवित्रता ही जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है प्रतिसमय भावों में निर्मलता आ रही है और भव-भव के कर्म नष्ट हो रहे हैं।

जैसे - कोई व्यक्ति कपास को ढेर से इकट्ठा कर ले बहुत समय में करें किन्तु माचिस की एक तीली भी उस कपास के ढेर को कुछ ही समय में नष्ट कर देती है ऐसे भव-भव के इकट्ठे किये हुये कर्म, जिनवाणी के प्रताप से कुछ ही समय में नष्ट हो जाते हैं।

प्रिय आत्मन् !

जिन्हें भगवान् न मिले और जिन्हें शास्त्र न मिले मात्र गुरु ही मिल जाये तो उनका भला हो जाता है।

जो कार्य देव न कर पाये, जो कार्य शास्त्र न कर पाये उससे भी महान कार्य एक निर्ग्रंथ गुरु कर देते हैं क्योंकि शेर के जीवन में सम्यक्त्व का दान देने वाले भगवान नहीं हुये, शास्त्र नहीं हुये मात्र एक गुरु हुये हैं जिन्होंने शेर को सम्यक्त्व दिया है। हाथी को पारसनाथ बनाने वो गुरु हुये हैं गुरु के बिना जीवन शुरु नहीं होता है इसलिये हम परम सौभाग्यशाली है जो हमारे बीच में गुरु की प्राप्ति होती है।

प्रिय आत्मन् !

गुरुभक्ति संजमेण य तरिन्त संसार सायरं धोयम्।
छिण्णंति अट् कम्मं जम्मणं मरणं न पावेन्ति॥

आचार्य पूज्य कुंद-कुंद देव से पूछा हे भगवान संसार सागर से तिरने का क्या उपाय है तो आचार्य कुंद-कुंद देव लिखते हैं गुरु भक्ति और संयम दो ही तिरने के उपाय है। गुरु भक्ति और संयम के प्रताप से जीवन तिर जाता है इसलिये श्रावक जीवन में गुरु भक्ति प्रकट हो और संयम प्रकट हो। ध्यान देना- श्रुतज्ञान पिता है केवलज्ञान पुत्र है। क्योंकि श्रुतज्ञान जिसके पास होगा उसे ही केवल ज्ञान प्रकट होगा जिसके पास श्रुतज्ञान नहीं है उसको केवलज्ञान कभी प्रकट नहीं होगा। आचार्य कहते हैं जिनवाणी को सुनने से पाँचों इंद्रियाँ वश में हो जाती है।

प्रिय आत्मन् !

जैसे – हाथी को वश में करने के लिये महावत के पास अंकुश हुआ करता है उसी तरह से पाँचों इन्द्रिय रूपी गजों को वश में करने के लिये एक श्रुतज्ञान का अंकुश होना चाहिये। जिसके पास शास्त्राभ्यास है, श्रुतज्ञान का अंकुश है वह अपने इन्द्रिय रूपी हाथी को वश में कर लेगा।

यदि घोड़ा है और लगाम नहीं है तो घोड़ा किसी काम का नहीं है उसी तरह इन्द्रियाँ है यदि तुम्हारे पास ज्ञान रूपी लगाम नहीं है तो फिर वे इन्द्रियाँ तुम्हें पटक देगी गिरा देगीं। यदि नाग दमनियाँ अपने पास है तो कैसी भी साँप रहे वह साँप अपने आप निर्बल हो जाता है और डसने की क्षमता नहीं रख पाता है उसी तरह से संसार में कैसे भी विषय की चकाचौंध हो यदि तुम्हारे पास आत्मज्ञान की नाग दमनियाँ है, सम्यक् ज्ञान की नाग दमनियाँ है, शास्त्र अभ्यास की नाग दमनियाँ है, श्रुत आराधना की नाग दमनियाँ है, गुरु के प्रवचन की नाग दमनियाँ है तो वह प्रवचन की नाग दमनियाँ हमें संसार के विषय भोगों में नहीं पड़ने देगी यह विषय कषायों के नाग डस नहीं पायेंगे।

प्रिय आत्मन् !

समंतभद्र स्वामी कहते हैं। पीयो और पीने दो।

धर्मामृतम् सतृष्णाः पिबतु।

धर्म रूपी अमृत को तृष्णा के साथ पीयो।

* * * *

आचार्य श्री का जीवन परिचय

पूर्वनाम – पं. अशोक कुमार जैन "शास्त्री"

जन्म – 23.10.1976 को, प्रकाशित अमावस्या दीपावली

स्थान – किशनपुरा (सागर)

माताश्री – श्राविका–रत्न श्रीमती गुलाबबाई जैन

पिताश्री – श्रावक रत्न श्री लखमीचन्द्र जैन

शिक्षा – इण्टर संस्कृत शास्त्री प्रथम वर्ष

धार्मिक शिक्षा – धर्मशास्त्री द्वितीय वर्ष

शिक्षण संस्थान – श्री गणेशप्रसाद वर्णी दि. जैन महाविद्यालय, मोराजी, सागर (म.प्र.)

वैराग्य एवं प्रतिमा धारण –वैराग्य एवं व्रत प्रतिमा 9 अक्टूबर 1994 को ब्रह्मचर्य व्रत लिया, बीना

क्षुल्लक दीक्षा – 28 जनवरी 1996, देवेन्द्र नगर, पन्ना (म.प्र.)

ऐलक दीक्षा – 23.02.1997, अतिशय क्षेत्र वरासौं, भिण्ड (म.प्र.)

मुनि दीक्षा – 14.12.1998, अतिशय क्षेत्र वरासौं, भिण्ड (म.प्र.)

दीक्षागुरु – गणाचार्य श्री 108 विरागसागरजी महाराज

आचार्यपद – 31 मार्च 2007, औरंगाबाद (महाराष्ट्र) महावीर जयंति के पावन अवसर पर

विशेष – जैन आगम रूपी मानसरोवर के राजहंस की तरह झलक देने वाले प्रज्ञा श्रमण की प्रवचन शैली जन–जन द्वारा हृदय–ग्राह्य है।

अलंकरण – 'सारस्वत श्रमण' एवं 'सारस्वत कवि' जबलपुर में 2009

रुचि – पठन–पाठन, काव्य सृजन, चिंतन, मनन

कृतियाँ – अभी तक आचार्य श्री द्वारा 54 कृतियों की सर्जना की गई है जो इसी पुस्तक में सूचीबद्ध है।

परम पूज्य 108 आचार्य श्री विभसागर जी महाराज के वर्षायोग स्थल

1. ललितपुर (उ.प्र.) 1995
2. जबलपुर (म.प्र.) 1996
3. भिण्ड (म.प्र.) 1997
4. मुरैना (म.प्र.) 1998
5. मड़ावरा (उ.प्र.) 1999
6. हजारीबाग (झारखंड) 2000
7. कोतमा (म.प्र.) 2001
8. जबलपुर (म.प्र.) 2002
9. नागपुर (महाराष्ट्र) 2003
10. परभणी (महाराष्ट्र) 2004
11. श्रवणबेल गोला (कर्नाटक) 2005
12. शिरडशाहपुर (महाराष्ट्र) 2006
13. नागपुर (महाराष्ट्र) 2007
14. द्रोणगिरि सिद्धक्षेत्र (म.प्र.) 2008
15. जबलपुर (म.प्र.) 2009
16. टीकमगढ़ (म.प्र.) 2010
17. गढ़ाकोटा (म.प्र.) 2011
18. जयपुर (राज.) 2012
19. अशोकनगर (म.प्र.) 2013

आचार्य श्री द्वारा सृजित साहित्य 87

1.	अमृत गीता	1997	भिण्ड वर्षायोग
2.	गुरु पूजा	1997	बड़ागांव धसान
3.	भक्तामर स्तोत्र (अनुवाद)	1999	मड़ावरा (वर्षायोग)
4.	रयणसार (अनुवाद) (अप्रकाशित)	2000	अयोध्या एवं बनारस
5.	लघु स्वयंभू स्तोत्र (अनुवाद)	2000	हजारी बाग, झारखण्ड
6.	प्रवचन भारती	2001	कोतमा (वर्षायोग)
7.	विरागाष्टक (हिन्दी)	2001	कोतमा (वर्षायोग)
8.	विरागाष्टक (संस्कृत)	2001	कोतमा (वर्षायोग)
9.	मंदिर गीता (कल्याणमंदिर स्तोत्र पर भावानुवाद)	2002	डिण्डौरी (ग्रीष्मकाल)

10. एकीभाव स्तोत्र (अनुवाद)	2003	भेड़ाघाट, जबलपुर
11. विषापहार स्तोत्र (अनुवाद)	2003	बहोरीबंद, जबलपुर
12. जिनवर गीता (एकीभाव स्तोत्र का भावानुवाद)	2003	नागपुर (वर्षायोग)
13. वंदन गीता (लघुस्वयंभू स्तोत्र पर भावानुवाद)	2003	नागपुर
14. तीर्थंकर विधान	2003	नागपुर
15. एकीभाव विधान	2003	डिण्डौरी (म.प्र.)
16. धर्म भारती (भाग-1)	2002	सागर (ग्रीष्मवाचना)
17. धर्म भारती (भाग-2)	2003	सोलापुर (ग्रीष्मवाचना)
18. धर्म भारती (भाग-3)	2006	सोलापुर (ग्रीष्मवाचना)
19. धर्म भारती (भाग-4)	2006	सोलापुर (ग्रीष्मवाचना)
20. गोमटेश विधान	2005	श्रवणवेलगोला (वर्षायोग)
21. गोमटेश्वर अर्घावली (अप्रकाशित)	2005	मुक्तागिरि सिद्धक्षेत्र
22. मुक्तागिरि (पूजा अर्घावली) (अप्रकाशित)	2004	नागपुर (वर्षायोग)
23. तीर्थंकर शिक्षण	2003	परभणी (वर्षायोग)
24. सुनहरा अवसर (प्रवचन कृति)	2004	परभणी (वर्षायोग)
25. रात्रि भोजन त्याग (प्रवचन कृति)	2004	परभणी (वर्षायोग)
26. जीवन है पानी बूंद (प्रवचन कृति)	2004	परभणी (वर्षायोग)
27. घर को स्वर्ग कैसे बनायें ? (प्रवचन कृति)	2004	परभणी (वर्षायोग)
28. आनंद यात्रा (रचित भजन)	2004	परभणी (वर्षायोग)
29. सम्मेद शिखर वंदना (अप्रकाशित)	2007	कामठी क्षेत्र महाराष्ट्र
30. निर्ग्रन्थ गुरुपूजा	2008	द्रोणगिरि वर्षायोग

31.	तीर्थंकर संस्तुति	2008	द्रोणगिरि वर्षायोग
32.	द्रोणगिरि विधान	2008	द्रोणगिरि वर्षायोग
33.	पात्रकेशरी स्तोत्र (अनुवाद) (अप्रकाशित)	2003	नागपुर
34.	अकलंक स्तोत्र (अनुवाद)	2005	श्रवणवेलगोला
35.	जिनवरस्तोत्र	2009	छतरपुर शीतकाल
36.	कुलभूषण चरित्र (काव्य)	2005	कुंथगिरी यात्रा
37.	बारह भावना	2005	श्रवणवेलगोला
38.	उपसर्गहर स्तोत्र (अनुवाद)	2009	पार्श्वगिरी भगवाँ
39.	गुरुमंत्र	2007	नागपुर
40.	कुण्डलपुर विधान	2009	जबलपुर
41.	हृदय प्रवेश	2009	दमोह
42.	दशलक्षण देशना	2009	जबलपुर (वर्षायोग)
43.	अक्षर-अमृत	2009	जबलपुर
44.	हृदय परिवर्तन	2009	जबलपुर
45.	भक्ति भारती	2010	टीकमगढ़ (वर्षायोग)
46.	भक्तिभाषा	2009	दमोह
47.	संस्तुति सरिता	2011	पटेरियाजी
48.	आलोचना सार	2010	टीकमगढ़ वाचना
49.	विश्वशान्ति विधान	2010	टीकमगढ़
50.	विधान-विभव	2013	जयपुर
51.	भक्तामर शास्त्र	2012	जयपुर

52.	अरहनाथ विधान एवं नवागढ़ क्षेत्रपूजा	2012	जयपुर
53.	सामायिक शास्त्र	2012	जयपुर
54.	भक्ति शास्त्र	2013	निवाई
55.	प्रवचन भारती	2001	कोतमा
56.	समाधि शास्त्र	2012	जयपुर
57.	पुरुषार्थ शास्त्र	2013	अशोकनगर

गुरुदेव की सर्वप्रिय रचनाएँ

1.	समाधि भक्ति	10 पद	2005	श्रवणबेलगोला
2.	दर्शन भावना	4 पद	2005	श्रवणबेलगोला
3.	जिनवाणी स्तुति	5 पद	2009	जबलपुर
4.	जिनवाणी स्तुति	5 पद	2010	टीकमगढ़

आचार्य श्री जी की प्रेरणा से श्री सम्यग्ज्ञान शिक्षण समिति द्वारा प्रकाशित

अन्य उपयोगी साहित्य

1.	वर्द्धमान यशोगान	स्व. श्री कृष्ण पाठक	2003	नागपुर
2.	स्वयंभू स्तोत्र	ले. आचार्य समन्तभद्र		
		स्व. पं. पन्नालाल सा.	2006	नागपुर
3.	इष्टोपदेश प्रवचन	आचार्य विरागसागर	2006	नागपुर
4.	सल्लेखना से समाधि	आचार्य विरागसागर	2006	नागपुर
5.	सम्यग्दर्शन	आचार्य विरागसागर	2006	नागपुर
6.	आगम चक्खु साहू	आचार्य विरागसागर	2006	नागपुर
7.	प्रमेय रत्नमाला	आचार्य लघु अनंतवीर्य	2009	नागपुर

8.	लब्धिसार (अंग्रेजी, हिन्दी, प्राकृत)	आचार्य नेमिचन्द प्रस्तोता-एल.सी.जैन, जबलपुर	2009	जबलपुर
9.	षट्खण्डागम ध.पु. 8,11	आ. पुष्पदन्त भूतबली (जीवराज ग्रंथमाला, सोलापुर)	2010	टीकमगढ़

जनोपयोगी साहित्य, सी.डी. आदि

1.	कल्याणमंदिर गीता	नंद कुमार जैन	जबलपुर
2.	जिनवर गीता	प्रसन्न श्रीवास्तव	जबलपुर
3.	वंदन गीता	संगीता जैन, शिल्पा जैन	जबलपुर
4.	तेरी छत्रच्छाया	नंदकुमार जैन	जबलपुर
5.	मेरा घर मेरी पाठशाला	अनिल आगरकर परिवार	नागपुर
6.	विभव वन्दना	साधना जैन	जबलपुर
7.	विभवसागर के प्रवचन	सी.डी. एवं कैसेट	
8.	भक्तामर प्रवचन 48	आ. विभवसागर	जयपुर
9.	गुरु उपहार	आ. विभवसागर	जयपुर
10.	सामायिक पाठ प्रवचन	आ. विभवसागर	जयपुर

श्रमण श्री 108 आचरण सागरजी का परिचय

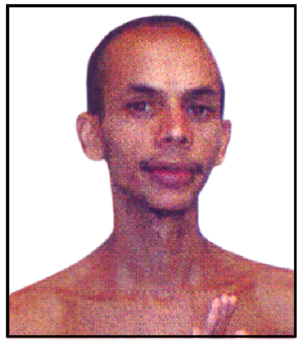

पूर्व नाम	–	अंशुल जैन
जन्मतिथि	–	25.03.1985
जन्मस्थान	–	सागर
पिता	–	श्री अशोक कुमार जैन
माता	–	स्व. श्रीमती रजनी जैन
शिक्षा	–	बी.ए. द्वितीय वर्ष
ब्रह्मचर्य दीक्षा	–	13 फरवरी 08, गिरारगिरि
क्षुल्लक दीक्षा	–	23 फरवरी 09, द्रोणगिरि
ऐलक दीक्षा	–	06 नवम्बर 2010, टीकमगढ़
दीक्षा गुरु	–	आचार्य श्री विभवसागर जी महाराज
श्रमण दीक्षा	–	10 फरवरी, 2011, हटा दमोह (म.प्र.)

श्रमण श्री 108 अमृत सागरजी का परिचय

पूर्व नाम	–	श्री कन्छेदीलाल
जन्मतिथि	–	7 मार्च 1949
जन्मस्थान	–	लम्हेंटा (ग्राम शहपुरा)
पिता	–	स्व. श्री हुकुमचन्द्र जैन
माता	–	स्व. श्रीमती चमेलीबाई जैन
शिक्षा	–	बारहवीं
विशेषता	–	तीर्थंकर के पिता बने, सप्तम प्रतिमा व्रतधारी, उद्योगपति
क्षुल्लक दीक्षा	–	दीपावली 2009 जबलपुर
ऐलक दीक्षा	–	06 नवम्बर 2010, टीकमगढ़ (म.प्र.)
श्रमण दीक्षा	–	10 फरवरी, 2011, हटा दमोह (म.प्र.)

क्षुल्लक 105 श्री अध्यात्म सागरजी का परिचय

पूर्व नाम	–	कपूरचन्द जैन
जन्मतिथि	–	पौष सुदी पंचमी, 2488
जन्मस्थान	–	मलगुवाँ टीकमगढ़
पिता	–	श्री वृन्दावन प्रसाद जी
माता	–	श्रीमती बड़ीबाई
शिक्षा	–	प्रथम कक्षा
ब्रह्मचर्य दीक्षा	–	17 फरवरी 09, गिरनारगिरि अति. क्षे.
दीक्षा गुरु	–	आचार्य श्री विभवसागर जी महाराज
ऐलक दीक्षा	–	06 नवम्बर 2010, टीकमगढ़

स्मरण बिन्दु

खाली पेज

खाली पेज